



जैन

पूजा

पाठ

Index

पूजा प्रारंभ

1. श्री-मंगलाष्टक-स्तोत्र
2. अभिषेक पाठ-भाषा--हरजसरायजी
3. प्रतिमा-प्रक्षाल-विधि पाठ
4. अभिषेक पाठ
5. अमृत से गगरी भरो
6. महावीर की मूंगावरणी
7. दर्शन-देव-देवस्य
8. दर्शन-पाठ--बुधजनजी
9. दर्शन-पाठ-अति-पुण्य
10. विनय-पाठ-लघु-सफल जन्म
11. विनय-पाठ-दोहावली
12. मंगलपाठ
13. भजन
14. पूजा-विधि प्रारंभ
15. अर्घ
16. स्वस्ति-मंगल-विधान
17. चतुर्विंशति-तीर्थकर-स्वस्ति-विधान
18. अथ परमर्षि स्वस्ति-मंगल-विधान
19. स्तुति--बुधजनजी

पूजा

20. देव-शास्त्र-गुरु--युगलजी
21. देव-शास्त्र-गुरु--द्यानतरायजी
22. पंचपरमेश्वरी-पवैयाजी
23. नवदेवता-पूजन--आर्यिका-ज्ञानमती
24. सिद्ध पूजा--हीराचंदजी
25. सिद्धपूजा--युगलजी
26. रत्नत्रय पूजन--द्यानतरायजी
27. सम्यकदर्शन पूजन--द्यानतरायजी
28. सम्यकज्ञान पूजन--द्यानतरायजी
29. सम्यकचारित्र पूजन--द्यानतरायजी
30. चौबीस-तीर्थकर--वृन्दावनदासजी

31. समुच्च पूजा--ब्र.सरदारमलजी
32. बाहुबली-भगवान--पवैयाजी
33. बाहुबली-भगवान--जिनेश्वरदासजी
34. दशलक्षण-धर्म--द्यानतरायजी
35. पंचमेरु पूजन--द्यानतरायजी
36. विद्यमान-बीस-तीर्थकर--द्यानतरायजी
37. सोलहकारण-भावना--द्यानतरायजी
38. नंदीश्वर-द्वीप पूजन--द्यानतरायजी
39. निर्वाणक्षेत्र--पवैयाजी
40. सरस्वती-पूजन--द्यानतरायजी
41. श्रीआदिनाथ पूजन-जिनेश्वरदासजी
42. श्रीआदिनाथ पूजन
43. श्रीअजितनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
44. श्रीसंभवनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
45. श्रीअभिनन्दननाथ पूजन
46. श्रीसुमतिनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
47. श्रीपद्मप्रभ पूजन--वृन्दावनदासजी
48. श्रीसुपार्श्वनाथ पूजन
49. श्रीचन्द्रप्रभनाथ--वृन्दावनदासजी
50. श्रीपुष्पदन्त पूजन--वृन्दावनदासजी
51. श्रीशीतलनाथ पूजन
52. श्रीश्रेयांसनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
53. श्रीवासुपूज्य पूजन
54. श्रीविमलनाथ पूजन
55. श्रीअनन्तनाथ--वृन्दावनदासजी
56. श्रीधर्मनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
57. श्रीशांतिनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
58. श्रीशांतिनाथ पूजन--बख्तावरजी
59. श्रीकुंथुनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी
60. श्रीअरहनाथ पूजन
61. श्रीमल्लिनाथ पूजन
62. श्रीमुनिसुव्रतनाथ पूजन
63. श्रीनमिनाथ पूजन--वृन्दावनदासजी

64. श्रीनेमिनाथ पूजन
65. श्रीपार्श्वनाथ पूजन--बख्तावरजी
66. श्रीमहावीर-पूजन--वृन्दावनदासजी
67. श्रीमहावीर-पूजन--हुकमचंदजी
68. अक्षय-तृतीया--पवैयाजी
69. दीपावली--पवैयाजी
70. वीरशासन-जयन्ती--पवैयाजी
71. क्षमावाणी--पवैयाजी
72. रक्षाबन्धन--पवैयाजी
73. श्रुतपंचमी--पवैयाजी
74. आचार्य-कुंदकुंद--अरुणाजी

पूजा समाप्ति

75. महाअर्घ्य
76. शांति-पाठ
77. शांति-पाठ-भाषा
78. विसर्जन-पाठ
79. स्तुति--मैं-तुम-चरण
80. भगवान-महावीर-अरती
81. पंच-परमेश्वरी-अरती
82. भगवान-आदिनाथ-चालीसा
83. भगवान-महावीर-चालीसा

पाठ

84. देव-स्तुति--भूधरदासजी
85. जिनवाणी-स्तुति
86. मेरी-भावना--मुख्तारजी
87. बारह-भावना--जयचंदजी
88. बारह-भावना--भूधरदासजी
89. बारह-भावना--मंगतरायजी
90. महावीर वंदना--हुकमचंदजी
91. समाधिमरण--द्यानतरायजी
92. समाधि-भावना--शिवरामजी
93. समाधिमरण-भाषा--सूरचंदजी
94. दर्शन-स्तुति--दौलतरामजी
95. आराधना-पाठ--द्यानतरायजी
96. अलोचना-पाठ--जौहरीलालजी
97. दुखहरन-विनती--वृन्दावनदासजी
98. अमूल्य-तत्त्व-विचार--युगलजी
99. बाईस-परीषद--आज्ञानमती
100. सामायिक-पाठ--आचार्य-अमितगति

101. सामायिक-पाठ--युगलजी
102. सामायिक-पाठ--रविन्द्रजी
103. सामायिक-पाठ--महाचंद्रजी
104. निर्वाण-कांड--भगवतीदासजी
105. वैराग्य-भावना--भूधरदासजी
106. स्वयंभू-स्तोत्र--आविद्यासागर
107. स्वयंभू-स्तोत्र--द्यानतरायजी
108. आत्मबोध-शतक--आर्यिका-पूर्णमति
109. पार्श्वनाथ-स्तोत्र--द्यानतरायजी
110. महावीराष्टक-स्तोत्र--भागचंदजी
111. महावीराष्टक-स्तोत्र--हिन्दी
112. श्री-गोमेश्वर-स्तुति
113. कल्याणमन्दिर-स्तोत्र--आकुमुदचंद्र
114. कल्याणमन्दिर-स्तोत्र--हिन्दी
115. तत्त्वार्थ-सूत्र पहला-अध्याय
116. तत्त्वार्थ-सूत्र दूसरा-अध्याय
117. तत्त्वार्थ-सूत्र तीसरा-अध्याय
118. तत्त्वार्थ-सूत्र चौथा-अध्याय
119. तत्त्वार्थ-सूत्र पांचवां-अध्याय
120. तत्त्वार्थ-सूत्र छठा-अध्याय
121. तत्त्वार्थ-सूत्र सातवां-अध्याय
122. तत्त्वार्थ-सूत्र आठवां-अध्याय
123. तत्त्वार्थ-सूत्र नवां-अध्याय
124. तत्त्वार्थ-सूत्र दसवां-अध्याय
125. भक्तामर--आचार्य-मानतुंग
126. भक्तामर--कमलकुमारजी
127. भक्तामर--हेमराजजी
128. भक्तामर--मुनि-श्रीरसागर
129. एकीभाव-स्तोत्र--आवादीराज
130. विषापहार-स्तोत्रम्--श्रीधनञ्जय
131. विषापहार-स्तोत्र--श्रीशांतिदास
132. रत्नाकर-पंचविशतिका--रामचरितजी
133. भूपाल-पंचविशतिका--भूधरदासजी
134. मृत्यु-महोत्सव
135. ध्यान-शतक--आमाघनन्दी
136. अपूर्व-अवसर--श्रीमद-राजचंद्र
137. कुंदकुंद-शतक--हुकमचंदजी
138. छहढाला--बुधजनजी
139. छहढाला--द्यानतरायजी
140. छहढाला--दौलतरामजी

141. छहढाला-दूसरी-ढाल

144. छहढाला-पांचवी-ढाल

142. छहढाला-तीसरी-ढाल

145. छहढाला-छठी-ढाल

143. छहढाला-चौथी-ढाल

श्री-मंगलाष्टक-स्तोत्र

अर्हन्तो भगवंत इन्द्रमाहिता; सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा,
आचार्याः जिनशासनोन्नतिकरा; पूज्य उपाध्यायकाः
श्रीसिद्धान्तसुपाठका; मुनिवरा रत्नत्रयाराधका;
पञ्चैते परमेष्विनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥१॥

अर्थ : इन्द्रों द्वारा जिनकी पूजा की गई ऐसे अरिहन्त भगवान, सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध भगवान, जिन शासन को प्रकाशित करने वाले ऐसे आचार्य, सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढ़ाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु ये पाँचों परमेश्वरी प्रतिदिन तुम्हारे पापों को नष्ट करें और तुम्हें सुखी करें ।

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा-
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगीजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥२॥

अर्थ : शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेंद्रों और असुरेंद्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से जिनके श्री चरणों के नखरूपी चन्द्रमा की ज्योति स्फुरायमान हो रही है । और जो प्रवचन रूप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चन्द्रमा हैं एवं योगिजन जिनकी स्तुति करते

रहते हैं ऐसे अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी करें ॥

सम्यग्दर्शन - बोध - व्रत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति श्रीनगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः
धर्म सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी, कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥३॥

अर्थ : निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है । श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान् जिनदेव ने इसे अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला धर्म कहा है । इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ सूक्तिसुधा (जिनागम), समस्त जिन-प्रतिमा और लक्ष्मी का आकारभूत जिनालय मिलकर चार प्रकार का धर्म कहा गया है वह तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें ॥

नाभेयादिजिनाः प्रशस्त- वदनाः ख्यताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वर- प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश
ये विष्णु- प्रतिविष्णु- लांगलधराः सप्तोत्तराविंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टि- पुरुषाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥४॥

अर्थ : तीनों लोकों में विख्यात और बाह्य तथा आभ्यन्तर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभनाथ भगवान् अदि 24 तीर्थकर, श्रीमान् भरतेश्वर अदि 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण और 9 बलभद्र ये 63 शलाका महापुरुष पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें ॥

ये सर्वौषध- ऋद्ध्यः सुतपसां वृद्धिगताः पञ्च ये,
ये चाष्टांग- महानिमित्तकुशलाश्चाष्टौ वियच्चारिणः
पञ्चज्ञानधरास्तत्रोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धिेश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥५॥

अर्थ : सभी औषधि ऋद्धिधारी, उत्तम तप ऋद्धिधारी, अवधूत क्षेत्र से भी दूरवर्ती विषय के आस्वादन, दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण की समर्थता की ऋद्धि के धारी, अष्टांग महानिमित्त विज्ञता की ऋद्धि के धारी, आठ प्रकार की चारण ऋद्धि के धारी, पाँच प्रकार के ज्ञान की ऋद्धि के धारी, तीन प्रकार के बलों की ऋद्धि के धारी और बुद्धि-ऋद्धीश्वर, ये सातों जगत्पूज्य गणनायक तुम्हारे पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी बनावें । बुद्धि क्रिया, विक्रिया, तप, वश, औषध रस और क्षेत्र के भेद से ऋद्ध्यों के आठ भेद हैं ॥

ज्योतिर्व्यन्तर- भावनामरग्रहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बूशाल्मलि- चैत्य- शखिषु तथा वक्षार- रुप्याद्रिषु

इक्ष्वाकार- गिरौ च कुण्डल- नगो द्वीपे च नन्दीश्वरे
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-ग्रहाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥६॥

अर्थ : ज्योतिषी, व्यन्तर भवनवासी और वैमानिकों के आवासों के, मेरुओ, कुलाचलों, जम्बू वृक्षों और शाल्मलि वृक्षों, वक्षारों, विजयार्थ पर्वतों, इक्ष्वाकार पर्वतों, कुण्डलपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप और मानुषोत्तर पर्वत (तथा रुचिकवर पर्वत), के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी बनावें ॥

कैलाशे वृषभस्य निर्व्रतिमही वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥७॥

अर्थ : भगवान् ऋषभदेव की निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत पर है । महावीरस्वामी की पावापुर में है । वासुपूज्य स्वामी की चम्पापुरी में है । नेमिनाथ स्वामी की ऊर्जयन्त पर्वत के शिखर पर और शेष बीस तीर्थकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर है, जिनका अतिशय और वैभव विख्यात है । ऐसी ये सभी निर्वाण भूमियाँ तुम्हें निष्पाप बना दें और तुम्हें सुखी करें ॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्
यः कैवल्यपुर- प्रवेश- महिमा सम्पदितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥८॥

अर्थ : तीर्थकरों के गर्भकल्याणक, जन्माभिषेक कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक और कैवल्यपुर प्रवेश (निर्वाण) कल्याणक के देवों द्वारा सम्भावित महोत्सव तुम्हें सर्वदा मांगलिक रहें ॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः
देवाः यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादिव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥९॥

अर्थ : धर्म के प्रभाव से सर्प माला बन जाता है, तलवार फूलों के समान कोमल बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, शत्रु प्रेम करने वाला मित्र बन जाता है और देवता प्रसन्न मन से धर्मात्मा के वश में हो जाते हैं । अधिक क्या कहें धर्म से ही आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है वही धर्म तुम सब का कल्याण करें ॥

इत्थं श्रीजिन- मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य- सम्पत्करम्

कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थकराणामुषः
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः धर्मार्थ- कामाविन्ताः
लक्ष्मीराश्रयते व्यापय- रहिता निर्वाण- लक्ष्मीरपि ॥१०॥

अर्थ : सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री जिनेन्द्र मंगलाष्टक को जो सुधी तीर्थकरों के पंचकल्याणक के महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभातकाल में भावपूर्वक सुनते और पढ़ते हैं वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं और पश्चात् अविनश्वर मुक्तिलक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं ॥

अभिषेक-पाठ-भाषा

(हरजसराय कृत)

जय-जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौ जोरि जुगपान ॥

श्रीजिन जग में ऐसो को बुधवंत जू
जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू ॥
इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी ॥

अनुपम अमित तुम गुणनि- वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है
किमि धैरे हम उर कोष में सो अकथ- गुण- मणि- राश है
पै निज प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है
यह चित्त में सरधान यातैं नाम में ही भक्ति है ॥१॥

ज्ञानावरणी दर्शन, आवरणी भने
कर्म मोहनी अंतराय चारों हने ॥
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में
इंद्रादिक मुकुट नये सुरथान में ॥

तब इंद्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरन-युत बंदत भयो
तुम पुन्यको प्रेरयो हरी है मुदित धनपतिसौ चयो ॥

अब वेगि जाय रचौ समवसृती सफल सुरपदको करौ
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ ॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती
चल आयो ततकाल मोद धारै अती ॥
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ
दे प्रदच्छिना बार बार वंदत भयौ ॥

अति भक्ति - भीनों नम्र - चित है समवशरण रच्यौ सही
ताकी अनूपम शुभ गतीको, कहन समरथ कोउ नहीं ॥
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं
नग-जड़ित गन्धकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं ॥३॥

सिंघासन तामध्य बन्यौ अदभूत दिपै
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै ॥
तीनछत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी
महा भक्ति ढोरत हैं तहां अमरजी ॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर अन्तरीक्ष विराजिया
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया ॥
मुनि आदि द्वादश सभाके भविजीव मस्तक नायकें
बहुभाँति बारंबार पूजैं नमैं गुणगण गायकें ॥४॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं ॥
जन्म जरामृति अरति शोक विस्मय नसे
राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे ॥

श्रमबिना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योति - स्वरूपजी
शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी ॥

ऐसे प्रभु की शान्तिमुद्रा को न्हवन जलतें करें
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं हम भानु ढिग दीपक धरें ॥५॥

तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो ॥
मैं मलीन रागादिक मलतै हूँ रह्यो
महा मलिन तनमें वसु-विधि-वश दुख सह्यो ॥

बीत्यो अनंतो काल यह मेरी अशुचिता ना गई
तिस अशुचिता-हर एक तुम ही, भरहु बांछा चित ठई ॥
अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोष-रागादिक हरौ
तनरूप कारा-गेहतैं उद्धार शिव वासा करौ ॥६॥

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये
आवागमन विमुक्त राग-वर्जित भये ॥
पर तथापि मेरो मनोरथ पुरत सही
नय-प्रमानतैं जानि महा साता लही ॥

पापाचरण तजि न्हन करता चित्त में ऐसे धरुं
साक्षात श्री अरिहंतका मानों न्हन परसन करूं ॥
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं हूँ शर्म सब विधि तासतैं ॥७॥

पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं
पावन पानि भये तुम चरननि परसतैं ॥
पावन मन हूँ गयो तिहारे ध्यानतैं
पावन रसना मानी, तुम गुण गानतैं ॥

पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरण-धनी
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी ॥

धन धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिव-घरकी धरी
वर क्षीरसागर आदि जल मणि-कुंभ भवती करी ॥८॥

विघन-सघन-वन-दाहन-दहन प्रचंड हो
मोह-महा-तम-दलन प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो
जगविजयी जमराज नाश ताको करो ॥

आनन्द-कारण दुख-निवारण, परम मंगल-मय सही
मोसो पतित नहीं और तुमसो, पतित-तार सुन्यो नहीं ॥
चिंतामणी पारस कल्पतरू, एक भव सुखकार ही
तुम भक्ति-नवका जे चढ़े, ते भये भवदधि-पार ही ॥९॥

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार ॥१०॥

इति श्री हरजसराय कृत अभिषेक पाठ

प्रतिमा-प्रक्षाल-विधि पाठ

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज-प्रतिबिम्ब ॥
पंच-प्रभू के चरण में, वंदन करूँ त्रिकाल
निर्मल-जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल ॥

अथ पौर्वाहिक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-स्तवन वंदनासमेतं श्री
पंचमहागुरुभक्तिपूर्वकं कायोत्सर्गं करोम्यहम्

(नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम औ अकृत्रिम सारे

जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे ॥
श्रीजिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ
जिन में निज का, निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ ॥

मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन-प्रतिमा प्रक्षाल का
यह भाव-सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का ॥

ॐ ह्रीं प्रक्षाल-प्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपामि
(प्रक्षाल की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प क्षेपण करें)

(रोला)
अंतरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित
जिनकी मंगलवाणी पर है त्रिभुवन मोहित ॥
श्रीजिनवर सेवा से क्षय मोहादिविपत्ति
हे जिन! 'श्री' लिख पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति ॥
(अभिषेक-थाल की चौकी पर केशर से 'श्री' लिखें)

(दोहा)
अन्तर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज ॥
ॐ ह्रीं श्री स्रपन-पीठ स्थापनं करोमि
(प्रक्षाल हेतु थाल स्थापित करें)

(रोला)
भक्ति-रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन ॥
स्वागत है जिनराज तुम्हारा सिंहासन पर
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर ॥
ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ! तिष्ठ!
(प्रदक्षिणा देकर अभिषेक-थाल में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया
दृग-सुख वीरज ज्ञान स्वरूपी आत्म पाया ॥

मंगल-कलश विराजित करता हूँ जिनराजा
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा ॥

ॐ ह्रीं अर्हं कलश-स्थापनं करोमि

(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें, व स्रपन-पीठ स्थित जिन-प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया
अष्ट-अंग-युत मानो सम्यग्दर्शन पाया ॥
श्रीजिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित
करूँ आज रागादि विकारी-भाव विसर्जित ॥

ॐ ह्रीं श्री स्रपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(चारों कोनों के इंद्र विनय सहित दोनों हाथों में जल कलश ले प्रतिमाजी के शिर पर धारा करते हुए गावें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर ॥
कैसे हो प्रक्षाल जगत के अघ-क्षालक का
क्या दरिद्र होगा पालक! त्रिभुवन-पालक का ॥
भक्ति-भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता
है किसका अभिषेक! भ्रान्तचित खाता गोता ॥
नाथ! भक्तिवश जिन-बिम्बों का करूँ न्हवन मैं
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पृच्छन मैं ॥

(दोहा)

क्षीरोदधिसम नीर से करूँ बिम्ब प्रक्षाल
श्री जिनवर की भक्ति से जानूँ निज-पर चाल ॥
तीर्थकर का न्हवन शुभ सुरपति करें महान्
पंचमेरु भी हो गए महातीर्थ सुखदान ॥
करता हूँ शुभ-भाव से प्रतिमा का अभिषेक
बचूँ शुभाशुभ भाव से यही कामना एक ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भावन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशति-तीर्थकर-परमदेवम् आद्यानामाद्ये
जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे <,,,,,शुभे...> नाम्निनगरे मासानामुत्तमे <,,,,,शुभे...> मासे <,,,,,शुभे...>

पक्षे <,,,,,शुभे....> दिने मुन्यार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्म - क्षयार्थं पवित्रतर-जलेन जिनमभिषेचयामि

(चारों कलशों से अभिषेक करें, वादित्त-नाद करावें एवं जय-जय शब्देच्चारण करें)

दोहा

जिन-संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुणखान
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान् ॥

(गंधोदक केवल मस्तक पर लगायें, अन्य किसी अंग में लगाना आस्रव का कारण होने से वर्जित है)

जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज
हुआ बिम्ब-अभिषेक अब, पाऊँ निज-पद-राज ॥

ॐ ह्रीं श्री अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री जिनवर का धवल-यश, त्रिभुवन में है व्याप्त
शांति करें मम चित्त में, हे! परमेश्वर आप्त ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करें)

(रोला)

जिन-प्रतिमा पर अमृत सम जल-कण अतिशोभित
आत्मगगन में गुण अनंत तारे भवि मोहित ॥
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन
शुद्ध वस्त्र से जल कण का करता परिमार्जन ॥

(प्रतिमा को शुद्ध-वस्त्र से पोंछें)

(दोहा)

श्रीजिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य-कुमार ॥

(वेदिका-स्थित सिंहासन पर नया स्वस्तिक बना प्रतिमाजी को विराजित करें व निम्न पद गाकर अर्घ्य चढ़ायें)

जल गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज

पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज ॥

ॐ ह्रीं श्री वेदिका-पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अभिषेकपाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वंदन करुं
मन वचन काय त्रियोग पूर्वक, शीश चरणों में धरुं ॥
सर्वज्ञ केवल ज्ञान धारी की सु छवि उर में धरुं
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरुं ॥
उज्ज्वल दिगंबर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरुं
अति विनयपूर्वक नमन करके सफल यह नर भव करुं ॥
मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करुं
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभुजी का करुं ॥
मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर, सकल भव पातक हरुं
प्रभु चरण कमल पखार कर, सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरुं ॥

अमृत से गगरी भरो

अमृत से गगरी भरो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे
खुशी-खुशी मिलके चलो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

सब साथी मिल कलश सजाओ, मंगलकारी गीत सुनाओ
मन में आनंद भरो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

इन्द्रइन्द्राणी हर्ष मनावें, प्रभु चरणों में शीश झुकावें
प्रभुजी की छवि निरखो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

स्वर्ण कलश प्रभु उदक निधारा, अंग नहावे जिनवर प्यारा
स्वामी जगत को खरो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

है सुखकारी, सब दुखहारी, सेवा जिन की प्यारी-प्यारी
लेकर कलश को चलो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

महावीर की मूंगावरणी

महावीर की मूंगावरणी मूरत मनहारी - २
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी

कुंडलपुर के वीर की हो रही जय-जयकारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

न्हवन कराओ माता त्रिशला के लाल का,
त्रिशला के लाल का, सिद्धार्थ के गोपाल का
मां त्रिशला के लाल के देखो कैसे लगे हैं ठाठ
एक हजार आठ कलशों से न्हावें जग-सम्राट
ढारो रे, कलशा ढारो, कमा लो रे पुण्य भारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

सरस दरस पा लो वीर जिनचंद्र का
ले लो आशीष पूज्य गुरुवरों का
स्वर्ण कलश, नवरत्न कलश, हर कलश का है कुछ मोल
पर जिसका अभिषेक करोगे, वो तो है अनमोल
ढारो रे, कलशा ढारो, कमा लो रे पुण्य भारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

दर्शनं-देव-देवस्य

दर्शनं देव-देवस्य, दर्शनं पापनाशनं
दर्शनं स्वर्ग-सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनं ॥१॥

अर्थ : देवों के देव (जिनेन्द्रदेव) का दर्शन पाप का नाश करने वाला, स्वर्ग जाने के लिए सीढ़ी के समान तथा मोक्ष का साधन है

दर्शनेन जिनेन्द्राणाम् साधूनां वन्दनेन च,

न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥२॥

अर्थ : श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से और साधुओं की वन्दना करने से पाप बहुत दिनों तक नहीं ठहरते, जैसे छिद्र होने से हाथों में पानी नहीं ठहरता (धीरे धीरे चू जाता है, इसी तरह पाप धीरे-धीरे दूर होने लगते हैं)

वीतराग-मुखं दृष्ट्वा, पदम्- राग- समप्रभम्
जन्म- जन्म- कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥३॥

अर्थ : पदमरागमणि के समान शोभनीक श्री वीतराग भगवान का मुख देखकर अनेक जन्मों के किये हुए पाप दर्शन से नष्ट हो जाते हैं

दर्शनं जिन-सूर्यस्य, संसार-ध्वांत-नाशनम्
बोधनं चित्त-पदमस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनम् ॥४॥

अर्थ : सूर्य के समान श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से सांसारिक अंधकार नष्ट होता है, चित्तरूपी कमल खिलता है और सर्व पदार्थ प्रकाश में आते हैं और जाने जाते हैं

दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्दर्म्मामृत - वर्षणं
जन्मदाह- विनाशाय, वर्धनं सुख- वारिधेः ॥५॥

अर्थ : चन्द्रमा के समान श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करने से सद धर्म रूपी अमृत की वर्षा होती है, बार-बार जन्म लेने का दाह मिटता है और सुख रूपी समुद्र की वृद्धि होती है

जीवादि- तत्त्व- प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व - मुख्याष्ट - गुणाश्रयाय
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय ॥६॥

अर्थ : श्री देवाधिदेव जिनेन्द्र को नमस्कार हो, जो जीव आदि सात तत्त्वों के बताने वाले, सम्यक्त्व आदि गुणों के स्वामी, शान्त रूप तथा दिगम्बर हैं

चिदानंदैक- रूपाय, जिनाय परमात्मने
परमात्म - प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥७॥

अर्थ : श्री सिद्धात्मा को जो चिदानन्द रूप हैं, अष्ट कर्मों को जीतने वाले हैं, परमात्मस्वरूप के प्रकाशित होने के लिए नित्य नमस्कार हो

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम
तस्मात्कारुण्य - भावेन, रक्ष- रक्ष जिनेश्वर ॥८॥

अर्थ : हे जिनेश्वर! आप ही मुझे शरण में रखने वाले हो, आपके सिवा और कोई शरण नहीं है। इसलिए कृपापूर्वक संसार के दुःखों से मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

अर्थ : तीन लोक के बीच अपना कोई रक्षक नहीं है, यदि कोई है तो हे वीतराग देव! आप ही हैं क्योंकि आप के समान न तो कोई देव हुआ है और न आगे होगा

जिने भक्तिजिने भक्ति - जिने भक्तिदिने- दिने

सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे- भवे ॥१०॥

अर्थ : मैं यह आकांक्षा करता हूँ कि जिनेन्द्र भगवान में मेरी भक्ति दिन-दिन और प्रत्येक भव में बनी रहे

जिनधर्मविनिर्मुक्ते, मा भवेच्चक्र वर्त्यपि
स्याच्चेतोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

अर्थ : जिनधर्मरहित चक्रवर्ती होना भी अच्छा नहीं, जिनधर्म का धारी दास तथा दरिद्री हो तो भी अच्छा है

जन्म-जन्म-कृतं - पापं, जन्मकोटि-मुपार्जितम्
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

अर्थ : जिनेन्द्र के दर्शन से करोड़ों जन्मों के किये हुए पाप तथा जन्म जरा मृत्यु रूपी तीव्र रोग अवश्य-अवश्य नष्ट हो जाते हैं

अद्याभवत् सफलता नयन-द्वयस्य
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणं ॥१३॥

अर्थ : हे देवाधिदेव! आपके कल्याणकारी चरण कमलों के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र आज सफल हुए। हे तीनों लोकों के शृंगार रूप तेजस्वी लोकोत्तर पुरुषोत्तम! आपके प्रताप से, मेरा संसार रूपी समुद्र हाथ में लिये (चुल्लू भर) पानी के समान प्रतीत होता है, आपके प्रताप से मैं सहज ही संसार-समुद्र से पार हो जाऊँगा ।

दर्शन-पाठ (कविश्री बुधजनजी कृत)

(दोहा)
तुम निरखत मुझको मिली, मेरी सम्पत्ति आज
कहाँ चक्रवर्ति-संपदा, कहाँ स्वर्ग-साम्राज ॥१॥

तुम वंदत जिनदेवजी, नित-नव मंगल होय
विघ्नकोटि ततछिन टैं, लहहि सुजस सब लोय ॥२॥

तुम जाने बिन नाथजी, एक श्वास के माँहि
जन्म-मरण अठदस किये, साता पाई नाहि ॥३॥

आप बिना पूजत लहे, दुःख नरक के बीच
भूख-प्यास पशुगति सही, कयों निरादर नीच ॥४॥

नाम उचारत सुख लहे, दर्शनसों अघ जाय
पूजत पावे देव-पद, ऐसे हैं जिनराय ॥५॥

वंदत हूँ जिनराज मैं, धर उर समता भाव
तन धन-जन-जगजालतें, धर विरागता भाव ॥६॥

सुनो अरज हे नाथजी! त्रिभुवन के आधार
दुष्टकर्म का नाश कर, वेगि करो उद्धार ॥७॥

याचत हूँ मैं आपसों, मेरे जिय के माँहि
राग-द्वेष की कल्पना, कबहू उपजे नाहि ॥८॥

अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागता माँहि
विमुख होहि ते दुःख लहें, सन्मुख सुखी लखाहि ॥९॥

कल-मल कोटिक नहि रहें, निरखत ही जिनदेव
ज्यों रवि उगत जगत में, हरे तिमिर स्वयमेव ॥१०॥

परमाणु - पुद्गलतणी, परमात्म - संयोग
भई पूज्य सब लोक में, हरे जन्म का रोग ॥११॥

कोटि-जन्म में कर्म जो, बाँधि हुते अनंत
ते तुम छवि विलोकते, छिन में होवहि अंत ॥१२॥

आन नृपति किरपा करे, तब कछु दे धन-धान
तुम प्रभु अपने भक्त को, करल्यो आप-समान ॥१३॥

यंत्र-मंत्र मणि-औषधि, विषहर राखत प्रान
त्यौं जिनछवि सब भ्रम हरे, करे सर्व-परधान ॥१४॥

त्रिभुवनपति हो ताहि ते, छत्र विराजें तीन
सुरपति-नाग-नरेशपद, रहें चरन-आधीन ॥१५॥

भवि निरखत भव आपनो, तुव भामंडल बीच
भ्रम मेटे समता गहे, नाहि सहे गति नीच ॥१६॥

दोई ओर ढोरत अमर, चौंसठ-चमर सफेद
निरखत भविजन का हरें, भव अनेक का खेद ॥१७॥

तरु-अशोक तुव हरत है, भवि-जीवन का शोक
आकुलता-कुल मेटिके, करैं निराकुल लोक ॥१८॥

अंतर-बाहिर-परिग्रहन्, त्यागा सकल समाज
सिंहासन पर रहत है, अंतरीक्ष जिनराज ॥१९॥

जीत भई रिपु-मोह तें, यश सूचत है तास
देव-दुन्दुभिन् के सदा, बाजे बजें अकाश ॥२०॥

बिन-अक्षर इच्छरहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय
सुर-नर-पशु समझें सबै, संशय रहे न कोय ॥२१॥

बरसत सुरतरु के कुसुम, गुंजत अलि चहुँ ओर
फैलत सुजस सुवासना, हरषत भवि सब ठौर ॥२२॥

समुद्र बाघ अरु रोग अहि, अर्गल-बंध संग्राम
विघ्न-विषम सबही टरैं, सुमरत ही जिननाम ॥२३॥

श्रीपाल चंडाल पुनि, अञ्जन भीलकुमार
हाथी हरि अरि सब तरे, आज हमारी बार ॥२४॥

'बुधजन' यह विनती करे, हाथ जोड़ सिर नाय
जबलौं शिव नहि होय तुव- भक्ति हृदय अधिकाय ॥२५॥

दर्शन-पाठ-अति-पुण्य

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥१॥

पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहि पहिचान कर ॥२॥

भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहि पानकर ॥३॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ॥४॥

रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा ॥५॥

प्रिय वचन की हो टेव, गुणीगण गान में ही चितपगै
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन तैं भगै ॥६॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर ॥७॥

धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ ॥८॥

तप तपुं द्वादश विधि सुखद नित, बंध अस्रव परिहरूँ
अरु रोकि नूतन कर्मसंचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ ॥९॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ॥१०॥

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ ॥११॥

आनन्दकन्द जिनेन्द्रबन, उपदेश को नित उच्चरूँ
अत्रै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ ॥१२॥

विनयपाठ-लघु

सफल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज
भव समुद्र नहीं दीखता, पूर्ण हुए सब काज ॥१॥

दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम ॥२॥

संवर कर्मों का हुआ, शांत हुए गृह जाल
हुआ सुखी सम्पन्न मैं, नहीं अये मम काल ॥३॥

भव कारण मिथ्यात्व का, नाशक ज्ञान सुभानु
उदित हुआ मुझमें प्रभु, दीखे आप समान ॥४॥

मेरा आत्म स्वरूप जो, ज्ञानादिक गुण खान
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान ॥५॥

दीन भावना मिट गई, चिंता मिटी अशेष
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश ॥६॥

शरण रहा था खोजता, इस संसार मंझार
निज आत्म मुझको शरण, तुमसे सीखा आज ॥७॥

निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम
इसी हेतु मैं आपको, करता कोटि प्रणाम ॥८॥

मैं वन्दौं जिनराज को, धर उर समता भाव
तन-धन-जन जगजाल से, धरि विरागता भाव ॥९॥

यही भावना है प्रभो, मेरी परिणति माहि
राग द्वेष की कल्पना, किंचित उपजै नाहि ॥१०॥

विनय पाठ-दोहावली

इह विधि ठाड़ो होय के प्रथम पढ़े जो पाठ
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्मजु आठ ॥१॥

अर्थ : इह विधि अर्थात् पूजन के लिए खड़े होने की जो विधि आगम में वर्णित है उस विधि से विनय पूर्वक खड़े होकर जिनेन्द्र भगवान की विनय के लिये सर्वप्रथम विनय पाठ पढ़ता हूँ । हे जिनेन्द्र भगवान आप आठ कर्मों का नाश कर धन्य हो गये हो ।

अनंत चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज ॥२॥

अर्थ : हे भगवान, आप अनंत सुख, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, और अनंत वीर्य रूप अनंत चतुष्टय के स्वामी हो, तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ हो, मोक्ष रूपी वधू के स्वामी (पति) हो एवं तीनों लोकों के राजा हो ॥

तिहुं जग की पीड़ा-हरन, भवदधि शोषणहार
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार ॥३॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आप तीनों लोकों के जीवों के दुखों को नष्ट करने वाले हो, संसार रूपी समुद्र को सुखा देने वाले हो विश्व को जानने वाले हो और मोक्ष सुख के करने वाले हो ॥

हरता अघ अंधियार के, करता धर्म प्रकाश
थिरता पद दातार हो, धरता निजगुण रास ॥४॥

अर्थ : हे नाथ आप पापों के अंधकार को नाश करने वाले हो, धर्म रूपी प्रकाश के करने वाले हो, स्थिर पद अर्थात् मोक्ष पद (सिद्ध पद) के देने वाले हो, और आप अपने ही अनंत गुणों की राशि के स्वामी हो ।

धर्माभूत उर जलधि सों ज्ञानभानु तुम रूप
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुं जग भूप ॥५॥
मैं वंदौ जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव
कर्मबंध के छेदने, और न कछु उपाव ॥६॥
भविजन को भवकूप तैं, तुम ही काढ़नहार
दीनदयाल अनाथपति, आत्म गुण भंडार ॥७॥
चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल
सरल करी या जगत में भविजन को शिवगैल ॥८॥
तुम पदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय
शत्रु मित्रता को धरै, विष निरविषता थाय ॥९॥
चक्री खगधर इंद्रपद, मिलैं आपतैं आप
अनुक्रमकर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥११॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव
अंजन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥
थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव ॥१३॥
रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव
वीतराग भेंट्यो अबै, मेटो राग कुटेव ॥१४॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यच अज्ञान
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान मैंने कितनी पर्याय निगोद की, कितनी पर्याय नारकी की, कितनी पर्याय तिर्यच की एवं कितनी पर्याय अज्ञानावस्था में व्यतीत की । आज यह मनुष्य पर्याय धन्य हो गई जो हे जिनेन्द्र आपकी शरण प्राप्त कर ली ॥

तुमको पूजें सुरपति, अहिपति नरपति देव
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥१६॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आपकी पूजा इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती आदि करते हैं । आपकी सेवा-पूजा करने से मेरा भाग्य भी धन्य हो गया है ॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार
मैं डूबत भवसिंधु में, खेओ लगाओ पार ॥१७॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र देव अशरण को शरण देने वाले हो । जिनके जीवन का कोई आधार नहीं है उन्हें आधार देने वाले हो । हे भगवान मैं भव रूपी समुद्र में डूब रहा हूँ । आप मेरी नाव चलाकर पार ला दीजिए ।

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान
अपनो विरद निहार के, कीजै आप समान ॥१८॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान, आपकी स्तुति विनती करते-करते गणधर, और इन्द्र आदि भी थक गये हैं तब मैं कैसे आपकी विनती कर सकता हूँ । आप अपने यश को देखकर मुझे अपने समान बना लीजिए ।

तुमरी नेक सुदृष्टि, जग उतरत है पार
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार ॥१९॥

अर्थ : हे नाथ आपकी एक अच्छी दृष्टि से ही जीव संसार समुद्र के पार हो जाता है । हाय, हाय मैं संसार समुद्र में डूब रहा हूँ एक बार सुदृष्टि से देखकर मुझे निकाल लीजिए ।

जो मैं कहूँ और सों, तो न मिटे उर भार
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥२०॥

अर्थ : हे भगवान यदि मैं अपने अन्तर्मन की वेदना किसी और से कहूँ तो वह वेदना मिटने वाली नहीं है, मेरी बिगड़ी तो आप ही बना सकते हो अतः मैं आप ही से अपने दुखों को मिटाने की पुकार कर रहा हूँ ।

वन्दौं पांचो परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥

अर्थ : गणधर भी जिनकी वंदना करते हैं उन पांचों परमेश्वरी (पंच परमगुरु) की वंदना करता हूँ । आप पूर्ण उत्कृष्ट आत्म ज्योति (ज्ञान ज्योति) से प्रकाशित हो, आप विघ्नों का नाश करने वाले हो, और मंगल के करने वाले हो ।

चौबीसों जिनपद नमौ, नमौ शारदा माय
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय ॥२२॥

अर्थ : चौबीसों तीर्थकरों को नमन करता हूँ जिनवाणी माता को नमन करता हूँ और मोक्ष मार्ग की साधना करने वाले सर्व साधु को नमन कर सुख को देने वाले इस पाठ की रचना करता हूँ ।

मंगलपाठ

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरौं नित ध्यान
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान ॥१॥

अर्थ : परम पद को धारण करने वाले पंच परमेश्वरी मंगल स्वरूप हैं (मंगल की मूर्ति है) मैं इनका सदा ध्यान करता हूँ । हे मंगलमय भगवान आप संसार के सभी अमंगलों का नाश कर दीजिए ।

मंगल जिनवर पदनमौं, मंगल अर्हन्त देव
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दौं स्वयमेव ॥२॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आपके मंगलकारी चरणों को नमन करता हूँ । अर्हन्त भगवान मंगलकारी हैं । सिद्ध भगवान (सिद्धपद) मंगलकारी हैं अतः मैं इनकी अपने मंगल के लिए वन्दना करता हूँ ।

मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय
सर्व साधु मंगल करो, वन्दौं मन वच काय ॥३॥

अर्थ : दिगम्बर आचार्य मंगल स्वरूप हैं, उपाध्याय गुरु मंगल स्वरूप हैं एवं सभी साधु मंगल के करने वाले हैं । मैं इनकी मन वचन काय से वन्दना करता हूँ ।

मंगल सरस्वती मातका, मंगल जिनवर धर्म
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म ॥४॥

अर्थ : जिनवाणी माता मंगल स्वरूप हैं जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया धर्म मंगलकारी है । हे मंगलमय जिनेन्द्र भगवान मेरे असाता कर्म का क्षय करके मुझे मंगलमय कीजिए ।

या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत
मंगल नाथूराम यह, भव सागर दृढ़ पोत ॥५॥

अर्थ : इस प्रकार मंगल करने से संसार में मंगल होता है । श्री नाथूराम जी कवि कहते हैं कि यह मंगल पाठ (विनयपाठ) भवरूपी समुद्र को पार करने के लिए मजबूत नाव के समान है ।

भजन

श्री जी मैं थाने पूजन आयो, मेरी अरज सुनो दीनानाथ ! ॥श्री जी॥

जल चन्दन अक्षत शुभ लेके ता में पुष्प मिलायो ॥श्री जी॥

चरु अरु दीप धूप फल लेकर, सुन्दर अर्घ बनायो ॥श्री जी॥

आठ पहर की साठ जु घड़ियां, शान्ति शरण तोरी आयो ॥श्री जी॥

अर्घ बनाय गाय गुणमाला, तेरे चरणन शीश झुकायो ॥श्री जी॥

मुझ सेवक की अर्ज यही है, जामन मरण मिटावो,
मेरा आवागमन छुटावो, ॥श्री जी॥

पूजा-विधि-प्रारंभ

ॐ जय! जय!! जय!!!
नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झयाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अरहंतों को नमस्कर है, सिद्धों को सादर वन्दन
आचार्यों को नमस्कर है, उपाध्याय को है वन्दन॥
और लोक के सर्वसाधुओं को है, विनय सहित वन्दन
पंचपरमपरमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः । (पुष्पांजलि क्षेपण करें)

चत्वारि मंगलं, अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥
चत्वारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥
चत्वारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥

मंगल चार, चार हैं उत्तम, चार शरण को मैं पाऊँ
मन, वच, काय-त्रियोगपूर्वक, शुद्ध भावना मैं भाऊँ ॥
श्री अरहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्धप्रभु ! हैं मंगल
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल ॥
श्री अरहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में हैं उत्तम
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम ॥
श्री अरहंत शरण में जाऊँ, सिद्ध शरण में मैं जाऊँ
साधु शरण में जाऊँ, केवलि कथित धर्म शरणा पाऊँ ॥
मंगल.उत्तम.शरण.लोक में श्री अरहंत सु सिद्ध महान
साधु सु केवलि कथित धर्म को भव-भव ध्या पाऊँ निर्वाण ॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा । (पुष्पांजलि क्षेपण करें)

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत्पंचनमस्करं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥

अर्थ : पंच नमस्कर मंत्र का ध्यान करने से पुरुष सब पापों से छूट जाता है चाहे ध्यान करते समय वह पवित्र हो अपवित्र हो या अच्छी जगह हो या बुरी जगह हो ।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥२॥

अर्थ : शरीर चाहे स्नानादिक से पवित्र हो अथवा किसी अशुचिपदार्थ के स्पर्श से अपवित्र हो तथा सोती जागती उठती बैठती चलती अदि कोई भी दशा हो इन सभी दशाओं में जो पुरुष परमात्मा

की (पंच परमेष्ठी) स्मरण करता है वह उस समय बाह्य और अभ्यन्तर से (शरीर और मन) पवित्र है ।

अपराजित-मंत्रोऽयं, सर्वविघ्नविनाशनः
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥

अर्थ : यह नमस्कार मंत्र किसी मंत्र से पराजित नहीं हो सकता इसलिए यह मंत्र अपराजित मंत्र है यह मंत्र सभी विघ्नों को नष्ट करने वाला है एवं सर्व मंगलों में यह प्रधान मंगल है ।

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥४॥

अर्थ : यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है यह सब कार्यों के लिए मंगल रूप है और सब मंगलों में पहला मंगल है ।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः
सिद्धचक्रस्य सद् बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

अर्थ : अर्हं ये अक्षर परब्रह्म परमेष्ठी के वाचक हैं और सिद्ध समूह के सुन्दर बीजाक्षर है । मैं इनको मन वचन काय से नमस्कार करता हूँ ।

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्
सम्यक्त्वदि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥

अर्थ : आठ कर्मों से रहित तथा मोक्ष रूपी लक्ष्मी के मंदिर और सम्यक्, दर्शन, ज्ञान, अगु रुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व अव्याबाध, वीर्यत्व इन आठ गुणों से सहित सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी भूत पत्रगाः
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करें)

अर्थ : अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवान का स्तवन करने से विघ्नों के समूह नष्ट हो जाते हैं एवं शाकिनी, डाकनी, भूत, पिशाच, सर्प, सिंह, अग्नि, आदि का भय नहीं रहता और बड़े हलाहल विष भी अपना असर त्याग देते हैं ।

(हिंदी)

अपवित्र हो या पवित्र, जो णमोकार को ध्याता है

चाहे सुस्थित हो या दुस्थित, पाप-मुक्त हो जाता है ॥१॥
हो पवित्र-अपवित्र दशा, कैसी भी क्यों नहि हो जन की
परमात्म का ध्यान किए, हो अन्तर-बाहर शुचि उनकी ॥२॥
है अजेय विघ्नों का हर्ता, णमोंकार यह मंत्र महा
सब मंगल में प्रथम सुमंगल, श्री जिनवर ने एम कहा ॥३॥
सब पापों का है क्षयकारक, मंगल में सबसे पहला
नमस्कार या पामोकार यह, मन्त्र जिनागम में पहला ॥४॥
अहं ऐसे परं ब्रह्म-वाचक, अक्षर का ध्यान करूँ
सिद्धचक्र का सद्बीजाक्षर, मन-वच-काय प्रणाम करूँ ॥५॥
अष्टकर्म से रहित मुक्ति-लक्ष्मी के घर श्री सिद्ध नमूं
सम्पत्त्वदि गुणों से संयुत, तिन्हें ध्यान धर कर्म वमूं ॥६॥
जिनवर की भक्ति से होते, विघ्न समूह अन्त जानो
भूत शाकिनी सर्प शांत हों, विष निर्विष होता मानो ॥७॥

अर्घ

पंच कल्याणक अर्घ्य

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्वरु-सुदीप-सुधूप-फलाढ्यकैः
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे कल्याणकमहं यजे ॥

अर्थ - जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्घ्य से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में (भगवान के) कल्याणकों की पूजा करता हूँ
ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण पंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्वरु-सुदीप-सुधूप-फलाढ्यकैः
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥

अर्थ - जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्घ्य से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में पाँचों परमेष्ठियों की पूजा करता हूँ
ॐ ह्रीं श्रीअर्हत-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री जिनसहस्रनाम - अर्घ्य

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्वरु-सुदीप-सुधूप-फलाढ्यकैः
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाममहं यजे ॥

अर्थ - जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्घ्य से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में श्रीजिनेन्द्र देव के 1008 गुण-नामों की पूजा करता हूँ
ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिन अष्टाधिक सहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्वस्ति-मंगल-विधान

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशम्
स्याद्वाद्नायक - मनंत - चतुष्टयार्हम् ॥

श्रीमूलसंघ - सुदृशां सुकृतैकहेतुर
जैनेन्द्र- यज्ञ - विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥१॥

अर्थ : मैं तीन लोक के स्वामी स्याद्वाद विध्या के नायक पदार्थों के अनेकान्त (अनेक धर्मों) को प्रकट करने में अग्रसर अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यादि, अनंत चतुष्टयादि अन्तरंग लक्ष्मी एवं अष्ट प्रातिहार्य समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी से युक्त जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके मूलसंघ (श्री कुन्द कुन्द स्वामी की परम्परा के अनुसार) सम्यक् दृष्टि पुरुषों के लिए पुण्य बंध का प्रधान कारण ऐसी जिन पूजा की विधि को कहता हूँ ।

स्वस्ति त्रिलोक - गुरवे जिन - पुंगवाय
स्वस्ति स्वभाव - महिमोदय - सुस्थिताय ॥
स्वस्ति प्रकाश - सहजोर्जित दंगमयाय
स्वस्ति प्रसन्न - ललिताद् भुत - वैभवाय ॥२॥

अर्थ : तीन लोक के गुरु जिन प्रधान (कषायों को जीतने वाले मुनीश्वरों के स्वामी) के लिए कल्याण होवे । स्वभाविक महिमा अर्थात् अनंत चतुष्टयादि में भले प्रकार ठहरे हुए भगवान के लिए मंगल होवे । स्वभाविक प्रकाश अर्थात् केवल ज्ञान रूपी प्रकाश से बढ़े हुए केवल दर्शन से सहित जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे । उज्जल सुन्दर एवं अद्भुत समवशरणादि वैभव के धारक जिनेन्द्र भगवान के लिए मंगलकारी होवे ।

स्वस्त्युच्छलद्विमल - बोध - सुधा - प्लवाय
स्वस्ति स्वभाव - परभाव - विभासकाय ॥
स्वस्ति त्रिलोक - विततैक - चिदुद्गमाय
स्वस्ति त्रिकाल - सकलायत - विस्तृताय ॥३॥

अर्थ : उछलते हुए निर्मल केवल ज्ञान रूपी अमृत के प्रवाह वाले जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याण होवे । स्वभाव और परभाव के प्रकाशक जिनेन्द्र भगवान के लिए मंगल होवे । तीनों लोकों को जानने वाले केवल ज्ञान के स्वामी जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे । त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों में ज्ञान के द्वारा फैले हुए जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याणकारी होवे ।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपम्
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गुम्
भूतार्थं यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥

अर्थ : अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं देशकाल के अनुरूप जल चन्दनादि की शुद्धता को पाकर जिन स्तवन, जिन बिम्ब दर्शन, ध्यान आदि अवलम्बनों का आश्रय लेकर सच्चे पूज्य पुरुष अरहंतादिक की पूजा करता हूँ ।

अर्हत्पुराण - पुरुषोत्तम - पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ॥
अस्मिन् ज्वलद्विमल - केवल - बोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥५॥

ॐ ह्रीं विधियज्ञ प्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि

अर्थ : हे अर्हन्! हे पुराण पुरुष! हे उत्तम पुरुष यह असहाय मैं, इन पवित्र समस्त जलादिक द्रव्यों का आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवल ज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्र चित्त होकर हवन करता हूँ ।

चतुर्विंशति - तीर्थंकर - स्वस्ति- विधान

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः
श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनंदनः
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः
श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः
श्रीश्रेयान्सः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः
श्रीकुंत्युः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरहनाथः
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः

श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः

इति श्रीचतुर्विंशति तीर्थकर-स्वस्ति मंगल विधानं पुष्पांजलिं क्षिपामि

(हिंदी)

ऋषभदेव कल्याण कराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय
स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय ॥१॥
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्मप्रभ पद-पद्म विशेष
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभ जन तारन सेतु ॥२॥
पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय
श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिवसाधन हेत ॥३॥
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनन्त आनंद बताय
धर्मनाथ शिव शर्म कराय, शांति विश्व में शांति कराय ॥४॥
कुन्धु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय अश
मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव ॥५॥
श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमंगलमय सब काज
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वंदों जगदीश ॥६॥
ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्यजन मंगल काज
मैं आयो पूजन के काज, राखो श्री जिन मेरी लाज ॥७॥

अथ परमर्षि स्वस्ति-मंगल-विधान

तर्ज : छुपा लो आँचल में प्यार

(18 बुद्धि ऋद्धियाँ)

नित्याप्रकंपाद्भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

अर्थ : अविनाशी अचल अद्भुत केवल ज्ञान के धारक मुनिराज, दैदीप्यमान मनः पर्यय ज्ञान रूप शुद्ध ज्ञान वाले मुनिराज और दिव्य अवधिज्ञान के बल से प्रबुद्ध महा ऋद्धि धारी ऋषि हमारा कल्याण करें ।

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥

अर्थ : कोष्ठ-बुद्धि, एक बीज, संभिन्न संश्रोतृत्व और पादानुसारणी इन चार प्रकार की बुद्धि ऋद्धि को धारण करने वाले ऋषीराज हम सबका मंगल करें ।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन- घ्राण- विलोकनानि
दिव्यान् मतिज्ञान- बलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥

अर्थ : दिव्य मति ज्ञान के बल से दूर से ही स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, घ्राण और अवलोकन रूप पाँच इन्द्रियों के विषयों धारण करने वाले ऋषीराज हम लोगों का कल्याण करें ।

प्रज्ञा- प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः दशसर्वपूर्वे
प्रवादिनोऽष्टांग- निमित्त- विज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥४॥

अर्थ : प्रज्ञा, श्रमण, प्रत्येकबुद्ध, अभिन्न दशपूर्वी, चतुर्दशपूर्वी, प्रवादित्व, अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता मुनिवर हमारा कल्याण करें ।

((नौ चारण ऋद्धियाँ))

जंघा - वह्नि - श्रेणि - फलांबु - तंतु - प्रसून - बीजांकुर - चारणाह्वः
नभोऽगंग - स्वैर - विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥

अर्थ : जंघा, अग्नि शिखा, श्रेणी, फल, जल, तंतु, पुष्प, बीज, और अंकुर पर चलने वाले चारण बुद्धि के धारक तथा आकाश में स्वच्छ विहार करने वाले मुनिराज हमारा कल्याण करें ।

((तीन बल ऋद्धियाँ))

अणिमि दक्षाः कुशलाः महिमिलघिमि शक्तः कृतिनो गरिम्णि
मनो - वपुर्वागबलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥

अणिमा, महिमा, लघिमा और गरिमा ऋद्धि में कुशल तथा मन, वचन, काय बल ऋद्धि के धारक मुनिराज हमारा कल्याण करें ।

((ग्यारह विक्रिया ऋद्धियाँ))

सकामरुपित्व- वशित्वमैश्वर्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥

अर्थ : कामरुपित्व, वशित्व, ईशित्व, प्राकाम्य, अन्तर्धान, अप्ति तथा अप्रतीघात विक्रिया ऋद्धि से सम्पन्न मुनिराज हमारा कुशल करें ।

((सात तप ऋद्धियाँ))

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर पराक्रमस्थाः
ब्रह्मापरं घोर गुणाश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥

अर्थ : दीप्ति, तप्त, महाउग्र, घोर तप, और घोर पराक्रम के तथा अघोर-ब्रह्मचर्य इन सात तप ऋद्धि के धारी मुनिराज हमारा कल्याण करें

((आठ औषधि ऋद्धियाँ))

आमर्ष - सर्वौषधयस्तथाशीर्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च
स - खिल्ल - विड्ज्जल - मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥

अर्थ : आमर्शोषधि, सर्वोषधि, आशीअविष, दृष्टि विष, क्ष्वेलौषधि, विडौषधि, जल्लौषधि, मलौषधि, आशीविष रस, दृष्टि विष रस के धारी परम ऋषि हमारा कल्याण करें ।

((छह रस ऋद्धियाँ एवं दो अक्षीण ऋद्धियाँ))

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतः, मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः
अक्षीणसंवास- महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

क्षीरस्रावी, धृतस्रावी, मधुस्रावि, अमृतस्रावि तथा अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धि धारी मुनिवर हमारे लिए मंगल करें ।

(हिंदी)

नित्य अद्भुत अचल केवलज्ञानधारी जे मुनी
मनः पर्यय ज्ञानधारक, यती तपसी वा गुणी ॥
दिव्य अवधिज्ञान धारक, श्री ऋषीश्वर को नमूं
कल्याणकारी लोक में, कर पूज वसु विधि को वमूं ॥१॥

कोष्ठस्थ धान्योपम कही, अरु एक बीज कही प्रभो
संभिन्न संश्रोत् पदानुसारी, बुद्धि ऋद्धि कही विभो ॥
ये चार ऋद्धिधर यतीश्वर, जगत जन मंगल करें
अज्ञानतिमिर विनाश कर, कैवल्य में लाकर धरें ॥२॥

दिव्य मति के बल ग्रहण, करते स्पर्शन घ्राण को
श्रवण आस्वादन करें, अवलोकते कर त्राण को ॥
पंच इंद्रि की विजय, धारण करें जो ऋषिवरा
स्वपर का कल्याण कर, पायें शिवालय ते त्वरा ॥३॥

प्रज्ञा प्रधाना श्रमण अरु प्रत्येक बुद्धि जो कही
अभिन्न दश पूर्वी चतुर्दश- पूर्व प्रकृष्ट वादी सही ॥
अष्टांग महा निमित्त विज्ञा, जगत का मंगल करें
उनके चरण में अहर्निश, यह दास अपना शिर घरे ॥४॥

जंघावलि अरु श्रेणि तंतु, फलांबु बीजांकुर प्रसून
ऋद्धि चारण धार के मुनि, करत आकाशी गमन ॥

स्वच्छंद करत विहार नभ में, भव्यजन के पीर हर
कल्याण मेरा भी करें, मैं शरण आया हूँ प्रभुवर ॥५॥

अणिमा जु महिमा और गरिमा में कुशल श्री मुनिवरा
ऋद्धि लघिमा वे धरें, मन-वचन-तन से ऋषिवरा ॥
हैं यदपि ये ऋद्धिधारी, पर नहीं मद झलकता
उनके चरण के यजन हित, इस दास का मन ललकता ॥६॥

ईशत्व और वशित्व, अन्तर्धान आप्ति जिन कही
कामरूपी और अप्रतिधातु, ऋषि पुंगव लही ॥
इन ऋद्धिधारक मुनिजनों को, सतत वंदन मैं करूँ
कल्याणकारी जो जगत में, सेय शिव-तिय को वरूँ ॥७॥

दीप्ति तप्ता महा घोरा, उग्र घोर पराक्रमा
ब्रह्मचारी ऋद्धिधारी, वनविहारी अघ वमा ॥
ये घोर तपधारी परम गुरु, सर्वदा मंगल करें
भव डूबते इस अज्ञजन को, तार तीरहि ले धरें ॥८॥

आमर्ष औषधि आषि विष, अरु दृष्टि विष सर्वोषधि
खिल्ल औषधि जल्ल औषधि, विडौषधि मल्लौषधि ॥
ये ऋद्धिधारी महा मुनिवर, सकल संघ मंगल करें
जिनके प्रभाव सभी सुखो हों, और भव-जलनिधि तरें ॥९॥

क्षीरसावी मधुसावी घृतसावी मुनि यशी
अमृतसावी ऋद्धिवर, अक्षीण संवास महानसी ॥
ये ऋद्धिधारी सब मुनीश्वर, पाप मल को परिहरें
पूजा विधि के प्रथम अवसर, आ सफल पूजा करें ॥१०॥

कर जोड़ दास 'गुलाब' करता, विनय चरणन में खड़ा
सम्यक्त्व दरशन-ज्ञान-चारित्र, दीजिये सबसे बड़ा ॥

जबतक न हो संसार पूरा चरण में रत नित रहें
वसुकर्म क्षयकर शिव लहें, बस और कुछ नहीं चहें ॥११॥

18 बुद्धि ऋद्धियाँ

- 4) **कोष्ठ-बुद्धि ऋद्धि** - जिस प्रकार भंडार में हीरा, पन्ना पुखराज चाँदी सोना धान्य आदि जहाँ रख दिए जावे बहुत समय बीत जाने पर यदि वे निकाले जावे तो जैसे के तैसे न कम न अधिक भिन्न भिन्न उसी स्थान पर रखे मिलते हैं तैसे ही सिद्धान्त न्याय व्याकरणादि के सूत्र गद्य पद्य ग्रन्थ जिस प्रकार पढ़े थे, सुने थे, पढ़ाये अथवा मनन किए थे, बहुत समय बीत जाने पर भी यदि पूछा जाए तो न एक भी अक्षर घट कर, न बढ़कर, न पलट कर, भिन्न-भिन्न ग्रन्थों को सुना दे ऐसी शक्ति
- 5) **एक बीज ऋद्धि** - ग्रन्थों के एक बीज अर्थात् मूल पद के द्वारा उसके अनेक प्रकार के अर्थों को जान लेना
- 6) **संभिन संश्रोतृत्व ऋद्धि** - बारह योजन लम्बे नौ योजन चौड़े क्षेत्र में ठहरने वाली चक्रवर्ती की सेना के हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, पक्षी, मनुष्य आदि सभी के अक्षर अनक्षर रूप नाना प्रकार के शब्दों को एक साथ अलग अलग सुनने की शक्ति
- 7) **पादानुसारणी ऋद्धि** - ग्रन्थ के आदि के, मध्य के या अन्त के एक पद को सुनकर सम्पूर्ण ग्रन्थ को कह देने की शक्ति
- 8) **दूर-स्पर्शन ऋद्धि** - मनुष्य यदि दूर से स्पर्शन करना चाहे तो अधिक से अधिक नौ योजन दूरी के पदार्थों का स्पर्शन जान सकता है । किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यत योजन दूरवर्ती पदार्थ का स्पर्शन कर लेते हैं
- 9) **दूर-श्रवण ऋद्धि** - मनुष्य यदि दूरवर्ती शब्द को सुनना चाहे तो बारह योजन तक के दूरवर्ती शब्द सुन सकता है अधिक नहीं, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यत योजन दूरवर्ती शब्द सुन लेते हैं
- 10) **दूर-अस्वादन ऋद्धि** - मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर पदार्थों का रस जान सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यत योजन दूर स्थित पदार्थ का रस जान लेते हैं
- 11) **दूर-घ्राण ऋद्धि** - मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर स्थित पदार्थ की गंध ले सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यत योजन दूर स्थित पदार्थों की गंध जान लेते हैं
- 12) **दूर-अवलोकन ऋद्धि** - मनुष्य अधिकतम सैतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन दूर स्थित पदार्थ को देख सकता है, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से हजारों योजन दूर स्थित पदार्थों को देख लेते हैं
- 13) **प्रज्ञा श्रमणत्व ऋद्धि** - जिस ऋद्धि के बल से पदार्थों के अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों को जिनको की केवली एवं श्रुत केवली ही बतला सकते हैं द्वादशांग चौदह पूर्व पढ़े बिना ही बतला देते हैं
- 14) **प्रत्येक बुद्ध ऋद्धि** - अन्य किसी के उपदेश के बिना ही जिस शक्ति के द्वारा ज्ञान संयम व्रत का विधान निरूपण किया जाता है
- 15) **दशपूर्वित्व ऋद्धि** - दसवाँ पूर्व पढ़ने से अनेक महा विद्याओं के प्रकट होने पर भी चारित्र से चलायमान नहीं होना
- 16) **चतुर्दशपूर्वित्व ऋद्धि** - सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान प्राप्त हो जाना
- 17) **प्रवादित्व ऋद्धि** - जिस शक्ति के द्वारा क्षुद्रवादियों की तो क्या यदि इन्द्र भी शास्त्रार्थ करने आए तो उसे भी निरुत्तर कर दे
- 18) **अष्टांग महानिमित्त ऋद्धि** - अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यञ्जन लक्षण, छिन्न स्वप्न इन आठ महा निमित्तों का ज्ञान

नौ चारण ऋद्धियाँ

- 1) **जंघा चारण ऋद्धि** - पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर आकाश में जंघा को बिना उठाये सैकड़ों योजन गमन करने की शक्ति

- 2) **अग्नि शिखाचारण ऋद्धि** - अग्नि शिखा पर गमन करने से अग्नि शिखाओं में स्थित जीवों की विराधना नहीं होती
- 3) **श्रेणी चारण ऋद्धि** - आकाश श्रेणी में गमन करते हुए सब जाति के जीव की रक्षा करना
- 4) **फल चारण ऋद्धि** - आकाश में गमन करते हुए फलों पर भी चले तो भी किसी प्रकार जीवों की हानि नहीं होती
- 5) **जल चारण ऋद्धि** - जल पर गमन करने से भी जीवों की हिंसा न हो
- 6) **तन्तु चारण ऋद्धि** - तन्तु अर्थात् मकड़ी के जाले के समान तन्तुओं पर भी चले तो वे टूटते नहीं
- 7) **पुष्प चारण ऋद्धि** - फूलों पर गमन करने से उनमें स्थित जीवों की विराधना नहीं होती
- 8) **बीजांकुर चारण ऋद्धि** - बीजरूप पदार्थ एवं अंकुरों पर गमन करने से उन्हें किसी प्रकार हानि नहीं होती
- 9) **नभ चारण ऋद्धि** - कायोत्सर्ग की मुद्रा में पद्मासन या खडगासन में गमन करना

तीन बल ऋद्धियाँ

- 1) **मन बल ऋद्धि** - अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त द्वादशांग के पदार्थों को विचार लेना
- 2) **वचन बल ऋद्धि** - सम्पूर्ण श्रुत का अन्तर्मुहूर्त में पाठ कर लेना फिर जिह्वा, कंठ आदि में शुष्कता एवं थकावट न होना
- 3) **काय बल ऋद्धि** - एक मास चातुर्मासिक आदि बहुत समय तक कायोत्सर्ग करने पर भी शरीर का बल कान्ति आदि थोड़ा भी कम न होना एवं तीनों लोकों को कनिष्ठ अंगुली पर उठाने की सामर्थ्य का होना

ग्यारह विक्रिया ऋद्धियाँ

- 1) **अणिमा ऋद्धि** - परमाणु के समान अपने शरीर को छोटा बना लेना
- 2) **महिमा ऋद्धि** - सुमेरु पर्वत से भी बड़ा शरीर बना लेना
- 3) **लघिमा ऋद्धि** - वायु से भी हल्का शरीर बना लेना
- 4) **गरिमा ऋद्धि** - वज्र से भी भारी शरीर बना लेना
- 5) **कामरूपित्व ऋद्धि** - एक साथ अनेक आकार वाले अनेक शरीरों को बना लेना
- 6) **वशित्व ऋद्धि** - तप बल से सभी जीवों को अपने वश में कर लेना
- 7) **ईशित्व ऋद्धि** - तीन लोक की प्रभुता होना
- 8) **प्राकम्य ऋद्धि** - जल में पृथ्वी की तरह और पृथ्वी में जल की तरह चलना
- 9) **अन्तर्धान ऋद्धि** - तुरन्त अदृश्य होने की शक्ति
- 10) **आप्ति ऋद्धि** - भूमि पर बैठे हुए ही अंगुली से सुमेरु पर्वत की चोटी सूर्य और चन्द्रमा को छू लेना
- 11) **अप्रतिघात ऋद्धि** - पर्वतों के मध्य से खुले मैदान के समान आना-जाना रुकावट न आना

सात तप ऋद्धियाँ

- 1) **दीप्ति ऋद्धि** - बड़े-बड़े उपवास करते हुए भी मनोबल, वचन बल का यवल का बढ़ना शरीर में सुगंधि आना, सुगंधित निश्वास निकलना, तथा शरीर में म्लानता न होकर महा कान्ति का होना
- 2) **तप्त ऋद्धि** - भोजन से मलमूत्र रक्त मांस आदि का न बनना गरम कढ़ाही में पानी की तरह सूख जाना
- 3) **महाउग्र ऋद्धि** - एक दो चार छह पक्ष मास उपवास आदि में से किसी एक को धारण करके मरण पर्यन्त न छोड़ना
- 4) **घोर तप ऋद्धि** - भयानक रोगों से पीड़ित होने पर भी उपवास व काय क्लेश आदि से नहीं हटना
- 5) **घोर पराक्रम ऋद्धि** - दुष्ट राक्षस पिशाच के निवास स्थान भयानक जानवरों से व्याप्त पर्वत, गुफा शमशान सूनें गाँव में निवास करने वाले समुद्र के जल को सुखा देना एवं तीनों लोकों को उठा के पैरों देने की सामर्थ्य
- 6) **महाघोर ऋद्धि** - सिंह निक्रीडित आदि महा उपवासों को करते रहना
- 7) **अघोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि** - चिरकाल तक तपश्चरण करने के कारण स्वप्न में भी ब्रह्मचर्य से न डिगना आदि

विकार परिस्थिति मिलने पर भी ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहना

८. औषधि ऋद्धि

- 1) आमर्शौषधि ऋद्धि - जिनके हाथ पैर आदि को छूने से एवं समीप आने मात्र से ही सब रोग दूर हो जाए ।
- 2) सर्वौषधि ऋद्धि - जिनके समस्त शरीरके स्पर्श करने वाली वायु ही समस्त रोगों को दूर कर देती है ।
- 3) आशीविष ऋद्धि - महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनके आशीर्वाद रूप शब्द सुनने से निरोग या निर्विष हो जाता है ।
- 4) दृष्टि (दृष्टिनिर्विष) विष ऋद्धि - महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनकी दृष्टि से निर्विष हो जाए ।
- 5) क्ष्वेलौषधि ऋद्धि - जिनके थूक, कफ आदि से लगी हुई हवा के स्पर्श से ही रोग दूर हो जावे ।
- 6) विडौषधि ऋद्धि - जिनके मल (विष्ठा) से स्पर्श की हुई वायु ही रोग नाशक हो ।
- 7) जल्लौषधि ऋद्धि - जिनके शरीर के पसीने में लगी हुई धूल महारोग नाशक होती है ।
- 8) मलौषधि ऋद्धि - जिनके दांत, कान, नाक, नेत्र आदि का मैल सर्व रोग नाशक होता है ।

६. रस ऋद्धि

- 1) आशीविष रस ऋद्धि - जिन मुनि के कर्म उदय से क्रोधपूर्वक मर जाओ शब्द निकल जाय तो वह व्यक्ति तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।
- 2) दृष्टि विष रस ऋद्धि - मुनि की क्रोध पूर्ण दृष्टि जिस व्यक्ति पर पड़ जाये वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।
- 3) क्षीरसावी ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही दूध के समान गुणकारी हो जावे अथवा जिनके वचन सुनने से क्षीण पुरुष भी दूध के समान बल को प्राप्त करे ।
- 4) धृतसावी ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही घी के समान बलवर्धक हो जाए एवं जिनके वचन धृत के समान तृप्ति करें ।
- 5) मधुसावी ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही मधुर हो जाए अथवा जिनके वचन सुनकर दुःखी प्राणी भी साता का अनुभव करे ।
- 6) अमृतसावी ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही अमृत के समान पुष्टि कारक हो जाए अथवा जिनके वचन अमृत के समान आरोग्यकारी हो ।

२. अक्षीण ऋद्धि

- 1) अक्षीण संवास ऋद्धि - जिनके निवास स्थान में इन्द्र, देव, चक्रवर्ती की सेना भी बिना किसी परस्पर विरोध के ठहर सके उसे अक्षीण संवास ऋद्धि कहते हैं ।
- 2) अक्षीण महानस ऋद्धि - ऋद्धिधारी मुनिराज जिस पात्र आहार करे उस दिन उस पात्र में बचा हुआ आहार चक्रवर्ती की सेना भी कर जाये तब भी आहार कम नहीं पड़े ।

स्तुति-बुधजनजी

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी ॥१॥

तुम ना पिछान्या अन्य मान्या, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥२॥

भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो ।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥३॥

धन्य घड़ी यो, धन्य दिवस यो ही, धन्य जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥४॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरें ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण युत, कोटि रवि छवि को हरें ॥५॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि अत्तम भयो ।
मो उर हर्ष ऐसो भयो, मनो रंक चिंतामणि लयो ॥६॥

मैं हाथ जोड़ नवाऊं मस्तक, वीनऊं तुव चरणजी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारण तरण जी ॥७॥

जाचूं नहीं सुर-वास पुनि, नर-राज परिजन साथ जी ।
'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भव भव, दीजिए शिवनाथ जी ॥८॥

देवशास्त्रगुरुयुगलजी

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अंतर
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन ॥
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण
उन देव-परम-आगम गुरु को, शत-शत वंदन शत-शत वंदन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया ॥
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरा-मृत्युविनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है ॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है
संतप्त-हृदय प्रभु! चंदन-सम, शीतलता पाने आया है ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

उज्ज्वल हूँ कुंद-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किंचित् भी
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही ॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया
निज शाश्वत अक्षय निधि पाने, अब दास चरण रज में आया ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

यह पुष्प सुकोमल कितना है! तन में माया कुछ शेष नहीं
निज-अंतर का प्रभु भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिंतन कुछ फिर सम्भाषण कुछ, क्रिया कुछ की कुछ होती है
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ, जो अंतर-कालुष धोती है ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अब तक अगणित जड़-द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शांत हुई
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ॥
युग-युग से इच्छा-सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ
पंचेन्द्रिय-मन के षट्-रस तज, अनुपम-रस पीने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा

झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा ॥
अतएव प्रभो! यह नश्वर-दीप, समर्पण करने आया हूँ
तेरी अंतर लौ से निज, अंतर-दीप जलाने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जड़-कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या-भ्रंति रही मेरी
मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी ॥
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ
निज-अनुपम गंध-अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है
मैं अकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है ॥
मैं शांत निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचरि मेरी
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

क्षणभर निजरस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज-अनंद अमृत पीता है ॥
अनुपम-सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है
दर्शन-बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरिहन्त-अवस्था है ॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज-गुण का अर्घ्य बनाऊँगा
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरिहन्त-अवस्था पाऊँगा ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा
मृग-सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा ॥१॥

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ
तन जीवन यौवन अस्थिर हैं, क्षण भंगुर पल में मुरझाएँ ॥२॥

सम्राट् महाबली सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या ॥३॥

संसार महा-दुःखसागर के, प्रभु! दुःखमय सुख-आभासों में
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन-कामिनि-प्रासादों में ॥४॥

मैं एकाकी एकत्व लिए, एकत्व लिए सब ही अत्ते
तन-धन को साथी समझा था, पर वे भी छोड़ चले जाते ॥५॥

मेरे न हुए ये मैं इनसे, अतिभिन्न अखंड निराला हूँ
निज में पर से अन्यत्व लिए, निज सम-रस पीनेवाला हूँ ॥६॥

जिसके श्रृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता ॥७॥

दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता
मानस वाणी अरु काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ॥८॥

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अंतस्थल
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अंतर्बल ॥९॥

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें ॥१०॥

हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकांत विराजें क्षण में जा
निज-लोक हमारा वासा हो, शोकांत बनें फिर हमको क्या ॥११॥

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नयतम सत्वर टल जावे
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर मोह विनश जावे ॥१२॥

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी ॥१३॥

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज-अंतर्बल से खिल जावे ॥१४॥

सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा-ज्वाला
परिणाम निकलता है लेकिन, मानों पावक में घी डाला ॥१५॥

तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख की ही अभिलाषा
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा ॥१६॥

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे
अतएव झुकें तब चरणों में, जग के माणिक-मोती सारे ॥१७॥

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं ॥१८॥

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक, यह नग्न-स्वरूप तुम्हारा है
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्श कराने वाला है ॥१९॥

जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो
अथवा वह शिव के निष्कण्टक-पथ में विष-कण्टक बोता हो ॥२०॥

हो अर्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो ॥२१॥

करते तप शैल नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में
समतारस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में ॥२२॥

अंतर-ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ
भव-बंधन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अंतर की कलियाँ ॥२३॥

तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ ॥२४॥

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञानदीप अगम! प्रणाम
हे शांति-त्याग के मूर्तिमान्, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम ॥

ओ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्य अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देवशास्त्रगुरुद्यानतरायजी

प्रथम देव अरहंत, सुश्रुत सिद्धांत जू
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त, मुक्तिपुर पन्थ जू ॥
तीन रतन जग मांहि सो ये भवि ध्याइये
तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइये ॥

पूजौं पद अरहंत के, पूजौं गुरुपद सार
पूजौं देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपद-प्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविधि नचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धांत, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जे त्रिजग उदर मंझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घिसि सचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

चंदन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन
जासों पूजौ परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

यह भवसमुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई
अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही
उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल पुंज धरि त्रय गुण जचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

तंदुल शालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन
जासों पूजौ परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भान हैं
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहि प्रधान हैं ॥
लहि कुंद कमलादिक पुहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास अधीन
जासों पूजौ परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अति सबल मद-कंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सु गरुड़ समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन
जासों पूजौ परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाश ज्योति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचन के सुभाजन में खचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

स्वपरप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन
जासों पूजौ परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जे कर्म-ईधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै
वर धूप तासु सुगन्धता करि, सकल परिमलता हंसै ॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलनमाहि नहीं पचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

अग्निमांहि परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन
जासों पूजौ परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं
मोसे न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं

अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

जे प्रधान फल फलविषै, पंचकरण-रस लीन ।
जासों पूजौ परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम के पातक हरूं ॥
इहि भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

वसुविधि अर्घ संजोय के, अति उछाह मन कीन
जासों पूजौ परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार
भिन्न भिन्न कहूं अरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥१॥

पद्धरि छन्द

कर्मन की त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छयालिस गुणगंभीर ॥२॥

शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदौ मन-वचन करि सुसेव ॥३॥

जिनकी ध्वनि है ओंकाररूप, निर-अक्षर मय महिमा अनूप
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥४॥

सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूथे बारह सुअंग
रवि शशि न हरें सो तम हराय, सो शास्त्र नमौ बहु प्रीति ल्याय ॥५॥

गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रतनत्रय-निधि अगाध
संसारदेह वैराग्य धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥६॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठबीस, भवतारन तरन जिहाज ईस

गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु-नाम जपौ मन-वचन-काय ॥७॥

सोरठा

कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरे
द्यानत सरधावान्, अजर अमरपद भोगवे ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीजिन के परसाद तें, सुखी रहें सब जीव
या तें तन मन वचन तें, सेवो भव्य सदीव ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षेपत्)

पंचपरमेष्ठीप्रवैयाजी

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन ॥
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ सन्निकट होहु मेरे भगवन ॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधि करणं

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ ॥
मैं जन्म-जरा-मृत्यु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं ॥

शीतल चंदन है भेंट तुम्हें संसार-ताप नाशो स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही
शुभ-अशुभ भाव की भँवरों में चैतन्य शक्ति निज अटक रही ॥
तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया ॥
मैं काम-भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भ्रमाया हूँ
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ ॥
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्त्ता माना
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना ॥
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल ॥
यह धूप चढ़ाकर अब आठों कर्मों का हनन करूँ स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का ॥
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी
हे पंच परम परमेशी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेशिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अरहन्त देव को नमस्कर ॥१॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कर ॥२॥
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार
हे मुक्तिवधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कर ॥३॥
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कर ॥४॥
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार
हे द्रव्यभाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कर ॥५॥

बहु पुण्यसंयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन
 हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन ॥६॥
 निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ
 अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ॥७॥
 निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ
 पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ ॥८॥
 जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान में ध्याऊँगा
 तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा ॥९॥
 है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा
 सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा ॥१०॥
 अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन
 तबतक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति
 स्वाहा

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ
 मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ ॥१२॥
 (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नवदेवता - पूजन - आर्यिका - ज्ञानमती

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक साधू त्रिभुवनवन्द्य हैं
 जिनधर्म जिनागम जिनेश्वरा मूर्ति जिनग्रह वन्द्य हैं ॥
 नवदेवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें
 आह्वन कर थापें यहाँ, मन में अतुल श्रद्धा धरें ॥

ॐ ह्रीं अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र अवतर अवतर
 संवौषट् आह्वाननं
 ॐ ह्रीं अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः
 ठः स्थापनं
 ॐ ह्रीं अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र मम सन्निहितो
 भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगानदी का नीर निर्मल बाह्य मल धोवे सदा
अंतर मलों के क्षालने को नीर से पूजूं मुदा ॥
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योजन्म-जरा मृत्यु
विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर मिश्रित गंध चन्दन, देह ताप निवारता
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरन्त ही वारता
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योसंसार-ताप विनाशनाय
चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

क्षीरोदधि के फेन सम, सित तन्दुलों को लायके
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढाय के
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअक्षय पद प्राप्तये
अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

चंपा चमेली केवडा, नाना सुगन्धित ले लिए
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योकाम-बाण विनाशनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पायस मधुर पक्वान मोदक, अदि को भर थाल में
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु, पूजहु नत भाल में
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें

सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो-क्षुधा-रोग-विनाशनाय
नैवेध्यम् निर्वपामीति स्वाहा

करपूर ज्योति जगमगे दीपक, लिया निज हाथ में
तुअ अरती तम वारती, पाऊं सुज्ञान प्रकाश मैं
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो-मोह-अन्धकार-विनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दश गंध धूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊं सदा
नीज आत्मगुण सौरभ उठे, हो कर्म सब मुझसे विदा
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो-अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं
निर्वपामीति स्वाहा

अंगूर अमरख आम अमृत, फल भराऊं थाल में
उत्तम अनुपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूं आज मैं
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो-महा-मोक्ष-फल-प्राप्ताये
निर्वपामीति स्वाहा

जल गंध अक्षत पुष्प चरू, दीपक सुधूप फलार्घ ले
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह बस अर्घ से पूजत मिले
नवदेवताओ की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो-अनर्घ-पद-प्राप्ताये अर्घ
निर्वपामीति स्वाहा

दोहा-

जलधारा से नित्य मैं, जग में शांति हेत
नव देवों को पूजहु, श्रद्धा भक्ति समेत ॥
(शान्तये शांतिधारा)

नानाविधि के सुमन ले, मन में बहु हर्षाय
मैं पूजूं नव देवता पुष्पांजलि चढ़ाय ॥
(दिव्य पुष्पांजलि)

(जाप्य)

ॐ ह्रीं अरहंतसिद्धाचार्यउपाध्यायसर्वसाधूजिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयेभ्योनमः

जयमाला

चिच्चिन्तामणी रत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो
गाऊं गुण मणिमाल, जयवन्ते वंदो सदा ॥

जय जय श्री अरिहंत देव देव हमारे
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारें ॥१॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूं
जय अष्ट कर्म मुक्ति की मैं अर्चना करूं ॥२॥
आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं
दीक्षादी दे असंख्य भव्य तार रहे हैं ॥
जैवन्त उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करे धनी ॥३॥
जय साधू अठाईस गुणों को धरें सदा
निज आत्मा की साधना से च्युत न हो कदा ॥
ये पञ्च परम देव सदा वन्द्य हमारे
संसार विषय सिन्धु से हमको भी उबारें ॥४॥
जिन धर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा ॥
इसकी ध्वनि पियूष का जो पान करेंगे

भव रोग दूर कर वो मुक्ति कान्त बनेंगे ॥५॥
जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं ॥
कृतिम व अकृतिम जिनालयों को जो भजे
वे कर्म शत्रु जीत शिवालय में जा बसे ॥६॥
नवदेवताओ की जो नित आराधना करे
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करे ॥
मैं कर्म शत्रु जीतने के हेतु ही जजूं
सम्पूर्ण 'ज्ञानमती' सिद्धि हेतु ही भजूं ॥७॥

दोहा-

नव देवों को भक्तिवश, कोटि-कोटि प्रणाम
भक्ति का फल मैं चहुँ, निज पद में विश्राम ॥८॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योजयमाला पूर्णाध्वं
निर्वपामीति स्वाहा

जो भव्य श्रद्धा भक्ति से नव देवताओ की भक्ति करे
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें ॥
नवनिधि अतुल भण्डार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते
सुख सिन्धु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते ॥९॥

इत्याशिर्वादः

॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥

सिद्धपूजा (हिन्दी द्रव्याष्टक)

(कविश्री हीराचंद)

(अडिल्ल छन्द)

अष्ट-कर्म करि नष्ट अष्ट-गुण पाय के,
अष्टम-वसुधा माँहि विराजे जाय के
ऐसे सिद्ध अनंत महंत मनाय के,

संवौषट् अह्वान करूँ हरषाय के ॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्! (अह्वाननम्)
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठः! ठः! (स्थापनम्)
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! (सन्निधिकरणम्)

(छन्द त्रिभंगी)

हिमवन्-गत गंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा
अनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मन चंगा भरि भृंगा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्यु-
विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचंदन लायो कपूर मिलायो, बहु महकायो मन भायो
जल संग घिसायो रंग सुहायो, चरन चढ़ायो हरषायो ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल उजियारे शशि-दुति टारे, कोमल प्यारे अनियारे
तुष-खंड निकारे जल सु-पखारे, पुंज तुम्हारे ढिग धारे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु की बारी प्रीति-विहारी, किरिया प्यारी गुलजारी

भरि कंचनथारी माल संवारी, तुम पद धारी अतिसारी ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर- विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान निवाजे स्वाद विराजे, अमृत लाजे क्षुध भाजे
बहु मोदक छाजे घेवर खाजे, पूजन काजे करि ताजे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर- विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

आपा-पर भासे ज्ञान प्रकाशे, चित्त विकासे तम नासे
ऐसे विध खासे दीप उजासे, धरि तुम पासे उल्लासे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर- विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकार-विनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा

चुंबत अलिमाला गंधविशाला, चंदन काला गरुवाला
तस चूर्ण रसाला करि तत्काला, अग्नि-ज्वाला में डाला ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर- विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
अष्ट-कर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल अतिभारा, पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा

रितु-रितु का न्यारा सत्फल सारा, अपरंपारा ले धारा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतर्यामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल-फल वसुवृंदा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा
मेटो भवफंदा सब दुःखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतर्यामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(दोहा)

ध्यान-दहन विधि-दारु दहि, पायो पद-निरवान
पंचभाव-जुत थिर थये, नमूं सिद्ध भगवान् ॥१॥

(त्रोटक छन्द)

सुख सम्यक्-दर्शन-ज्ञान लहा, अगुरु-लघु सूक्ष्म वीर्य महा
अवगाह अबाध अघायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२॥

असुरेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र जजें, भुवनेन्द्र खगेन्द्र गणेन्द्र भजें
जर-जामन-मर्ण मिटायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥३॥

अमलं अचलं अकलं अकुलं, अछलं असलं अरलं अतुलं
अबलं सरलं शिवनायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥४॥

अजरं अमरं अघरं सुधरं, अडरं अहरं अमरं अधरं
अपरं असरं सब लायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥५॥

वृषवंद अमंद न निंद लहें, निरदंद अफंद सुछंद रहें
नित आनंदवंद बधायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥६॥

भगवंत सुसंत अनंत गुणी, जयवंत महंत नमंत मुनी
जगजंतु तणे अघ घायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥७॥

अकलंक अटंक शुभंकर हो, निरडंक निशंक शिवंकर हो
अभयंकर शंकर क्षायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥८॥

अतरंग अरंग असंग सदा, भवभंग अभंग उत्तंग सदा
सरवंग अनंग नसायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥९॥

ब्रह्मंड जु मंडल मंडन हो, तिहुँ-दंड प्रचंड विहंडन हो
चिद्पिंड अखंड अकायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१०॥

निरभोग सुभोग वियोग हरे, निरजोग अरोग अशोक धरे
भ्रमभंजन तीक्ष्ण सायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥११॥

जय लक्ष अलक्ष सुलक्षक हो, जय दक्षक पक्षक रक्षक हो
पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१२॥

अप्रमाद अनाद सुस्वादरता, उनमाद विवाद विषादहता
समता रमता अकषायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१३॥

निरभेद अखेद अछेद सही, निरवेद अवेदन वेद नहीं
सब लोक-अलोक के ज्ञायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१४॥

अमलीन अदीन अरीन हने, निजलीन अधीन अछीन बने
जम को घनघात बचायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१५॥

न अहार निहार विहार कबै, अविकार अपार उदार सबै
जगजीवन के मनभायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१६॥

असमंध अधंद अरंध भये, निरबंध अखंद आंध ठये
अमनं अतनं निरवायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१७॥

निरवर्ण अकर्ण उधर्ण बली, दुःख हर्ण अशर्ण सुशर्ण भली
बलिमोह की फौज भगायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१८॥

अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभू अति-शुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध विभू
परमात्म पूरन पायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१९॥

विस्व चिद्रूप स्वरूप द्युती, जसकूप अनूपम भूप भुती
कृतकृत्य जगत्त्रय-नायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२०॥

सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू उत्कृष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू
शिव तिष्ठत सर्व-सहायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२१॥

जय श्रीधर श्रीकर श्रीवर हो, जय श्रीकर श्रीभर श्रीझर हो
जय रिद्धि सुसिद्धि-बढ़ायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२२॥

(दोहा)

सिद्ध-सुगुण को कहि सके, ज्यों विलसत नभमान
'हीराचंद' ता ते जजे, करहु सकल कल्याण ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सकलकर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परिमेष्ठिने जयमाला-पूर्णार्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा।

(अडिल्ल छन्द)

सिद्ध जजैं तिनको नहि आवे आपदा
पुत्र - पौत्र धन - धान्य लहे सुख - संपदा ॥
इंद्र चंद्र धरणेद्र नरेन्द्र जु होय के
जावें मुकति मँझार करम सब खोय के ॥२४॥

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सिद्धपूजा- युगलजी

(श्री युगलजी कृत)

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये
प्रांजल प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये ॥
सर्वोच्च हो अत एव बसते, लोक के उस शिखर रे!
तुमको हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया ॥
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! धूधू क्रोधानल जलता है
अज्ञान-अमा के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है ॥
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में
मैं इसीलिए मलयज लाया, क्रोधासुर भागे पलकों में ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा

अधिपति प्रभु! धवल भवन के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल ॥
मैं महामान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड-खंड लोकांत-विभो
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

चैतन्य-सुरभि की पुष्पवाटिका, में विहार नित करते हो
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो ॥
निष्क्रम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु मधुशाला से

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्-तृष्णा अविरल पीन हुई ॥
आक्रमण क्षुधा का सहा नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये
सत्वर तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय
कैवल्यकला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव ॥
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावल्याँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी धूपों से
अतएव निकट नहि आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे ॥
यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण विशुद्ध हुआ
छक गया योग-निद्रा में प्रभु! सर्वांग अमी है बरस रहा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में
प्रति पल बरसात गगन से हो, रसपान करो शिव-गगरी में ॥
ये सुरतरुओ के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा

तेरे विकीर्ण गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूति अनुभूति लिये ॥
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश
शोध-प्रबंध चिदात्म के, स्रष्टा तुम ही एक ॥

जगाया तुने कितनी बार! हुआ नहि चिर-निद्रा का अन्त
मंदिर सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त ॥
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान ॥
ज्ञान की प्रति पल उठे तरंग, झाँकता उसमें आत्मराम
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम ॥
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी गहल अनन्त
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत ॥
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति ॥

अतः जड़-कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश ॥
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच ॥
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात वहाँ की कैसी अद्भुत देव
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव!
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान ॥
अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव
शुभाशुभ की जड़ता को दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय ॥
अहो चित् परम अकर्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष, सभी ज्ञानी का यह परिवेश ॥

बताये मर्म अरे यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ ॥
किया तुमने जीवन का शिल्प खिरे सब मोहकर्म और गात
तुम्हारा पौरुष झंझावात, झड़ गये पीले-पीले पात ॥
नहीं प्रज्ञा-आवर्तन शेष, हुए सब आवागमन अशेष

अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक ॥
तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य कहें तुम ज्ञायक लोकालोक
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग ॥
योग-चांचल्य हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंज
अरे! ओ योगरहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत ॥
जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध ॥
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल पुनीत
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवलमहल के बीच ॥
उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ!
अरे! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात ॥
प्रभो! बीती विभावरी आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चिर-विलास चिद्धह्य में, चिर-निमग्न भगवंत
द्रव्य-भाव स्तुति से प्रभो!, वंदन तुम्हें अनंत ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री रत्नत्रयपूजा

(कविश्री दयानाराय)

(दोहा)

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुःख-पावक जल-धार
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रय धर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट्! (आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रय धर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः! (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रय धर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! (सन्निधिकरणम्)

अष्टक (सोरठा छन्द)
क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल-जल अति-सोहनो
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा
चंदन-केसर गारि, परिमल-महा-सुगंधमय
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय भवताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा
तंदुल अमल चितार, बासमती-सुखदास के
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अक्षयपद्-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा
महकें फूल अपार, अलि गुंजे ज्यें थुति करें
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा
लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा
दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशे जगत् में
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा
धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूर की
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा
फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भज्जूं ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग तीनों मयी
पार उतारन यान, 'द्यानत पूजूं व्रत-सहित ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय - पूजन (द्यानतरायजी कृत)

(देहा)

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुःख-पावक जल-धार
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रय धर्मा अत्र अवतर अवतर संवौषट्! (आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रय धर्मा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः! (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रय धर्मा अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! (सन्निधिकरणम्)

अष्टक (सोरठा छन्द)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल-जल अति-सोहूनी
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदन-केसर गारि, परिमल-महा-सुगंधमय
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥

ओ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय भवताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अमल चितार, बासमती-सुखदास के
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

महकें फूल अपार, अलि गुंजे ज्यों थुति करें
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशे जगत् में
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूर की
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग तीनों मयी
पार उतारन यान्, 'द्यानत पूजूं व्रत-सहित ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यकदर्शन - पूजन

सिद्ध अष्ट-गुणमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान
ज्ञान चरित जिंह बिन अफल, सम्यक् दर्श प्रधान ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगंध अपार, तृषा हरे मल छय करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय भवताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशे महा
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार, निहचे सुर-शिव-फल करै
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप आप निहचै लखे, तत्त्व-प्रीति व्योहार
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार ॥
सम्यक् दर्शन-रत्न गहीजै, जिन-वच में संदेह न कीजै
इह भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहे मत प्राणी ॥
प्राणी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये
पर-दोष ढकिये, धरम डिगते को सुथिर कर, हरखिये ॥
चहुं संघ को वात्सल्य कीजै, धरमकी परभावना
गुन आठ सों गुन आठ लहिके, इहां फेर न आवना ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसहित पंचविंशति दोषरहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सम्यक्ज्ञानमूजन

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान
मोह-तपन-हर चंद्रमा सोई सम्यक् ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगंध अपार, तृषा हरे मल छय करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय भवताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विचार, निहचे सुर-शिव फल करे

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु

सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप आप जाने नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार

संशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥

सम्यक् ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अर्थ उभय संग जानो ॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये
तप रीति गहि बहु मौन देके, विनय गुण चित लाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना
इस ज्ञान ही सों भरत सीझे, और सब पटपेखना ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सम्यकचारित्र - पूजन

विषय-रोगा औषध महा, दव-कषाय जल-धार
तीर्थकर जाको धरे सम्यक् चारित्र सार ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय भवताप-विनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे शुचि करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घान-सुखकार रोग विघन जड़ता हरे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार निहचे सुर-शिव फल करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्यौहार
स्वपर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द -

सम्यक् चारित रतन संभालो, पांच पाप तजिके व्रत पालो
पंचसमिति त्रय गुपति गहिजे, नरभव सफल करहु तन छीजे
छीजे सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिये
बहु रुल्यो नरक-निगोद माहीं, विषय-कषायनि टालिये ॥

शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है
'ध्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

समुच्चय - जयमाला

सम्यक् दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुक्ति न होय
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥

चौपाई 16 मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवे, ताके करम-बंध कट जावें
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावें ॥१॥
ताको चहुं गति के दुख नाहीं, सो न परे भव-सागर माहीं
जनम-जरा-मृतु दोष मिटावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे ॥२॥
सोई दश लक्षनको साधे, सो सोलह कारण आराधे
सो परमात्म पद उपजावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे ॥३॥
सो शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई
सो रागादिक भाव बहावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे ॥४॥
सोई लोकालोक निहारे, परमानंद दशा विस्तारे
आप तिरै औरन तिरवावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे ॥५॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्रेभ्यः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

एक स्वरूप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहि जाय
तीन भेद व्योहार सब, 'ध्यानत' को सुखदाय ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

चौबीस - तीर्थकर-वृन्दावनदास

(कविवर वृन्दावनदास कृत)

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय

चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय ॥
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल शान्ति कुंथु अर मल्लि मनाय
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी
जिन-चरनन दैत चढ़ाय, भव-आताप हरी ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्य संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तन्दुल सित सोम-समान सुन्दर अनियारे
मुक्ता फल की उनमान पुञ्ज धरों प्यारे ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड सुमन सुगन्ध भरे
जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड काम-कलंक हरे ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्य कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मन-मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागै ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशगन्ध हुताशन माहि, हे प्रभु! खेवत हों
मिस्र-धूम करम जर जाहि, तुम पद सेवत हों ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि पक्क सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो
देखत दृग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करें
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाथ हित हेत
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥

अर्थ - श्रीमान् अर्थात् अंतरंग (अनन्त चतुष्टय) और बहिरंग (समवशरण) लक्ष्मी से युक्त तीर्थकरों के चरणों में मस्तक नवाकर अपने कल्याण के लिये, अब चौबीसों तीर्थकरों का गुणानुवाद, गुणों का समूह गा कर करता हूँ जिससे बुढ़ापे रहित अमर (मरन रहित) मोक्ष पद की प्राप्ति होती है ।

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि, स्वच्छ करा
शिव-मग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥

अर्थ - भगवान् जय हो, आप [भवतम] संसार रूपि अंधकार को [भंजन] नष्ट करने वाले हैं, [जन] भव्य जीवों के मन रूपी [कंजन] कमलों को [रंजन] विकसित करने के लिये, स्वच्छ किरणों वाले [दिनमनि] सूर्य के समान हैं । आप [शिवमग] मोक्ष मार्ग के प्रकाशक अर्थात् बताने वाले हैं, [अरिगण] शत्रुओं के समूह (अष्ट कर्मों) के नाशक, आप चौबीसों [वरा] श्रेष्ठ भगवान् है ।

जय ऋषभदेव रिषि-गन नमन्तु, जय अजित जीत वसु-अरि तुरन्त
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द-पूर ॥१॥

अर्थ - ऋषभदेव भगवान् की जय हो जिन्हें ऋषिगण नमन करते हैं । अजित नाथ भगवान् की जय हो जिन्होंने [वसु] अष्ट [अरि] कर्मशत्रु को जीत लिया है । संभवनाथ भगवान् आपकी जय हो जो कि संसार के भय को चूर कर देते हैं । अभिनन्दनाथ भगवान् आपकी जय हो आप आत्मानन्द से परिपूर्ण हैं ।

जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म द्युति तनरसाल
जय जय सुपार्श्व भव-पास नाश, जय चन्द्र चन्द्र-तनद्युति प्रकाश ॥२॥

अर्थ - सुमतिनाथ भगवान् की जय हो आप [सुमति] सद्बुद्धि प्रदान करने वाले हैं । पद्मप्रभु भगवान् की जय हो जिनके शरीर की [द्युति] कांति [पद्म] लाल कमल के समान [रसाल] अत्यंत सुंदर है अर्थात् लाल वर्ण वाले हैं । सुपार्श्वनाथ भगवान् की जय हो जिन्होंने [भवपास] संसार रूपी जाल को नाश कर लिया है । चंद्रप्रभु भगवान् की जय हो जिन की शरीर की [द्युति] कांति का प्रकाश चंद्रमा के समान है अर्थात् जो श्वेत वर्ण के हैं ।

जय पुष्पदन्त द्युति-दन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत
जय श्रेयनाथ नुत-सहस्रभुज, जय वासव-पूजित वासुपुज ॥३॥

अर्थ - [द्युति दंत सेत] सुन्दर दांतों की पंक्ति वाले भगवान् पुष्पदन्त की जय हो । शीतलता के [निकेत] भण्डार, शीतलता प्रदान करने वाले भगवान् शीतलनाथ की जय हो । ऐसे श्रेयनाथ भगवान् की जय, जिनके समक्ष [सहस्रभुज] सहस्र भुजाओं वाले इंद्र का मस्तक [नुत] झुका रहता है । [वासव] इन्द्रों द्वारा पूजित वासुपूज्य भगवान् की जय हो ।

जय विमल विमल-पद देनहार, जय जय अनन्त गुण-गण अपार
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति पुष्टि करेत ॥४॥

अर्थ - मल रहित अर्थात् मोक्ष पद देने वाले भगवान् विमलनाथ की जय हो । अनंत गुणों के अपार समूह के धारक भगवान् अनंतनाथ की जय हो । धर्म से मोक्ष सुख प्रदान करने वाले धर्मनाथ भगवान् की जय हो । शान्ति की पुष्टि करने वाले भगवान् शान्तिनाथ की जय हो ।

जय कुन्धु कुन्धुवादिक रखेय, जय अरजिन वसु-अरि छय करेय
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल ॥५॥

अर्थ - [कुन्धुवादिक] चींटी आदि जीवों के रक्षक (अहिंसा परमोधर्म के उपदेशक), भगवान् कुन्धुनाथ की जय हो । अष्टकर्म रूपी [अरि] शत्रु को नष्ट करने वाले भगवान् अरुनाथ जी की जय हो । मोह रूपी [मल्ल] बलशाली शत्रु को नष्ट करने वाले बलशाली मल्लि नाथ भगवान् की जय हो । व्रतों के [शल्ल] शल्य को [दल्ल] नष्ट करने वाले मुनिसुव्रत भगवान् की जय हो ।

जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिव-नगर साथ ॥६॥

अर्थ - नमिनाथ भगवान् की जय हो जिनके समक्ष [वासव] इंद्र [नित] सदैव [सपेम] भक्ति भाव से [नुत] मस्तक झुकाये रहते हैं । [वृष चक्र नेम] धर्म चक्र के धूरे के सामान (रथ के पहिये जिस प्रकार धूरे पर चलते हैं, उसी प्रकार धर्म चक्र के भगवान् नेमि नाथ धूरे हैं) भगवान् नेमि नाथ की जय हो । अनार्थों के नाथ भगवान् पार्श्वनाथ की जय हो । [शिव] मोक्ष [नगर] धाम

तक साथ देने वाले अर्थात् मोक्ष तक मार्ग का उपदेश देने वाले भगवान् महावीर की जय हो ।

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा, सुखकारी
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा, हितकारी ॥

अर्थ - चौबीसों तीर्थकर भगवान् आनंद के [कन्दा] भण्डार (आनंद प्रदान करने वाले) हैं, पापों को [निकन्दा] नष्ट करने वाले, सुख प्रदान करने वाले हैं । [तिन] उनके [पदजुग] दोनों चरण रूपी चंद्रमा [अमन्दा] तीव्र प्रकाश से उदीयमान हैं (इनके चरणों से महान प्रकाश निकलता रहता है), [वासव] इन्द्र इनके दोनों चरणों की वंदना करते हैं जो कि हितकारी हैं ।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर
तिन-पद मन-वच-धार, जो पूजै सो शिव लहै ॥

अर्थ - चौबीसों तीर्थकर भोगों और मुक्ति दोनों को देने वाले हैं । (उनकी भक्ति पूजन आदि करने से सांसारिक भोगों और मोक्ष के भी प्राप्ति होती है) । उनके चरणों को जो मन वचन से पूजते हैं वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

समुच्चपूजा-सरदारमलजी

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थकर ध्याय
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविशतितीर्थकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविशतितीर्थकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविशतितीर्थकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना
शुद्ध निजातम सम्यक् रक्तत्रय, निधि को नहीं पहचाना ॥
अब निर्मल रक्तत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव-आत्माप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है
अनजाने में अबतक मैंने, पर में की झूठी ममता है ॥

चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तान्त सिद्ध परमेष्ठिभ्य
संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में
अष्ट कर्म के नाश करने को, अक्षत तुम ढिग लाया मैं ॥
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तान्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्प सुगन्धी से आत्म ने, शील स्वभाव नशाया है
मन्मथ बाणों से विन्ध करके, चहुँगति दुःख उपजाया है ॥
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तान्त सिद्ध परमेष्ठिभ्य
कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

षट्तरस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई
आत्म रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई ॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु भ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तान्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्य
क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जड़दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने उजियारा
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अँधियारा ॥
ये दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ

विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो
मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी ॥
उस शक्ति दहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय
धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिग मैं ले आया
आत्मरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये
फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये ॥
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु भगवान
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान ॥
नशे घातिया कर्म अरहन्त देवा, करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी, छियालिस गुणयुत महाईशनामी ॥

तेरी दिव्यवाणी सदा भव्य मानी, महामोह विध्वंसिनी मोक्षदानी
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैनवाणी ॥
विरागी अचारज उवज्झय साधू, दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधू
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुक्ति पथ प्रचारी ॥
विदेह क्षेत्र में तीर्थकर बीस राजें, विहरमान वंदूँ सभी पाप भाजें
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्य अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये
जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे ॥
पुष्पांजलिं क्षिपेत्

बाहुबली - भगवान - पवैयाजी

जयति बाहुबलि स्वामी, जय जय करूँ वंदना बारम्बार
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागर पार ॥
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन में, छाई महिमा अपरम्पार
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गई, हुआ जगत में जय-जयकार ॥
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार
यही विनय है चारों गति के, दुःख से मेरा हो उद्धार ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु पद-पंकज में आज चढ़ाता हूँ
जन्म-मरण का नाश करूँ, आनन्दकन्द गुण गाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में अता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल मलय सुगन्धित पावन, चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ

भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढ़ाता हूँ
अक्षयपद की सहज प्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

काम शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ
काम भाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्प चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

तृष्णा की भीषण ज्वाला में, प्रतिपल जलता जाता हूँ
क्षुधा-रोग से रहित बनूँ मैं, शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ
यह मिथ्यात्व तिमिर मिट जाये, प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

है अनादि से कर्म बन्ध दुःखमय, न पृथक् कर पाता हूँ
अष्टकर्म विध्वंस करूँ, अत एव सु-धूप चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर, भी भव दुःख पाता हूँ
परम मोक्षफल शीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ
निज अनर्घ्य पद मिला न अब तक, इससे अर्घ्य चढ़ाता हूँ ॥

श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन
चरम शरीरी कामदेव तुम, पोदनपुर पति अभिनन्दन ॥
छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर, भरत चढ़े वृषभाचल पर
अगणित चक्री हुए नाम लिखने को मिला न थल तिल भर ॥
मैं ही चक्री हुआ, अहं का मान धूल हो गया तभी
एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्व हस्त जभी ॥
चले अयोध्या किन्तु नगर में, चक्र प्रवेश न कर पाया
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया ॥
भरत चक्रवर्ती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे
ठुकराया आदेश भरत का, तुम स्वतंत्र स्वाधीन रहे ॥
भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संताप हुए
दृष्टिमल्लजल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए ॥
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती, ने चक्र चलाया है
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में, चक्र आपके आया है ॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण
राज्यपाट तज ऋषभदेव के, समवशरण को किया गमन ॥
धिक्-धिक् यह संसार और, इसकी असारता को धिक्कर
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में, जलता आया है संसार ॥
जग की नश्वरता का तुमने, किया चिंतवन बारम्बार
देह भोग संसार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार ॥
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत संयम को किया ग्रहण
चले तपस्या करने वन में, रक्तत्रय को कर धारण ॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन
किन्तु शल्य थी एक हृदय में, भरत-भूमि पर है आसन ॥
केवलज्ञान नहीं हो पाया, एक शल्य ही के कारण
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन ॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणों में किया नमन
कहा कि वसुधा नहीं किसी की, मान त्याग दो हे भगवन् ॥

तत्क्षण शल्य विलीन हुई, तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए
 फिर अन्तर्मुहूर्त में स्वामी, मोह क्षीण स्वाधीन हुए ॥
 चार घातिया कर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी
 जय जयकार विश्व में गूँजा, सारी जगती मुसकानी ॥
 झलका लोकालोक ज्ञान में, सर्व द्रव्य गुण पर्यायें
 एक समय में भूत भविष्यत्, वर्तमान सब दर्शयें ॥
 फिर अघातिया कर्म विनाशे, सिद्ध लोक में गमन किया
 अष्टापद से मुक्ति हुई, तीनों लोकों ने नमन किया ॥
 महा मोक्ष फल पाया तुमने, ले स्वभाव का अवलंबन
 हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि-कोटि शत-शत वंदन ॥
 आज आपका दर्शन करने, चरण-शरण में आया हूँ
 शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ ॥
 भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान
 निज परिणति में रमण करूँ प्रभु, हो जाऊँ मैं आप समान ॥
 समकित दीप जले अन्तर में, तो अनादि मिथ्यात्व गले
 राग-द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य पाप सन्ताप टले ॥
 त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ
 शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ ॥
 मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रस लीन रहूँ
 सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ, सदा सुखी स्वाधीन रहूँ ॥
 आज आपका रूप निरख कर, निज स्वरूप का भान हुआ
 तुम-सम बने भविष्यत् मेरा, यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ
 हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन
 प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कटें हमारे भव बंधन ॥
 चक्रवर्ति इन्द्रादिक पद की नहीं कामना है स्वामी
 शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पायें हे! अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

घर-घर मंगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जानें
 वीतराग विज्ञान ज्ञान से, शुद्धात्म को पहिचानें ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री बाहुबली स्वामी पूजा

(कवि श्री जिनेश्वरदासजी)

(दोहा)

कर्म-अरिगण जीत के, दरशायो शिवपंथ
सिद्ध-पद श्रीजिन लह्यो, भोगभूमि के अंत ॥
समर-दृष्टिजल जीत लहि, मल्लयुद्ध जय पाय
वीर-अग्रणी बाहुबली, वंदौ मन-वच-काय ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीजिनेन्द्र अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्! (आह्वानम्)
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठः! ठः! (स्थापनम्)
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

जन्म-जरा-मरणादि तृषा कर, जगत-जीव दुःख पावें
तिहि दुःख दूर-करन जिनपद को, पूजन-जल ले आवें ॥
परम-पूज्य वीराधिवीर जिन्, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं वर्तमानावसर्पिणीसमये प्रथम कामदेव कर्मारिविजयी वीराधिवीर-वीराग्रणी श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय
जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

यह संसार मरुस्थल-अटवी, तृष्णा-दाह भरी है
तिहि दुःखवारन चंदन लेके, जिन-पद पूज करी है ॥
परम-पूज्य वीराधिवीर जिन्, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय भवताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

स्वच्छ शालि शुचि नीरज रज-सम, गंध-अखंड प्रचारी
अक्षय-पद के पावन-कारन, पूजें भवि जगतारी ॥
परम-पूज्य वीराधिवीर जिन्, बाहुबली बलधारी

तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

हरि हर चक्रपति सुर दानव, मानव पशु बस जा के
तिहि मकरध्वज-नाशक जिन को, पूजें पुष्प चढ़ा के ॥

परम-पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

दुःखद त्रिजग-जीवन को अति ही, दोष-क्षुधा अनिवारी
तिहि दुःख दूर-करन को, चरुवर ले जिन-पूज प्रचारी ॥

परम-पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह-महातम में जग जीवन, शिव-मग नाहि लखावें
तिहि निरवारन दीपक कर ले, जिनपद-पूजन आवें ॥

परम-पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

उत्तम धूप सुगंध बनाकर, दश-दिश में महकावें
दशविध-बंध निवारन-कारण, जिनवर पूज रचावें ॥

परम-पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सरस सुवर्ण सुगंध अनूपम, स्वच्छ महाशुचि लावें
शिवफल कारण जिनवर-पद की, फलसों पूज रचावें ॥

परम-पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

वसु-विधि के वश वसुधा सब ही, परवश अतिदुःख पावें
तिहि दुःख दूरकरन को भविजन, अर्घ्य जिनाग्र चढ़ावें ॥

परम-पूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी
तिनके चरण-कमल को नित-प्रति, धोक त्रिकाल हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबली-परमयोगीन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(दोहा)

आठ-कर्म हनि आठ-गुण, प्रगट करे जिनरूप
सो जयवंतो बाहुबली, परम भये शिवभूष ॥

(कुसुमलता छन्द)

जय! जय! जय! जगत्तार-शिरोमणि क्षत्रिय-वंश अशंस महान
जय! जय! जय! जगज्जन-हितकारी दीनो जिन उपदेश प्रमाण ॥
जय! जय! चक्रपति सुत जिनके, शत-सुत जेष्ठ-भरत पहिचान
जय! जय! जय! श्री ऋषभदेव जिन सो जयवंत सदा जग-जान ॥१॥

जिनके द्वितीय महादेवी शुचि नाम सुनंदा गुण की खान
रूप-शील-सम्पन्न मनोहर तिनके सुत बाहुबली महान ॥
सवा पंच-शत धनु उन्नत तन हरित-वरण शोभा असमान
वैडूर्यमणि-पर्वत मानों नील-कुलाचल-सम थिर जान ॥२॥

तेजवंत परमाणु जगत में तिन करि रच्यो शरीर प्रमाण
सत वीरत्व गुणाकर जाको निरखत हरि हरषो उर अन ॥
धीरज अतुल वज्र-सम नीरज वीराग्रणी सम अति-बलवान
जिन छवि लखि मनु शशिरवि लाजे कुसुमायुध लीनों सुपुमान ॥३॥

बालसमय जिन बाल-चन्द्रमा शशि से अधिक धरे दुतिसार
जो गुरुदेव पढ़ाई विद्या शस्त्र-शास्त्र सब पढ़ी अपार ॥

ऋषभदेव ने पोदनपुर के नृप कीने बाहुबली कुमार
दर्ई अयोध्या भरतेश्वर को आप बने प्रभुजी अनगार ॥४॥

राज-काज षट्खंड-महीपति सब दल लै चढ़ि आये आप
बाहुबली भी सन्मुख आये मंत्रिन तीन युद्ध दिय थाप ॥
दृष्टि नीर अरु मल्लयुद्ध में दोनों नृप कीजो बलधाप
वृथा हानि रुक जाय सैन्य की यातैं लड़िये आपों आप ॥५॥

भरत बाहुबली भूपति भाई उतरे समर-भूमि में जाय
दृष्टि-नीर-रण थके चक्रपति मल्लयुद्ध तब करो अघाय ॥
पगतल चलत चलत अचला तब कंपत अचल-शिखर ठहराय
निषध नील अचलाधर मानो भये चलाचल क्रोध-बसाय ॥६॥

भुज-विक्रमबली बाहुबली ने लिये चक्रपति अधर उठाय
चक्र चलायो चक्रपति तब सो भी विफल भयो तिहि ठाय ॥
अतिप्रचंड भुजदंड सूंड-सम नृप-शार्दूल बाहुबलि-राय
सिंहासन मँगाव जास पे अग्रज को दीनों पधराय ॥७॥

राज रमा दामासुर धनमय जीवन दमक-दामिनी जान
भोग भुजंग-जंग-सम जग को जान त्याग कीनों तिहि थान ॥
अष्टपद पर जाय वीर नृप वीर व्रती धर लीनों ध्यान
अचल-अंग निरभंग संग-तज संवत्सर लें एक ही थान ॥८॥

विषधर बांबी करी चरनन-तल ऊपर बेल चढ़ी अनिवार
युगजंघा कटि बाहु बेढ़िकर पहुँची वक्षस्थल पर सार ॥
सिर के केश बढ़े जिस माँहीं नभचर-पक्षी बसे अपार
धन्य-धन्य इस अचल-ध्यान को महिमा सुर गावें उर-धार ॥९॥

कर्म नासि शिव जाय बसे प्रभु ऋषभेश्वर से पहले जान
अष्ट-गुणांकित सिद्ध-शिरोमणि जगदीश्वर-पद लह्यो पुमान ॥
वीरव्रती वीराग्रगण्य प्रभु बाहुबली जगधन्य महान
वीरवृत्ति के काज 'जिनेश्वर' नमे सदा जिन-बिब प्रमान ॥१०॥

(दोहा)
श्रवनबेलगुल इन्द्रगिरि, जिनवर- बिब प्रधान
सत्तावन- फुट उतंग तनो, खड्गासन अमलान ॥
अतिशयवंत अनंत- बल- धारक बिब अनूप
अर्घ्य चढ़ाय नमौ सदा, जय जय जिनवर- भूप॥

ॐ ह्रीं वर्तमानावसर्पिणीसमये प्रथम कामदेव कर्मारिविजयी वीराधिवीर वीराग्रणी श्रीबाहुबली स्वामिने
अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

॥इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

दशलक्षण-धर्म-द्यानतरायजी

उत्तम क्षमा मारदव आर्जव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं,
आकिचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुंगति- दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अर्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव ये जीव के भाव हैं, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग ये मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं, उत्तम आकिचन, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म में सार है अर्थात् उत्कृष्ट हैं । ये दश धर्म चारों गतियों के दुःखों से निकालकर मोक्ष सुख को करने वाले हैं ।

हेमाचल की धार, मुनि- चित सम शीतल सुरभि
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-स्त्याग-आकिचन-ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : हिमवन पर्वत से निकलने वाली धारा के जल (गंगा नदी का जल) मुनिराजों के मन के समान निर्मल शीतल और सुगंधित जल से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की सदा पूजा करता हूँ ।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : दशो दिशाओ को सुगंधित करने वाले चन्दन और केशर को घिसकर संसार की ताप को नष्ट करने के लिए दश लक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : मलरहित अखण्ड (जो टूटे हुए न हो) उत्कृष्ट चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल चावलों से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की हमेशा पूजा करता हूँ ।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध- लोकलों
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : अनेक प्रकार के पुष्पों से जिनकी सुगंधी ऊर्ध्व लोक तक फैल रही है । भव की ताप को नष्ट करने के लिए 'दश लक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ ।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्- रस- संजुगत
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : अनेक प्रकार के उत्कृष्ट छहों रसों से युक्त नैवेद्य से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

बाति कपूर सुधार, दीपक- ज्योति सुहावनी
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : कपूर की बत्ती बनाकर सुन्दर लगाने वाले दीपक को धारण कर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता
भव- अताप निवार, दस- लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : अगर आदि से धूप को तैयार कर उसकी सुगंधि को सर्व दिशाओ में फैलाकर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

फल की जाति अपार, घान-नयन-मन-मोहने

भव-अताप निवार, दस-लच्छन पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : अनेक प्रकार के नासिका को, नेत्रों को और मन को मोहित करने वाले अर्थात् अच्छे लगने वाले फलों से भव की ताप नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

आठों दरब सँवार, 'घानत' अधिक उछाहसौं

भव-अताप निवार, दस-लच्छन पूजौ सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : जल चन्दन आदि आठों द्रव्यों को सजाकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

उत्तम क्षमा धर्म

पीड़ें दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं

धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥

अर्थ : बहुत दुर्जन लोग दुख दें, बांधकर अनेक प्रकार से मारपीट करे । यातनायें दे वहाँ हे पवित्र आत्मा क्रोध को न करके विवेक पूर्वक उत्तम क्षमा को धारण कीजिए ।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस, पर भव सुखदाई
गाली सुनि मन खेद न अनो, गुन को औगुन कहै अयानो ॥

कहि है अयानो वस्तु छिनै, बाँध मार बहुविधि करै

घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै ॥

ते करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहि जीयरा

अति क्रोध-अग्नि बुझाय प्राणी, साम्यजल ले सीयरा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : हे भाई उत्तमक्षमा को ग्रहण करो यह क्षमा इस भव में यश और अगले भव में सुख को देने वाली है, कोई अज्ञानी गुणों को अवगुण रूप भी कहता है गालियाँ (अपशब्द) भी देता है तो भी मन में खेद (दुःख) नहीं करना चाहिए । ऐसा वह अज्ञानी अपशब्द कहता हुआ हमारी कोई वस्तु छीन लेवे, बांध देवे, अनेक प्रकार से मारे, घर में निकाल देवे, शरीर का छेदन करे (विदारण करे) तब भी वहाँ उससे बैर भाव धारण नहीं करना चाहिए । किन्तु चिन्तन करना चाहिए कि पूर्व भवों में मैंने जो पाप कर्मों का संचय किया या जो पाप कर्म किये हे जीव अब उन्हें क्यों नहीं सहन करोगे (भोगोगे) । अत्यन्त भीषण क्रोध रूपी अग्नि को हे जीव समता रूपी अत्यन्त शीतल जल से बुझाओ । अर्थात् क्रोध के समय समता धारण करो ।

उत्तम मार्दव धर्म

मान महाविषरूप, करहि नीच गति जगत में
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥

अर्थ : मान महा विष के समान है यह मान (नीच गति) संसार में नरक गति को करने वाला है । कोमलता (मृदुता) रूपी अनुपम अमृत को ग्रहण करने वाले जीव हमेशा सुख प्राप्त करते हैं ।
मान करने से नीच गोत्र का आस्रव करते हैं और संसार में नीच जातियों में जन्म लेते हैं ।

उत्तम मार्दव गुण मन-माना, मान करने को कौन ठिकाना
बस्यो निगोद माहि तैं अया, दमरी रूँकन भाग बिकाया ॥
रूँकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया ॥
जीतव्य जीवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम मार्दव गुण मन को अच्छा लगाने वाला है, मान करने का क्या आधार है क्योंकि अनंत काल से निगोद में रहता था वहाँ से आकर स्थावर में वनस्थिति काय का जीव हुआ कभी दमरी (सबसे छोटी मुद्रा) के भाव बिक गया कभी रुकन अर्थात् बिना मूल्य के ही बिक गया भाग्य उदय से यह जीव देव हुआ और देव पर्याय से आकर ऐकन्द्री हो गया, उत्तम पर्याय से चाण्डाल हुआ, राजा भी, कीड़ों में जाकर उत्पन्न हो गया हे आत्मा, क्या जीवन, युवावस्था और धन का घमंड करता है । ये सब जल के बुलबुले के समान क्षणभर में नष्ट होने वाले हैं । जिनमें बहुत गुण है अर्थात् गुणवान है जिनकी बड़ी आयु है ऐसे माता-पिता आदि की विनय करना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

उत्तम अर्जव धर्म

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु-सम्पदा ॥

अर्थ : छल कपट नहीं करना चाहिए धन सम्पत्ति चोरों के यहाँ नहीं होती वे हमेशा निर्धन ही होते हैं (इसीलिये चोरों के शहर नहीं बसते हैं) किन्तु जिनका स्वभाव सरल होता है उनके यहाँ बहुत धन सम्पदा होती है ।

उत्तम अर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी

मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये ॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगार-सी ॥
नहि लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहि देखता ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम-आर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम आर्जव सरल स्वभाव को कहते हैं । रंचमात्र भी दगा दुख को देने वाला है, जो विचार मन में हो वही वचन में रहना और जो वचन से कहा जाय वही काय से किया जाना चाहिए । इस प्रकार से तीनों योगों को सरल करना चाहिए जैसे निर्मल स्वच्छ दर्पण में जैसा अपना मुँह करोगे वैसा ही दिखेगा । छल कपट की प्रीति अंगारों से प्रीति करने के समान है (जैसे अंगारों में ऊपर राख दिखती है और अन्दर अग्नि दहकती रहती है) । अधिक छल करके कोई भी धन सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि अधिक कर्म बंध करता है उस कर्मबंध का ध्यान नहीं करता और छल करता रहता है जैसे - बिल्ली आख बंद करके दूध पीते समय भय का त्याग करती है और पीछे मार पड़ेगी ध्यान नहीं रखती उसी प्रकार छल करने वाला कर्म बंध का ध्यान नहीं करते हुए छल करता रहता है ।

उत्तम शौच धर्म

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में ॥

अर्थ : हृदय में संतोष धारण कर शरीर से तपस्या करना चाहिए । दोष रहित शौच धर्म ही संसार में सबसे बड़ा धर्म है ।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना
आशा-फांस महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम शौच धर्म सर्व जगत में विख्यात है, यह लोभ कषाय के अभाव में होता है । लोभ सर्व पापों को (उत्पन्न) करने वाला है । आशा-इच्छा रूपी फांस भयानक दुःखों को देने वाली है अतः संतोष को धारण करने वाले जीव सुख को प्राप्त करते हैं । इस जीव की शुचिता (पवित्रता) शील, जप, तप, ज्ञान, ध्यान के प्रभाव से होती है हमेशा गंगा, यमुना आदि नदियों में

एवं समुद्र में भी स्नान करने से शुचिता अर्थात् पवित्रता नहीं होती क्योंकि इस शरीर का स्वभाव ही अपवित्र है । यह ऊपर तो अत्यन्त निर्मल दिखता है परन्तु इसके अन्दर मल भरा हुआ है । ऐसे शरीर को किस प्रकार पवित्र कहा जा सकता है । जिनका शरीर तो मलिन है पर जो गुणों के भंडार है ऐसे महाव्रती साधु ही इस शौच गुण को प्राप्त करते हैं ।

उत्तम सत्य धर्म

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज
साँच जवाहर खोल, सत्यवादी जग में सुखी ॥

अर्थ : कठोर वचन, पर निन्दा, और झूठ वचनों का त्याग करना सत्य धर्म है । सत्य रूपी जवाहर रत्न का उपयोग करना चाहिए क्योंकि सत्यवादी प्राणी संसार में सुखी रहते हैं ।

उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहि कीजै
साँचे-झूठे मनुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठी वसु नृप, धरम का भूपति भया
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम सत्य धर्म पालन करना चाहिए, दूसरों का विश्वासघात नहीं करना चाहिए । सत्यवादी और झूठे मनुष्यों को देखो, झूठ बोलने वाले पुत्र पर भी विश्वास नहीं किया जाता अर्थात् झूठे व्यक्तियों पर कोई विश्वास नहीं करता । (हमने अभी तक सच्चे और झूठे मनुष्य ही देखे हैं लोकन अपने आत्मा के पवित्र स्वभाव के पास जाकर नहीं देखा यह निश्चय सत्य धर्म का लक्षण है । साचे झूठे मनुष्यों को तो देखता है किन्तु अपने अन्तर में स्थित शुद्ध आत्म स्वरूप को नहीं देखता जो आत्मा का सत् स्वरूप है)।

निस्वार्थ सत्यवादी का सभी विश्वास करते हैं और अमानत स्वरूप धन भी देते हैं । मुनिराजों की और श्रावकों की प्रतिष्ठा (इज्जत) सत्य गुण से (सत्य धर्म से) ही है । राजा बसु ऊँचे सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था झूठ बोलने के कारण से नरक में गया और सत्य को बोलने वाला नारद स्वर्ग गया ।

उत्तम संयम धर्म

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो
संजम-रतन सँभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं ॥

अर्थ : छह काय के जीवों की रक्षा करना और पांच इन्द्रियों और मन को वश में करना उत्तम संयम धर्म है । संयम रूपी रत्न को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि विषय वासना रूपी बहुत चोर घूम रहे हैं ।

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजें अघ तेरे
सुरग-नरक-पशुगति में नहीं, अलस-हरन करन सुख ठाँहीं ॥
ठाहीं पृथिवी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो
सपरसन रसना घान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहि जिनराज सीझे, तू रूल्यो जग-कीच में
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम-मुख बीच में ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम संयम धर्म को हे मन धारण करो इसे धारण करने से अनेक भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं । यह संयम स्वर्ग, नरक और पशु (तिर्यच) गति में नहीं है । यह संयम अलस का हरण करने वाला और सुख को करने वाला है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये स्थावर और त्रस इन छह काय के जीवों पर दयाभाव धारण कर स्पर्शन, रसना, घान, चक्षु कान और मन को वश करना संयम धर्म है । इस संयम के बिना तीर्थकर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए और जिसके नहीं धारण करने से ही यह आत्मा संसार रूपी कीचड़ में फंसा रहता है । हमें इस संयम को एक क्षण को भी नहीं भूलना चाहिए हम जम अर्थात् मृत्यु के मुँह में आ रहे हैं ।

उत्तम तप धर्म

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकतिसम ॥

अर्थ : उत्तम तप को देवों के राजा इन्द्र भी चाहते हैं । यह तप कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र के समान है । यह सुख देने वाला तप बारह प्रकार का है । इन तपों को अपनी शक्ति अनुसार क्यों धारण नहीं करते हो ?

उत्तम तप सब माहि बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता ॥
अति महा दुर्लभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरै

नर- भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरें ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम तप धर्म का सब ग्रन्थों में वर्णन मिलता है । कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए यह वज्र के समान है । अनादिकाल से यह जीव निगोद में रह रहा है । वहाँ से निकलकर पृथ्वी आदि स्थावर हुआ स्थावर के बाद त्रस पयाय में विकलेन्द्री हुआ और फिर पशुओं के शरीर को धारण किया अब दुर्लभ यह मनुष्य पर्याय प्राप्त किया है । उसमें भी उच्छुक्ल, पूर्ण आयु, निरोग शरीर, जिनवाणी का संयोग, तत्व ज्ञान, आत्म चिन्तन में उपयोग अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त किया है जो व्यक्ति अत्यन्त महा दुर्लभ विषय और कषाय का त्याग कर तप को आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं वे मनुष्यभव रूपी स्वर्ण गृह पर रत्नमयी कलशा चढ़ाते हैं अर्थात् नर जन्म धन्य करते हैं ।

उत्तम त्याग धर्म

दान चार प्रकार, चार संघ को दीजिए
धन बिजुली उनहार, नर- भव लाहो लीजिए ॥

अर्थ : दान चार प्रकार के होते हैं । चारों दान चार संघ अर्थात् मुनि, अर्थिका, श्रावक, श्राविका को देना चाहिए । धन, सम्पत्ति, वैभव बिजली की चमक की तरह है अतः मनुष्य भव का लाभ लेना चाहिए ।

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय अहारा
निहचै राग- द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै ॥
दोनों सँभारै कूप- जल सम, दरब घर में परिनया
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया ॥
धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नहीं बोध को ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम त्याग समस्त संसार में श्रेष्ठ है । ये दान औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और अहारदान के भेद से चार प्रकार का है । यह तो व्यवहार त्याग है । निश्चय त्याग, राग द्वेष के त्याग को कहते हैं । ज्ञानीजन दोनों दान (निश्चय और व्यवहार) करते हैं । कुएँ का पानी यदि खर्च न हो तो खराब हो जाता है और यदि खर्च होता रहे तो खराब नहीं होता । उसी प्रकार घर में धन सम्पत्ति वैभव हो तो दान करना चाहिए जो श्रेष्ठ है नहीं तो नष्ट हो जायेगा लेकिन रहने वाला नहीं है । धन्य है वे साधु जो शास्त्र दान, अभय दान के देने वाले हैं और राग द्वेष का त्याग करने वाले हैं । बिना दान के श्रावक और साधु दोनों ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त नहीं होते ।

उत्तम अकिचन्य धर्म

परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करें मुनिराजजी
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए ॥

अर्थ : परिग्रह चौबीस भेद, यह व्यवहार अकिचन्य धर्म है और तिसना भाव उछेद, यह निश्चय अकिचन्य धर्म है ।

परिग्रह के २४ भेद (अंतरंग १४ और बाह्य १०)

अंतरंग - मिथ्यात्व + चार कषाय + नौ कषाय = १४

बाह्य - खेत + मकान + रुपया + सोना + गोधन आदि + अनाज + दासी + दास + कपड़े + बर्तन व मसाले आदि = १०

परिग्रह के चौबीस भेद है उनका त्याग (व्यवहार अकिचन्य) मुनिराज करते हैं और तृष्णा भाव को नष्ट करते हैं (निश्चय अकिञ्चन) । श्रावको भी धीरे-धीरे दोनों प्रकार के परिग्रहों को घटाना चाहिए ।

उत्तम अकिचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लँगोटी की दुख भालै ॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परै ॥
घर माहि तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमाकिचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम अकिचन्य श्रेष्ठ गुण है । परिग्रह चिन्ता-दुख के ही पर्याय है । छोटी सी फाँस भी पूरे शरीर को दुखी कर देती है उसी प्रकार लँगोटी का आवरण या लँगोटी की चाह दुख को देने वाली होती है । यह मनुष्य, महाव्रत अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की मुद्रा को धारण किये बिना समता और सुख को प्राप्त नहीं कर सकता । वे मुनिराज धन्य हैं जो पर्वतों पर नग्न खड़े रहकर तप करते हैं उनके चरणों की पूजा सुर-असुर आदि सभी करते हैं । घर में रहते हुए भी जो तृष्णा को घटाते हैं, तथा जिनको संसार में रुचि नहीं है, ऐसे जीवों का धन, यद्यपि धन बुरा ही होता है, परोपकार में लगाने के कारण फिर भी अच्छा कहा गया है ।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर - भव सदा ॥

अर्थ : धन्य है वे मुनिराज जो अन्तर से नग्न है (अंतरंग परिग्रह से रहित) शरीर से भी नग्न (बाह्य परिग्रह से रहित) खड़े रहते हैं ।

शील की रक्षक नौ बाढ़ें - १. स्त्री-राग वर्धक कथा न सुनना, २. स्त्रियों के मनोहर अंगों को न देखना, ३. पहले भोगे हुए भोगों को याद न करना, ४. गरिष्ठ व स्वादिष्ट भोजन न करना, ५. अपने शरीर को श्रृंगारित न करना, ६. स्त्रियों की शैया-आसन पर न बैठना, ७. स्त्रियों से घुल-मिल कर बातें न करना, ८. भर-पेट भोजन न करना, ९. कामोत्तेजक नृत्य, फिल्म, टीवी न देखना ।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ
सहैं बान-वरषा बहु सूरै, टिकै न नैन-बान लखि कूरै ॥

कूरै तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करै
बहु मृतक सड़हि मसान माहीं, काग ज्यों चौंचैं भरैं ॥

संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा

'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कै, शिव-महल में पग धरा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : शील को नौ बाड़ें लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (व्यवहार ब्रह्मचर्य) और अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आत्म चिन्तन करना चाहिए (निश्चय ब्रह्मचर्य) शील की नौ बाड़ों की एवं आत्म चिन्तन उन दोनों की प्राप्ति के अभिलाषी बनके मनुष्य जन्म सफल करना चाहिए ।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन मे धारण का स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री के रूप में देखना चाहिये । यह जीव रणभूमि में शूरवीरों द्वारा की जाने वाली बाणों की वर्षा को सहन कर लेता है । परन्तु स्त्रियों के क्रूर नेत्र रूपी बाण को सहन नहीं कर पाता ऐसा काम रोग से पीड़ित स्त्री के अपवित्र शरीर में रति (प्रेम) करता है जिस प्रकार शम्भान में मरे हुए सड़े हुए शरीर में कौआ प्रेम करके चौंचों से मृत शरीर को खाता है । संसार में स्त्री विष बेल के समान है । इसलिए सभी मुनिराजों ने स्त्रियों का त्याग कर दिया ।

श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि ये दस धर्म रूपी सीढ़ियां चढ़कर मोक्ष रूपी महल में प्रवेश हो जाता है ।

जयमाला

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय

कहों अरती भारती, हम पर होहु सहाय ॥

अर्थ : दशलक्षण धर्म की सदा वदना करता हूँ । इससे मन के अनुकूल फल की प्राप्ति होती है दशलक्षण धर्म की आगमानुकूल अरती कहता हूँ हे भगवान मेरी सहायता कीजिए ।

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई

उत्तम मार्दव विनय प्रकासे, नाना भेद ज्ञान सब भासे॥
उत्तम अर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी ॥
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले
उत्तम संजम पाले ज्ञाता, नर-भव सफल करै, ले साता ॥
उत्तम तप निरवांछित पाले, सो नर करम-शत्रु को टाले
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ॥
उत्तम अकिंचन व्रत धारे, परम समाधि दशा विसतारे
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर-सुर सहित मुक्ति-फल पावे ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यग-अकिंचन्य-ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्माय जयमाला
पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ : उत्तम क्षमा जिनके मन में होती है उनके मन में राग द्वेष आदि विकारभाव अंतर और बाह्य में भी कोई शत्रु नहीं रहता । उत्तम मार्दव धर्म, विनयगुण का प्रकाशन करके अनेक प्रकार से भेद-विज्ञान करवाता है । उत्तम अर्जव धर्म छलकपट को नाश करता है एवं खोटी गतियों से छुड़ाकर श्रेष्ठ गतियों में उत्पन्न करवाता है । जो उत्तम सत्य वचन मुख से बोलते हैं वे जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करते । उत्तम शौच धर्म लोभ कषाय का नाश करता है, जिनके संतोष हैं वे गुणों के भंडार होते हैं । उत्तम संयम धर्म को जो ज्ञानी जन धारण करते हैं वे साता को प्राप्त करके मनुष्य भव को सफल करते हैं । इच्छा रहित उत्तम तप धर्म का पालन करने से मनुष्यों के कर्म रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है । जो व्यक्ति उत्तम त्याग करते हैं वे भोग भूमि और स्वर्ग के सुख भोग कर मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं । जो उत्तम अकिंचन्य धर्म को धारण करते हैं वे परम समाधि को प्राप्त होते हैं । उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म को जो मन में धारण करते हैं वे मनुष्य देव गति को प्राप्त कर मोक्षफल प्राप्त करते हैं ।

द्यानत राय जी - यह दस लक्षण धर्म कर्म की निर्जरा कर भव रूपी पिंजरा को नष्ट कर अजर-अमर पद को प्राप्त कर सुख की राशि अर्थात् अनंत सुख की प्राप्ति कराते हैं ।

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राशि ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचमेरु-पूजन

गीता छन्द

तीर्थकरों के न्हवन-जलतें भये तीरथ शर्मदा,

तातें प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुन की सदा
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्
सन्निधि करणं

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जल सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दर-विद्युन्मालि-पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति
स्वाहा

जल केशर करपूर मिलाय, गंध सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छत सों पूजौं जिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

वरन अनेक रहे महकाय, फूल सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मन वांछित बहु तुरत बनाय, चरू सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम-हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीप सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिन चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्री जिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिन चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः मोक्षफलप्राप्तयेफलं निर्वपामीति स्वाहा

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिन चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा
विद्युन्माली नामि, पंच मेरु जग में प्रगट ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्र शाल वन भू पर छाजे
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥१॥

ऊपर पंचशतकपर सोहे, नंदन-वन देखत मन मोहे
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥२॥

साढ़े बांसठ सहस उंचाई, वन सुमनस शोभे अधिकाई
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥३॥

उंचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन सोहे गिरि-सीसं
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥४॥

चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रशाल चहुं जाने
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥५॥

ऊंचे पांच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥६॥

साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सोमनस चार बहुरंगा
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥७॥

उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये

चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥८॥
सुर नर चारन वंदन आवें, सो शोभा हम किह मुख गावें
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥९॥

पंच मेरु की अरती, पढ़े सुनें जो कोय
'ध्यानत' फल जाने प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
इत्याशीर्वादः

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

विद्यमान - बीस - तीर्थकर

(पं. द्यानतरायजी कृत)

द्वीप अढ़ाई मेरु पन, अरु तीर्थकर बीस
तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि सीस ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकराः! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् सन्निधि करणं

इन्द्र-फणीन्द्र-नेन्द्र-वन्द्य पद निर्मल धारी
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि-सम नीर सों (हो) पूजों तृषा निवार
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-
विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-
अजितवीर्येति विंशति विद्यमान तीर्थकरेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तीन लोक के जीव पाप-अताप सताये
तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये ॥

बावन चंदन सों जजूँ (हो) भ्रमन-तपत निरवार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी ॥

तंदुल अमल सुगंध सों (हों) पूजों तुम गुणसार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

भविक-सरोज-विकाश निद्य-तम हर रवि-से हो

जति-श्रावक आचार कथन को तुमही बड़े हो ॥

फूल सुवास अनेक सों (हो) पूजों मदन-प्रहार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो

छुधा महा दव-ज्वाल तास को मेघ लहे हो ॥

नेवज बहुघृत मिष्ट सों (हों) पूजों भूखविडार ॥

सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार

श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

उद्यम होन न देत सर्व जगमांहि भर्यो है

मोह-महातम घोर नाश परकाश कर्यो है ॥

पूजों दीप प्रकाश सों (हो) ज्ञान-ज्योति करतार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा

ध्यान अगनि कर प्रकट सर्व कीनो निरवारा ॥

धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलें निरधार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मिथ्यावादी दुष्ट लोभs हंकार भरे हैं

सबको छिन में जीत जैन के मेरु खड़े हैं ॥

फल अति उत्तम सों जजों (हों) वांछित फल-दातार ॥ सीमं. ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल-फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है

गणधर-इन्द्रनि हू तैं थुति पूरी न करी है ॥

'द्यानत' सेवक जानके (हो) जग तैं लेहु निकार ॥ सीमं ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

ज्ञान-सुधाकर चन्द, भविक-खेत हित मेघ हो

भ्रम-तम भान अमन्द, तीर्थकर बीसों नमों ॥

अर्थ - आप (बीस तीर्थकर) ज्ञान रूपी अमृत को फैलाने वाले चंद्रमा के सामान हैं, आप [भविक] भव्य जीव रूपी खेतों के [हित] कल्याण के लिए मेघ के सामान है । [भ्रम-तम] अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए आप [अमंद] तेजस्वी [भान] सूर्य के सामान हो, ऐसे बीस तीर्थकरों को हम नमस्कार करते हैं ।

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी

बाहु बाहु जिन जग-जन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥

अर्थ - सीमंधर स्वामी, आप सीमाओं को धारण करने वाले हैं, युगमंधर स्वामी आपका नाम युगों तक भव्य जीव स्मरण करते हैं, बाहु स्वामी ने संसार के प्राणियों को बाहे पकड़कर पार लगाया है, सुबाहु स्वामी - जिन्होंने अपने बाहु बल से अष्ट कर्मों को नष्ट कर दिया है ।

जात सुजातं केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं

ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं ॥

अर्थ - संजातक स्वामी, आपने केवल ज्ञान उत्पन्न कर लिया है, स्वयंप्रभू स्वामी आप तो प्रधान हैं, ऋषभानन स्वामी आप ऋषियों के दोषों को नष्ट करने के लिए [ऋषि] संतूर के सामान हैं, अनन्तवीर स्वामी आप अनंत बल के स्वामी हैं ।

सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं

वज्रधार भवगिरि वज्रर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥

अर्थ - सूर्यप्रभुस्वामी आप सूर्य के गुणों की माला के सामान हैं, विशालकीर्ति भगवन आप अत्यंत दयालु हैं, वज्रधार स्वामी आप संसार रूपी पर्वत के लिए वज्र के सामान हैं, चन्द्रानन स्वामी आपका मुख चंद्रमा के सामान है आपकी जय हो ।

भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता

ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥

अर्थ - भद्रबाहु स्वामी आश्रितों का कल्याण करने वाले हैं। भुजंगम स्वामी मिथ्यात्व रूपी सर्प को हर कर जीवों को सम्यक्त्व प्राप्त कराने वाले हैं। ईश्वर स्वामी आप सबके ईश्वर हैं और बड़े सुशोभित हैं, समवशरण विभूति से विराजमान हैं। नेमी स्वामी, आपका यश तीनों लोक में विराजमान रहता है।

वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभद्र महाभद्र बखानै

नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरज बलधारी ॥

अर्थ - वीरसेन स्वामी, सारा संसार जानता है कि आप अत्यंत बलवान हैं, अनंत बल के धारी हैं । महाभद्र स्वामी, आप महान कल्याण के करने वाले हैं । देवयश स्वामी आप महान यश के धारक हैं । अजितवीर स्वामी आप अनन्त बल के धारी हैं ।

धनुष पाँचसै काय विराजै, आयु कोटि पूर्व सब छाजै

समवशरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारन-तरन जिहाजा ॥

अर्थ - विदेह क्षेत्र में विराजमान तीर्थकरों के शरीर की अवगाहनना ५०० धनुष अर्थात् ३००० फिट है, और इन सब की आयु १ करोड़ पूर्व होती है। हे भगवान् आप सभी समवशरण से सुशोभित, संसार रूपी सागर को पार करने और पार कराने के लिए

आप जहाज के सामान हैं ।

सम्यक् रत्नत्रय-निधि दानी, लोकालोक-प्रकाशक ज्ञानी
शत-इन्द्रनि करि वंदित सोहैं, सुर-नर-पशु सबके मन मोहैं ॥

अर्थ - आप सम्यक् रत्नत्रय रूपी खजाने को देने वाले हैं (जो आपके दर्शन करते हैं, दिव्यध्वनि सुनते हैं, उनको रत्नत्रय की प्राप्ति आसानी से हो जाती है) लोकालोक को केवल ज्ञान से प्रकाशित करने वाले केवलज्ञानी हैं, आप की सेवा में १०० इंद्र सदैव आपकी वंदना करते हैं । आप सब देवों, इन्द्रों, मनुष्यों और पशुओं को मोहित करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर - युगमंधर - बाहु - सुबाहु - संजात - स्वयंप्रभ - ऋषभानन - अनन्तवीर्य - सूर्यप्रभ - विशालकीर्ति
- वज्रधर - चन्द्रानन - भद्रबाहु - श्रीभुजंग - ईश्वर - नेमिप्रभ - वीरसेन - महाभद्र - यशोधर - अजितवीर्येति विशति
विद्यमान तीर्थकरेभ्य अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुमको पूजें वंदना, करें धन्य नर सोय
'द्यानत' सरधा मन धरें, सो भी धर्मी होय ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

सोलहकारण - भावना - द्यानतरायजी

सोलह कारण भाय तीर्थकर जे भये
हरषे इन्द्र अपार मेरुपै ले गये ॥
पूजा करि निज धन्य लख्ये बहु चावसौं
हमहू षोडश कारन भावैं भावसौं ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि। अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कंचन - झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गंभीर
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पत्ता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्यग,
शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद् भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति,
आवश्यकपरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य इतिषोडशकारणेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं
निर्वपामीति स्वाहा

चंदन घसौं कपूर मिलाय पूजौं श्रीजिनवरके पाय

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल धवल सुगंध अनूप पूजौं जिनवर तिहुं जग-भूष

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार पूजौं-जिनवर जग-आधार

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह, तीर्थकर-पद-दाय

परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सद नेवज बहुविधि पक्वान पूजौं श्रीजिनवर गुणखान

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूं श्रीजिन केवलधार

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

आगर कपूर गंध शुभ खेय श्रीजिनवर आगे महकेय

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आठों दरव चढ़ाय 'द्यान्त' वरत करौं मन लाय

परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

प्रत्येक भावना के अर्घ्य (सवैया तेईसा)

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग, तो लग जीव मिथ्याती कहावे
काल अनंत फिरे भव में, महादुःखनको कहुं पार न पावे ॥

दोष पचीस रहित गुण-अम्बुधि, सम्यग्दर्शन शुद्ध ठरावे
'ज्ञान' कहे नर सोहि बड़ो, मिथ्यात्व तजे जिन-मार्ग ध्यावे ॥

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धि भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देव तथा गुरुराय तथा, तप संयम शील व्रतादिक-धारी
पापके हारक कामके छारक, शल्यनिवारक कर्म-निवारी ॥
धर्म के धीर कषायके भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी
'ज्ञान' कहे विनयो सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी ॥

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नता भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शील सदा सुखकारक है, अतिचार-विवर्जित निर्मल कीजे
दानव देव करें तसु सेव, विषानल भूत पिशाच पतीजे ॥
शील बड़ो जग में हथियार, जू शीलको उपमा काहे की दीजे
'ज्ञान' कहे नहि शील बराबर, तातें सदा दृढ़ शील धरीजे ॥

ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रत भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, अलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे
द्वादश दोउ अनेकहुं भेद, सुनाम मती श्रुति पंचम पावे ॥
चारहुं भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे
'ज्ञान' कहे श्रुत भेद अनेक जु, लोकालोक हि प्रगट दिखावे ॥

ॐ ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, संगम दुर्जन ये सब खोटो
मन्दिर सुन्दर, काय सखा सबको, हमको इमि अंतर मोटो ॥
भाउ के भाव धरी मन भेदन, नाहि संवेग पदारथ छोटो
'ज्ञान' कहे शिव-साधन को जैसो, साह को काम करे जु बणोटो ॥

ॐ ह्रीं संवेग भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पात्र चतुर्विध देख अनूपम, दान चतुर्विध भावसुं दीजे
शक्ति-समान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे ॥
देवत जे नर दान सुपात्रहि, तास अनेकहि कारण सीझें
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सुभूमि महासुख लीजे ॥

ॐ ह्रीं शक्तिस्त्यग भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्ति-समान उपोषण कीजे
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलांजलि काहे न दीजे ॥
भाव धरी तप घोर करी, नर जन्म सदा फल काहे न लीजे
'ज्ञान' कहे तप जे नर भावत, ताके अनेकहि पातक छीजे ॥

ॐ ह्रीं शक्तिस्तप भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

साधुसमाधि करो नर भावक, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे
साधु की संगति धर्मको कारण, भक्ति करे परमार्थ सीजे ॥
साधुसमाधि करे भव छूटत, कीर्ति-छटा त्रैलोक में गाजे
'ज्ञान' कहे यह साधु बड़ो, गिरिश्रृंग गुफा बिच जाय विराजे ॥

ॐ ह्रीं साधुसमाधि भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म के योग व्यथा उदये, मुनि पुंगव कुन्त सुभेषज कीजे
पित्त-कफानिल (वात) साँस, भगन्दर, ताप को शूल महागद छीजे ॥
भोजन साथ बनाय के औषध, पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे
'ज्ञान' कहे नित ऐसी वैयावृत्य करे तस देव पतीजे ॥

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरण भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देव सदा अरिहन्त भजो जई, दोष अठारा किये अति दूरा
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किए चकचूरा ॥
दिव्य-अनन्त-चतुष्टय शोभित, घोर मिथ्यान्ध-निवारण सूरा
'ज्ञान' कहे जिनराज अराधो, निरन्तर जे गुण-मन्दिर पूरा ॥

ॐ ह्रीं अर्हद् भक्ति भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देवत ही उपदेश अनेक सु, आप सदा परमार्थ-धारी
देश विदेश विहार करें, दश धर्म धरें भव-पार-उतारी ॥

ऐसे अचारज भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी
'ज्ञान' कहे गुरू-भक्ति करो नर, देखत ही मनमांहि विचारी ॥

ॐ ह्रीं आचार्य भक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

आगम छन्द पुराण पढ़ावत, साहित तर्क वितर्क बखाने
काव्य कथा नव नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने ॥

ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर, जो मन में दोउ भाव न आने
बोलत 'ज्ञान' धरी मन सान जु, भाग्य विशेष तें ज्ञानहि साने ॥

ॐ ह्रीं बहुश्रुतिभक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश अंग उपांग सदागम, ताकी निरंतर भक्ति करावे
वेद अनूपम चार कहे तस, अर्थ भले मन मांहि ठरावे ॥
पढ़ बहुभाव लिखो निज अक्षर, भक्ति करी बड़ि पूज रचावे
'ज्ञान' कहे जिन आगम-भक्ति, करे सद्-बुद्धि बहुश्रुत पावे ॥

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भाव धरे समता सब जीवसु, स्तोत्र पढ़े मुख से मनहारी
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसु, वंदन देव-तणों भव तारी ॥
ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी
'ज्ञान' कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी ॥

ॐ ह्रीं अवश्यकापरिहाणि भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जिन-पूजा रचे परमार्थसुं जिन आगे नृत्य महोत्सव ठाणे
गावत गीत बजावत ढोल, मृदंगके नाद सुधांग बखाणे ॥
संग प्रतिष्ठा रचे जल-जातरा, सद् गुरू को साहमो कर आणे
'ज्ञान' कहे जिन मार्ग-प्रभावन्, भाग्य-विशेषसु जानहि जाणे ॥

ॐ ह्रीं मार्गप्रभावना भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

गौरव भाव धरो मन से मुनि-पुंगव को नित वत्सल कीजे
शीलके धारक भव्य के तारक, तासु निरंतर स्नेह धरीजे ॥
धेनु यथा निजबालक को, अपने जिय छोड़ि न और पतीजे
'ज्ञान' कहे भवि लोक सुनो, जिन वत्सल भाव धरे अघ छीजे ॥

ॐ ह्रीं प्रवचन-वात्सल्य भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जाप्य मंत्र :-

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयै नमः, ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः, ॐ ह्रीं शीलव्रताय नमः, ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः, ॐ ह्रीं संवेगाय नमः, ॐ ह्रीं शक्तिस्तपसाय नमः, ॐ ह्रीं शक्तिस्तपसे नमः, ॐ ह्रीं साधुसमाधायै नमः, ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः, ॐ ह्रीं अर्हद् भक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं आचार्यभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं प्रवचनभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं अवश्यापरिहाण्यै नमः, ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः, ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सल्यै नमः

जयमाला

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश॥

दरश विशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई
विनय महाधारे प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी ॥
शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरनकी आपद टाले
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाही ॥
जो संवेग-भाव विस्तारे, सुरग-मुक्ति-पद आप निहारे
दान देय मन हरष विशेषे, इह भव जस परभव सुख पेखे ॥
जो तप तपे खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा
साधु-समाधि सदा मन लावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावे ॥
निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया
जो अरहंत-भगति मन अने, सो जन विषय कषाय न जाने ॥
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है
बहुश्रुतवंत-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहे ज्ञान परमानंद-दाता
षट् अवश्य काय सों साधे, सोही रत्नत्रय आराधे ॥
धरम-प्रभाव करे जे ज्ञानी, तिन शिव-मार्ग रीति पिछानी
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थकर पदवी पावै ॥

एही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जोय
देव-इन्द्र-नर-वंद्य पद, 'द्यानत' शिव-पद होय ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यः पूणार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारे
कर्म अनेक हने अति दुर्द्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारे ॥
दुःख दरिद्र विपत्ति हरे भव-सागर को पार उतारे
'ज्ञान' कहे यही षोडशकारण, कर्म निवारण, सिद्ध सु धारें ॥
इत्याशीर्वाद (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

नंदीश्वर- द्वीप - पूजन

द्यानतरायजी

सर्व परव में बड़ी अठाई परव है
नंदीश्वर सुर जाहि लेय वसु दरब है
हमैं सकति सो नाहि इहां करि थापना
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना

अर्थ : सब पर्वों में सबसे बड़ा पर्व अष्टान्हिका पर्व है इस पर्व में चतुर्णिकाय (चारो निकाय के) के देव अष्ट द्रव्य को लेकर अकृत्रिम चैत्यालय में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने नंदीश्वर द्वीप जाते हैं । हमारी शक्ति नंदीश्वर द्वीप तक जाने की नहीं है । अतः हम यहीं पर नंदीश्वर द्वीप के जिनालयों की स्थापना कर जिनालय और जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों की अपने हित के लिए पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्
आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्
सन्निधि करणं

कंचन- मणि मय- भृंगार, तीरथ- नीर भरा
तिहुं धार दई निरवार, जामन मरन जरा
नंदीश्वर- श्रीजिन- धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद- भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : हे भगवान स्वर्ण के रत्न जडित मृग (कलश) में तीर्थ का जल भरकर जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने को आपके चरणों के समक्ष तीन धार देता हूँ । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की प्रतिमाओं की आठ दिन तक आनंदित होता हुआ उत्साह को धारण कर पूजा करता हूँ । नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन

मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन मोहित करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिण दिक्षु द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाश नाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव-तप-हर शीतल वास, सो चंदन नहीं
प्रभु यह गुण कीजै सांच, आयो तुम ठाहीं
नन्दीश्वर- श्रीजिन- धाम, बावन पुंज करें
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद- भाव धरों
नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : हे भगवान भव की ताप को नष्ट करने के लिए शीतल सुगंधित चन्दन समर्थ नहीं है यह गुण तो आप में ही है, अर्थात् (भव की ताप नष्ट करने में आप ही समर्थ हो) । इसलिए चंदन लेकर आपके समीप आया हूँ । नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की, आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो संसार ताप विनाश नाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै
सब जीते अक्ष-समाज, तुम सम अरु को है
नन्दीश्वर- श्रीजिन- धाम, बावन पुंज करें
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद- भाव धरों
नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : हे भगवान भव की ताप को नष्ट करने के लिए शीतल सुगंधित चन्दन समर्थ नहीं है यह गुण तो आप में ही है, अर्थात् (भव की ताप नष्ट करने में आप ही समर्थ हो) । इसलिए चंदन लेकर आपके समीप आया हूँ । नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की, आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं
लहुं शील लक्ष्मी एव, छूटों सूलनसौं
नन्दीश्वर- श्रीजिन- धाम, बावन पुंज करें
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद- भाव धरों
नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आप काम को नष्ट करने वाले हो, पुष्पों से आपकी पूजा करता हूँ । शील रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर

संसार के दुःखों से छूटना चाहता हूँ । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो काम बाण विध्वंस नाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा
नंदीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करें
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरें
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आप काम को नष्ट करने वाले हो, पुष्पों से आपकी पूजा करता हूँ । शील रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर संसार के दुःखों से छूटना चाहता हूँ । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन मांहि लसै
टूटे करमन की राश, ज्ञान कणी दरशे
नंदीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करें
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरें
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : हे भगवान! दीपक की ज्योति का प्रकाश आपके शरीर में सुशोभित हो रहा है । आपकी दीपक से पूजा करने से कर्म नष्ट हो जाते हैं और केवल-ज्ञान की किरण फूट पड़ती है ।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्ण गरु धूप सुवास, दश दिशि नारि वैं
अति हरष भाव परकाश, मानों नृत्य करैं
नंदीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करें
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरें
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : कृष्ण अगर अदि सुगंधित धूप की सुगंधि दशों दिशाओ को इस प्रकार सुगंधित कर रही है मानो दश दिशा रूपी स्त्रियों का वरण ही कर रही हो और अत्यन्त हर्षित होकर हर्ष को प्रकाशित करने को नृत्य ही कर रही हो ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अष्ट कर्म दह नाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बहु विधि फल ले तिहुं काल, अनंद राचत हैं
तुम शिव फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं
नन्दीश्वर- श्रीजिन- धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, अनंद- भाव धरों
नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : बहुत प्रकार के तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले अर्थात् छहों ऋतुओं के, अनंद को देने वाले फलों से आपकी पूजा करता हूँ । हे दीनदयाल प्रभु ! आप मुझे मोक्ष रूपी फल प्रदान करें ऐसी हम आपसे याचना करते हैं ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों
'द्यानत' कीज्यो शिव खेत, भूमि समरपतु हों
नन्दीश्वर- श्रीजिन- धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, अनंद- भाव धरों
नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

अर्थ : यह अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य मैंने अपने कल्याण के लिए किया है जिसे आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ । श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि हे नाथ मैंने मोक्ष की खेती की है । उसकी भूमि में बीज स्वरूप यह अर्घ्य समर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक फागुन साढके, अंत आठ दिन माहि
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहि

अर्थ : कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ़ माह के अंतिम आठ दिनों में देव गण नन्दीश्वर द्वीप पूजा करने जाते हैं । हम असमर्थ होने के कारण (इसी स्थान पर) यहाँ ही पूजा करते हैं ।

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा, लाख चौरासिया इक दिश में लहा
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं, भौन बावन प्रतिमा नमों सुख करं ॥

अर्थ : नन्दीश्वर द्वीप की एक दिशा का विस्तार चौड़ाई एक सौ त्रेसठ करोड चौरासी लाख महा योजन है । आगम में नन्दीश्वर द्वीप आठवां द्वीप कहा गया है सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को नमस्कार करता हूँ ।

चार दिशि चार अंजन गिरी राजहीं, सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं

ढोल सम गोल ऊपर तले सुन्दरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
 एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी, एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी
 चहु दिशा चार वन लाख जोजन वरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
 सोल वापीन मधि सोल गिरि दधि-मुखं, सहस दश महा-जोजन लखत ही सुखं
 बावरी कौन दो माहि दो रति करं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
 शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे, चार सोलै मिले सर्व बावन लहे
 एक इक सीस पर एक जिन मन्दिरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
 बिब अठ एक सौ रतन-मयि सोहहीं, देव देवी सरव नयन मन मोहहीं
 पांच सै धनुष तन पद्म आसन परम, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
 लाल नख-मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं, स्याम-रंग भौह सिर केश छबि देत हैं
 वचन बोलत मनो हंसत कालुष हरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
 कोटि शशि भानु दुति तेज छिप जात है, महा-वैराग परिणाम ठहरात है
 वयन नहि कहै लखि होत सम्यक धरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति
 स्वाहा

नन्दीश्वर जिन धाम, प्रतिमा महिमा को कहै
 'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव सुख करै

अर्थ : नन्दीश्वर द्वीप के जिन मंदिरों, एवं प्रतिमाओं की महिमा को कौन कह सकता है द्यानतराय जी कहते हैं कि इनका नाम लेना मात्र ही भक्ति है जो मोक्ष सुख को करने वाली है ।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

निर्वाणक्षेत्र- पवैयाजी

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये
 सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करौं ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवैषट् आह्वाननं
 ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं
 ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत् भवत् वषट् सन्निधि करणं

शुचि क्षीर-दधि-समनीर निरमल, कनक-झारी में भरौं
 संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥
 सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
 पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौ
भव-ताप कौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौ ॥
सम्मदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन्, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौ
औगुन-हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौ ॥सम्मद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन के हरौ
दुःख-धाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौ ॥सम्मद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौ
यह भूख-दूखन तार प्रभुजी, जोर कर विनती करौ ॥सम्मद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहि डरौ
संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौ ॥सम्मद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौ
सब करम पुञ्ज जलाय दीज्यो, जोर-कर विनती करौ ॥सम्मद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौ
निहचै मुकति-फल-देहु मोको, जोर कर विनती करौ ॥सम्मद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौ

‘द्यानत’ करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं ॥

नमों ऋषभ कैलासपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौ, सन्मति पावापुर अभिनन्दौ ॥
वन्दौ अजित अजित-पद-दाता, वन्दौ सम्भव भव-दुःख घाता
वन्दौ अभिनन्दन गण-नायक, वन्दौ सुति सुति के दायक ॥
वन्दौ पद्म मुक्ति-पद्माकर, वन्दौ सुपास अश-पासहर
वन्दौ चन्द्रप्रभ प्रभु चन्द्रा, वन्दौ सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा ॥
वन्दौ शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौ श्रेयांस श्रेयांस महीतल
वन्दौ विमल-विमल उपयोगी, वन्दौ अनन्त-अनन्त सुखभोगी ॥
वन्दौ धर्म-धर्म विस्तारा, वन्दौ शान्ति, शान्ति मनधारा
वन्दौ कुन्थु कुन्थु रखवालं, वन्दौ अर अरि हर गुणमालं ॥
वन्दौ मल्लि काम मल चूरन, वन्दौ मुनिसुव्रत व्रत पूरन
वन्दौ नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौ पार्श्व-पास भ्रम जगहर ॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भू पर
एक बार वन्दै जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहि होई ॥
नरपति नृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै
विघन विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौ भवतारी ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सरस्वती - पूजन

(कविश्री दानतराय)

(दोहा)

जनम-जरा - मृतु क्षय करे, हरे कुनय जड़- रीति
भवसागर सों ले तिरे, पूजे जिनवच- प्रीति ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै पुष्पांजलिं क्षिपामि ।

(थाली में विराजमान शास्त्रजी के समक्ष पुष्पांजलि धरें)

(त्रिभंगी)

क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुख संग
भरि कंचनझारी, धार निकारी, तृषा निवारी हित चंगा ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी
शारदपद वंदूं, मन अभिनंदूं, पाप निकंदूं दाह हरी ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

सुखदास कर्मोदं, धारक मोदं, अति अनुमोदं चंद समं
बहु भक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

बहु फूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंदरासं लाय धरे
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पक्वान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्टमहा
पूजुं थुति गाऊं, प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं हर्ष लहा ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै क्षुधरोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर दीपक जोतं, तमक्षय होतं, ज्योति उदोतं तुमहि चढ़े
तुम हो परकाशक भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़े ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभगंध दशों कर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं
सब पाप जलावें, पुण्य कमावें, दास कहावें सेवत हैं ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम छुहारे, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं
मनवाँछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता ध्यावत हैं ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

नयनन सुखकारी, मृदु गुनधारी, उज्ज्वल भारी मोलधरें
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करें ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन अक्षत, फूल चरु अरु, दीप धूप अति फल लावे
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुखपावे ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(सोरठा छन्द)

ओकार ध्वनिसार, द्वादशांग वाणी विमल
नमूं भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरे ॥

(चौपाई)

पहलो 'आचारांग' बखानो, पद अष्टादशसहस्र प्रमानो
दूजो 'सूत्रकृतं' अभिलाषं, पद छत्तीस सहस्र गुरुभाषं ॥
तीजो 'ठाना अंग' सुजानं, सहस्र बयालिस पद सरधानं
चौथो 'समवायांग' निहारं, चौंसठ सहस्र लाखइक धारं ॥
पंचम 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' दरसं, दोय लाख अठ्ठाइस सहस्रं
छट्टो 'ज्ञातृकथा' विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हजारं ॥
सप्तम 'उपासकाध्ययनांग', सत्तर सहस्र ग्यारलख भंगं
अष्टम 'अंतकृतं' दस ईसं, सहस्र अठाइस लाख तेईसं ॥
नवम 'अनुत्तरदश' सुविशालं, लाख बानवे सहस्र चवालं
दशम 'प्रश्नव्याकरण' विचारं, लाख तिरानवे सोल हजारं ॥
ग्यारम 'सूत्रविपाक' सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं ॥
द्वादश 'दृष्टिवाद' पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं
अड़सठ लाख सहस्र छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं ॥
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो
ठावन सहस्र पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने ॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस्र चुरासी छह सौ भाखं
साढ़े इकीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये ॥

(दोहा)
जा बानी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक
'द्यानत' जग-जयवंत हो, सदा देत हूँ धोक ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनिमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अदिनाथ - भगवान

(श्री जिनेश्वरदास कृत)

नाभिराय मरूदेवि के नंदन, अदिनाथ स्वामी महाराज
सर्वार्थ सिद्धितैं आप पधारे, मध्यलोक माहि जिनराज
इंद्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभुपाय

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री अदिनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री अदिनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अर्थ - अदिनाथ स्वामी महाराज नाभिराय और मरू देवि के [नंदन] पुत्र है । आप सर्वार्थ सिद्धि से इस मध्य लोक में पधारे है । इंद्र आदि देव जन्मोत्सव मानाने के लिए आये । □□ □□ □□□□□ □□□□
पूर्वक आवाहनन ,स्थापना करके, मन में विराजमान, सन्निधिकरण पूर्वक भगवान् के चरणों की पूजा करते है ।

क्षीरोदधि को उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय
जन्म जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय
श्री अदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - मैं क्षीरसागर के स्वच्छ जल को लेकर श्री जिनेन्द्र भगवान् के चरणों को पूजने के लिए जाता हूँ । जन्म और बुढ़ापे के कष्टों के निवारण हेतु प्रभु जी के कमल चरणों पर जल अर्पित करता हूँ! मैं श्री अदिनाथ के चरणों में मन वचन काय से सर्वस्व अर्पण करता हूँ । □□ □□□□□□□□,आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये,इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ ।

मलयागिरी चंदन दाह निकंदन, कंचन झारी में भर ल्याय
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, भव अत्ताप तुरत मिट जाय

श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - मलयागिरि का सर्वश्रेष्ठ, जलन का निवारक चंदन स्वर्ण की झारी में भरकर लाया हूँ । हे भव्य जीवों! इसको श्रीजी के चरणों में अर्पित करो, इससे संसार के दुखों का तुरंत निवारण हो जाता है ।

शुभशालि अखंडित सौरभ मंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन्, अक्षय पद को तुरत उपाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - अच्छे शाली वन के साबुत, सुगन्धित अक्षतों को प्रासुक जल से धोकर लाया हूँ । □□ □□□□ जीवों, अक्षतों को श्रीजी के चरणों में अर्पित करना ही अक्षय-मोक्ष पद की प्राप्ति का तुरंत उपाय है ।

कमल केतकी बेल चमेली, श्री गुलाब के पुष्प मंगाय
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन्, कामबाण तुरत नसि जाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - हे भव्य जीवों ! कमल, केतकी, बेल, चमेली और गुलाब के पुष्प मंगाकर भगवान् के चरणों में अर्पित करने से कामवासनाओं का तुरंत नाश होता है ।

नेवज लीना षट्-रस भीना, श्री जिनवर अगो धरवाय
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - मैं षट् रसों से [भीना] परिपूर्ण नैवेद्य से भरा थाल, क्षुधा रोग को नष्ट करने के लिए भगवान् के समक्ष रख/अर्पित कर रहा हूँ जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का गान करते हुए मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो रहा है ।

जगमग जगमग होत दशोंदिश, ज्योति रही मंदिर में छाय
श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय

श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - मैं दीपक लेकर आया हूँ जिसकी ज्योति मंदिर जी को जगमगा कर दसो दिशाओ में फैलकर प्रकाशित कर रही है ।
ऐसे दीपक से भगवान् के समक्ष अरती करने से अत्यंत दुःखदायी मोहरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है ।

अगर कपूर सुगंध मनोहर, चंदन कूट सुगंध मिलाय
श्री जी के सम्मुख खेय धूपायन, कर्मजरे चहुंगति मिटि जाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - मैंने अगर, कपूर और मनोहर सुगन्धित चंदन और अन्य सुगन्धित पदार्थों को कूट कर धूप बनायी है ।
भगवान् के सम्मुख धूपायन में इनको मैं खे रहा हूँ जिस से मेरे कर्म नष्ट हो जाए और मेरा चतुर गति रूप
संसार समाप्त हो जाए ।

श्री फल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - मैं श्री फल, बादाम, सुपारी, केला, छुहारा आदि सभी प्रकार के फल लेकर आया हूँ, उन्हें महा
मोक्षफल प्राप्त करने के लिए प्रभु आपके चरणों में अर्पित करता हूँ ।

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय
दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय
ॐ ह्रीं अदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - पवित्र शुद्ध, स्वच्छ जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य लेकर प्रसन्न चित मन से दीप, धूप और फलों के
अर्घ को हाथ में लेकर नाचते हुए, ताली बजाते हुए और ढोल बजते हुए भगवान् की पूजा करता हूँ

पञ्च कल्याणक के अर्घ

सर्वार्थ सिद्धितैं चये, मरू देवी उर आय
दोज असित आषाढ़ की, जजुँ तिहारे पाय

ॐ ह्रीं आषाढकृष्ण द्वितीयायं गर्भ कल्याणक प्राप्ताये श्रीअदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - सर्वार्थ सिद्धि से चय कर (वहाँ आयु पूर्ण कर) आप मरू देवी माता के उदर/गर्भ में आषाढ़ बदी /कृष्ण पक्ष के द्वितीया को आये थे! मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ !

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान्
सुरपति उत्सव अति करा, मैं पूजौं धरी ध्यान

ॐ ह्रीं चैतकृष्ण नवम्यां जन्मकल्याणक प्राप्ताये श्रीअदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - चैत वदी/ कृष्ण के नवमी को भगवान् अदिनाथ का जन्म हुआ था, उस समय (सुरपति) इंद्र ने अति उत्साह पूर्वक उत्सव मनाया था ! मैं आपकी ध्यान पूर्वक पूजा करता हूँ !

तृण वत् ऋद्धि सब छांड़ि के, तप धार्यो वन जाय
नौमी चैत असेत की, जजुँ तिहारे पाय

ॐ ह्रीं चैत कृष्ण नवम्यां तप कल्याणक प्राप्ताये श्री अदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - भगवन आपने समस्त वैभव को तृण के सामान छोड़कर वन में जाकर चैत वदी नवमी को तप धारण कर लिया !हम आपके चरणों की पूजा करते हैं

फाल्गुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान
इंद्र आय पूजा करी, मैं पूजो यह थान

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण एकादश्यां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताये श्रीअदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - फाल्गुन कृष्ण एकादशी को आपको केवल ज्ञान उत्पान होने के कारण इंद्र ने यहाँ आकर आपकी पूजा करी थी, मैं भी इस(थान) स्थान पर आकर आपके ज्ञान कल्याणक की पूजा करता हूँ

माघ चतुर्दशी कृष्ण को, मोक्ष गए भगवान्
भवि जीवों को बोधिके, पहुँचे शिवपुर थान

ॐ ह्रीं माघ कृष्णचतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक प्राप्ताये श्रीअदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ - माघ कृष्ण (वदि) चतुर्दशी को भगवान् अदिनाथ भव्य जीवों को उपदेश देकर मोक्ष (शिवपुर थान), सिद्धालय पधारे थे

जयमाला

अदीश्वर महाराज, मैं विनती तुम से करूँ

चारों गति के माहि, मैं दुःख पायो सो सुनो ॥

(लावनी छन्द)

ये अष्ट-कर्म मैं हूँ एकलो ये दुष्ट महादुःख देत हो
कबहुँ इतर-निगोद में मोकूँ पटकत करत अचेत हो
म्हारी दीनतणी सुन वीनती

प्रभु! कबहुँक पटक्यो नरक में, जठे जीव महादुःख पाय हो
निष्ठुर निरदई नारकी, जठे करत परस्पर घात हो ॥म्हारी-२॥

कोइयक बांधे खंभ सों पापी दे मुग्धर की मार हो
कोइयक काटे करौत सों पापी अंगतणी देय फाड़ हो ॥म्हारी-३॥

प्रभु! इहविधि दुःख भुगत्या घणां, फिर गति पाई तिरियंच हो
हिरणा बकरा बाछला पशु दीन गरीब अनाथ हो
पकड़ कसाई जाल में पापी काट-काट तन खांय हो ॥म्हारी-४॥

प्रभु! मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जा पे लाद्यो भार अपार हो
नहीं चाल्यो जब गिर पड़्यो, पापी दें सेंटन की मार हो ॥म्हारी-५॥

प्रभु! कोइयक पुण्यसंयोग सूँ मैं तो पायो स्वर्ग-निवास हो
देवांगना संग रमि रह्यो, जठे भोगनि को परिवास हो ॥म्हारी-६॥

प्रभु! संग अप्सरा रमि रह्यो, कर कर अति-अनुराग हो
कबहुँक नंदन-वन विषै, प्रभु कबहुँक वनगृह-माँहि हो ॥म्हारी-७॥

प्रभु! यहि विधिकाल गमायके, फिर माला गई मुरझाय हो
देव-थिति सब घट गई, फिर उपज्ये सोच अपार हो
सोच करत तन खिर पड्ये, फिर उपज्ये गरभ में जाय हो ॥म्हारी-८॥

प्रभु! गर्भतणा दुःख अब कहूँ, जठे सकुड़ाई की ठौर हो
हलन चलन नहि कर सक्यो, जठे सघन-कीच घनघोर हो ॥म्हारी-९॥

प्रभु! माता खावे चरपरो, फिर लागे तन संताप हो
प्रभु! जो जननी तातो भखे, फिर उपजे तन संताप हो ॥म्हारी-१०॥

प्रभु! औधे-मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो
कठिन कठिन कर नीसर्यो, जैसे निसरे जंत्री में तार हो ॥म्हारी-११॥

प्रभु! निकसत ही धरत्यां पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो
रोय-रोय बिलख्यो घनो, दुःख-वेदन को नहि पार हो ॥म्हारी-१२॥

प्रभु! दुःख-मेटन समरथ धनी, या तें लागूँ तिहारे पांय हो
सेवक अर्ज करे प्रभु मोकूँ, भवदधि-पार उतार हो ॥म्हारी-१३॥

(दोहा)

श्री जी की महिमा अगम है, कोई न पावे पार
मैं मति-अल्प अज्ञान हूँ, कौन करे विस्तार

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मन ल्याय
सुरगों में संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय

॥- इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् -॥

श्री आदिनाथ - पूजन

परमपूज्य वृषभेष स्वयंभू देवजू
पिता नाभि मरुदेवि करें सुर सेवजू ॥
कनक वरण तन-तुंग धनुष पनशत तनो
कृपासिंधु इत अह तिष्ठ मम दुख हनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमवनोद् भव वारि सु धारिके, जजत हौं गुनबोध उचारिके
परमभाव सुखोदधि दीजिये, जन्ममृत्यु जरा क्षय कीजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलय चन्दन दाहनिकन्दनं, घसि उभै कर में करि वन्दनं
जजत हौं प्रशमाश्रय दीजिये, तपत ताप तृषा छय कीजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अमल तन्दुल खंडविवर्जितं, सित निशेष महिमामियतर्जितं
जजत हौं तसु पुंज धरायजी, अखय संपति द्यो जिनरायजी ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल चंपक केतकि लीजिये, मदनभंजन भेंट धरीजिये
परमशील महा सुखदाय हैं, समरसूल निमूल नशाय हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सरस मोदनमोदक लीजिये, हरनभूख जिनेश जजीजिये
सकल आकुल अंतकहेतु हैं, अतुल शांत सुधारस देतु हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय क्षुधादिरोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

निविड़ मोह महातम छाइयो, स्वपर भेद न मोहि लखाइयो
हरनकारण दीपक तासके, जजत हौं पद केवल भासके ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर चन्दन आदिक लेय के, परम पावन गंध सु खेय के
अग्निसंग जेरें मिस धूम के, सकल कर्म उड़े यह घूम के ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस पक्क मनोहर पावने, विविध ले फल पूज रचावने
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिये, हमहि मोक्ष महाफल दीजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलफलादि समस्त मिलायके, जजत हौं पद मंगल गायके

भगत वत्सल दीन दयालजी, करहु मोहि सुखी लखि हालजी ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

असित दोज आषाढ़ सुहावनो, गरभ मंगल को दिन पावनो
हरि सची पितुमातहिं सेवही, जजत हैं हम श्री जिनदेव ही ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्ण द्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित चैत सु नौमि सुहाइयो, जनम मंगल ता दिन पाइयो
हरि महागिरिपे जजियो तबै, हम जजें पद पंकज को अबै ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण नवमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित नौमि सु चैत धरे सही, तप विशुद्ध सबै समता गही
निज सुधारस सों भर लाइके, हम जजें पद अर्घ चढ़ाइके ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण नवमीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित फागुन ग्यारसि सोहनों, परम केवलज्ञान जग्यो भनौं
हरि समूह जजें तहँ आइके, हम जजें इत मंगल गाइके ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित चौदसि माघ विराजई, परम मोक्ष सुमंगल साजई
हरि समूह जजें कैलाशजी, हम जजें अति धार हुलास जी ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्ण चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जय जय जिनचन्दा अदि जिनन्दा, हनि भवफन्दा कन्दा जू
वासव शतवंदा धरि अनन्दा, ज्ञान अमंदा नन्दा जू

त्रिलोक हितंकर पूरन परम, प्रजापति विष्णु चिदात्म धर्म
जतीसुर ब्रह्मविदांबर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियाम्बुधि शुद्ध
जबै गर्भागम मंगल जान, तबै हरि हर्ष हिये अति आन
पिता जजनी पद सेव करेय, अनेक प्रकार उमंग भरेय
जन्मे जब ही तब ही हरि आय, गिरेन्द्रविषै किय न्हौन सुजाय
नियोग समस्त किये तित सार, सु लाय प्रभू पुनि राज अगार
पिता कर सौंपि कियो तित नाट, अमंद अनंद समेत विराट
सुथान पयान कियो फिर इंद, इहां सुर सेव करें जिनचन्द

कियौ चिरकाल सुखाश्रित राज, प्रजा सब आनंद को तित साज
सुलिप्त सुभोगिनि में लखि जोग, कियौ हरि ने यह उत्तम योग
निलंजन नाच रच्यो तुम पास, नवों रस पुरित भाव विलास
बजै मिरदंग दम दम जोर, चले पग झारि झनांझन जोर
घना घन घंट करे धुनि मिष्ट, बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट
खड़ी छिनपास छिनहि आकाश, लघु छिन दीरघ आदि विलास
ततच्छन ताहि विलै अविलोय, भये भवतैं भवभीत बहोय
सुभावत भावन बारह भाय, तहां दिव ब्रह्म रिषीश्वर आय
प्रबोध प्रभू सु गये निज धाम, तबे हरि आय रची शिवकाम
कियौ कचलौच प्रयाग अरण्य, चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग धन्य
धर्यो तब योग छमास प्रमान, दियो श्रेयांस तिन्हें इखु दान
भयो जब केवलज्ञान जिनेंद्र, समोसृत ठाठ रच्यो सु धनेंद्र
तहां वृष तत्व प्रकाशि अशेष, कियौ फिर निर्भय थान प्रवेश
अनन्त गुनातम श्री सुखराश, तुम्हें नित भव्य नमें शिव आश

यह अरज हमारी सुन त्रिपुरारी, जन्म जरा मृतु दूर करो
शिवसंपति दीजे ढील न कीजे, निज लख लीजे कृपा धरो

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो ऋषभेश्वर पूजे, मनवचतन भाव शुद्ध कर प्राणी
सो पावै निश्चै सौं, भुक्ति औ मुक्ति सार सुख थानी
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीअजितनाथ - पूजन

त्याग वैजयन्त सार सार-धर्म के आधार,
जन्मधार धीर नम्र सुष्टु कौशलापुरी
अष्ट दुष्ट नष्टकार मातु वैजयाकुमार,
अष्ट लक्षपूर्व दक्ष है बहत्तरैपुरी ॥
ते जिनेश श्री महेश शत्रु के निकन्दनेश,
अत्र हेरिये सुदृष्टि भक्त पै कृपा पुरी

अय तिष्ठ इष्टदेव मैं करौं पदाब्जसेव,
परम शर्मदाय पाय अय शर्न आपुरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिन ! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाहृदपानी निर्मल अनी, सौरभ सानी सीतानी
तसु धारत धारा तृषा निवार, शांतागारा सुखदानी ॥
श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि चंदन बावन ताप मिटावन, सौरभ पावन घसि ल्यायो
तुम भवतपभंजन हो शिवरंजन, पूजन रंजन मैं आयो ॥ श्री

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सितखंड विवर्जित निशिपति तर्जित, पुंज विधर्जित तंदुल को
भवभाव निखर्जित शिवपदसर्जित, अनंदभर्जित दंदल को ॥ श्री

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मनमथमदमंथन धीरजग्रंथन, ग्रंथनिग्रंथन ग्रंथपति
तुअ पाद कुसेसे आधि कुशेसे, धारि अशेसे अर्चयती ॥ श्री

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अक्रुल कुलवारन थिरताकारन, क्षुधाविदारन चरु लायो
षट् रस कर भीने अन्न नवीने, पूजन कीने सुख पायो ॥ श्री

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपकमनिमाला जोत उजाला, भरि कनथाला हाथ लिया
तुम भ्रमतम हारी शिवसुख कारी, केवलधारी पूज किया
श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगरादिक चूरन परिमल पूरन, खेवत कूरन कर्म जरे
दशहं दिश धावत हर्ष बढ़ावत, अलि गुण गावत नृत्य करे ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम नरंगी श्रीफल पुंगी आदि अभंगी सों अरचौं
सब विघनविनाशे सुख प्रकाशै, आत्म भासै भौ विरचौं ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलफल सब सज्जे, बाजत बज्जे, गुनगनरज्जे मनमज्जे
तुअ पदजुगमज्जे सज्जन जज्जे, ते भवभज्जे निजकज्जे ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कल्याणक अर्घ्यावली

जेठ असेत अमावशि सोहे, गर्भदिना नँद सो मन मोहे
इन्द फनिद जजे मनलाई, हम पद पूजत अर्घा चढ़ाई ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण-अमावस्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

माघ सुदी दशमी दिन जाये, त्रिभुवन में अति हरष बढ़ाये
इन्द फनिद जजें तित आई, हम इत सेवत हैं हुलशाई ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्ल दशमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

माघ सुदी दशमी तप धारा, भव तन भोग अनित्य विचारा
इन्द फनिद जजें तित आई, हम इत सेवत हैं सिरनाई ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्ल दशमीदिने दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पौषसुदी तिथि ग्यारस सुहायो, त्रिभुवनभानु सु केवल जायो
इन्द फनिद जजें आई, हम पद पूजत प्रीति लगाई ॥
ॐ ह्रीं पौषशुक्ल-एकादशीदिने ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचमि चैतसुदी निरवाना, निजगुनराज लियो भगवाना
इन्द फनिद जजें तित आई, हम पद पूजत हैं गुनगाई ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ल पंचमीदिने निर्वाणमंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा:- अष्ट दुष्टको नष्ट करि इष्टमिष्ट निज पाय
शिष्ट धर्म भाख्यो हमें पुष्ट करो जिनराय

जय अजित देव तुअ गुन अपार, पै कहूँ कछुक लघु बुद्धि धार
दश जनमत अतिशय बल अनन्त, शुभ लच्छन मधुबचन भनंत
संहनन प्रथम मलरहित देह, तन सौरभ शोणित स्वेत जेह
वपु स्वेदबिना महरूप धार, समचतुर धरें संठान चार
दश केवल, गमन अकाशदेव, सुरभिच्छ रहै योजन सतेव
उपसर्गरहित जिनतन सु होय, सब जीव रहित बाधा सुजोय
मुख चारि सरबविद्या अधीश, कवलाअहार सुवर्जित गरीश
छायाबिनु नख कच बढै नाहि, उन्मेश टमक नहि भ्रुकुटि माहि
सुरकृत दशचार करौ बखान, सब जीवमित्रता भाव जान
कंटक विन दर्पणवत सुभूम, सब धान वृच्छ फल रहै झूम
षटरितु के फूल फले निहार, दिशि निर्मल जिय आनन्द धार
जंह शीतल मंद सुगंध वाय, पद पंकज तल पंकज रचाय
मलरहित गगन सुर जय उचार, वरषा गन्धोदक होत सार
वर धर्मचक्र आगे चलाय, वसु मंगलजुत यह सुर रचाय ४
सिंहासन छत्र चमर सुहात, भामंडल छवि वरनी न जात
तरु उच्च अशोक रु सुमनवृष्टि, धुनि दिव्य और दुन्दुभि सुमिष्ट
हग ज्ञान शर्म वीरज अनन्त, गुण छियालीस इम तुम लहन्त
इन आदि अनन्ते सुगुनधार, वरनत गनपति नहि लहत पार
तब समवशरणमँह इन्द्र आय, पद पूजन बसुविधि दरब लाय
अति भगति सहित नाटक रचाय, ताथेई थेई थेई धुनि रही छाय
पग नूपुर झननन झनननाय, तननननन तननन तान गाय
घननन नन नन घण्ट घनाय, छम छम छम छम घुंघरु बजाय
द्रम द्रम द्रम द्रम द्रम मुरज ध्वान, संसाग्रदि सरंगी सुर भरत तान
झट झट झट अटपट नटत नाट, इत्यादि रच्यो अद्भुत सुठाट
पुनि वन्दि इन्द्र सुनुति करन्त, तुम हो जगमें जयवन्त सन्त

फिर तुम विहार करि धर्मवृष्टि सब जोग निरोध्यो परम इष्ट
सम्मेदथकी तिय मुकति थान, जय सिद्धशिरोमन गुननिधान
'वृन्दावन' वन्दत बारबार, भवसागरतें मोहि तार तार 15

जय अजित कृपाला गुणमणिमाला, संजमशाला बोधपति
वर सुजस उजाला हीरहिमाला, ते अधिकाला स्वच्छ अती
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो जन अजित जिनेश जजें हैं, मनवचकाई
ताकों होय अनन्द ज्ञान सम्पति सुखदाई ॥
पुत्र मित्र धनधान्य सुजस त्रिभुवनमहँ छावे
सकल शत्रु छय जाय अनुक्रमसों शिव पावे
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री संभवनाथ - पूजन

जय संभव जिनचन्द्र सदा हरिगनचकोरनुत
जयसेना जसु मातु जैति राजा जितारिसुत ॥
तजि ग्रीवक लिय जन्म नगर श्रावस्ती आई
सो भव भंजन हेत भगत पर होहु सहाई

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि मन सम उज्ज्वल जल लेकर, कनक कटोरी में धार
जनम जरा मृतु नाश करन को, तुम पदतर ढारों धारा ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तपत दाह को कन्दन चंदन मलयागिरि को घसि लायो
जगवंदन भौपंदन खंदन समरथ लखि शरनै आयो ॥

संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास कमलवासित, सित सुन्दर अनियारे
पुंज धरौं जिन चरनन आगे, लहाँ अख्यपद कों प्यारे ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, चंपा जूही सुमन वरा
ता सों पूजत श्रीपति तुम पद, मदन बान विध्वंस करा ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर मोदन मोदक, खाजा ताजा सरस बना
ता सों पद श्रीपति को पूजत, क्षुधा रोग ततकाल हना ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

घटपट परकाशक भ्रमतम नाशक, तुमढिग ऐसो दीप धरौं
केवल जोत उदोत होहु मोहि, यही सदा अरदास करौं ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर श्रीखंडादिक चूर हुतासन में
खेवत हौं तुम चरन जलज ढिग, कर्म छार जरिहै छन में ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला पिस्ता दाख रमैं
लै फल प्रासुक पूजौं तुम पद देहु अख्यपद नाथ हमैं ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ किया
तुमको अरपौं भाव भगतिधर, जै जै जै शिव रमनि पिया ॥

संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

माता गर्भ विषै जिन आय, फागुन सित ओठैं सुखदाय
सेयो सुर-तिय छप्पन वृन्द, नाना विधि मै जजौं जिनन्द ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन शुक्लष्टम्यां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक सित पूनम तिथि जान, तीन ज्ञान जुत जनम प्रमाण
धरि गिरि राज जजे सुरराज, तिन्हें जजौं मै निज हित काज ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ल पूर्णिमायां जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर सित पून्यों तप धार, सकल संग तजि जिन अनगार
ध्यानादिक बल जीते कर्म, चचौं चरन देहु शिवशर्म ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षपूर्णिमायां तपकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कलि तिथि चौथ महान, घाति घात लिय केवल ज्ञान
समवशरनमहँ तिष्ठे देव, तुरिय चिह्न चचौं वसुभेव ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णचतुर्थी ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैतशुक्ल तिथि षष्ठी चोख, गिरिसम्मेदतें लीनों मोख
चार शतक धनु अवगाहना, जजौं तास पद थुति कर घना ॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल षष्ठीदिने मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्री संभव के गुन आगम, कहि न सकत सुरराज
मैं वश भक्ति सु धीठ हूँ, विनवौं निजहित काज

जिनेश महेश गुणेश गरिष्ट, सुरासुर सेवित इष्ट वरिष्ट
धरे वृषचक्र करे अघ चूर, अतत्व छपातम मर्दन सूर ॥
सुतत्त्व प्रकाशन शासन शुद्ध, विवेक विराग बढ़ावन बुद्ध
दया तरु तर्पन मेघ महान, कुन्य गिरि गंजन वज्र समान ॥
सुगर्भरु जन्म महोत्सव मांहि, जगज्जन आनन्दकन्द लहाहि
सुपूरब साठहि लच्छ जु आय, कुमार चतुर्थम अंश रमाय ॥
चवालिस लाख सुपूरब एव, निकटक राज कियो जिनदेव
तजे कछु कारन पाय सु राज, धरे व्रत संजम आत्म काज ॥
सुरेन्द्र नरेन्द्र दियो पयदान, धरे वन में निज आत्म ध्यान
किया चव घातिय कर्म विनाश, लयो तब केवलज्ञान प्रकाश ॥
भई समवसृति ठाट अपार, खिरै धुनि झेलहि श्री गणधार
भने षट्-द्रव्य तने विसतार, चहूँ अनुयोग अनेक प्रकार ॥

कहें पुनि त्रेपन भाव विशेष, उभै विधि हैं उपशम्य जुभेष
 सुसम्यक्चारित्र भेद-स्वरूप, भये इमि छायेक नौ सु अनूप ॥
 दृगौ बुधि सम्यक् चारितदान, सुलाभ रु भोगुपभोगप्रमाण
 सुवीरज संजुत ए नव जान, अठार छयोपशम इम प्रमान ॥
 मति श्रुत औधि उभै विधि जान, मनःपरजै चखु और प्रमान
 अचखु तथा विधि दान रु लाभ, सुभोगुपभोग रु वीरजसाभ ॥
 व्रताव्रत संजम और सु धार, धरे गुन सम्यक् चारित भार
 भए वसु एक समापत येह, इक्कीस उदीक सुनो अब जेह ॥
 चहुँ गति चारि कषाय तिवेद, छह लेश्य और अज्ञान विभेद
 असंजम भाव लखो इस माहि, असिद्धित और अतत्त कहाहि ॥
 भये इक्कीस सुनो अब और, सुभेदत्रियं पारिनामिक ठौर
 सुजीवित भव्यत और अभव्य तरेपन एम भने जिन सव्व ॥
 तिन्हो मँह केतक त्यागन जोग, कितेक गहे तें मिटे भव रोग
 कह्यो इन आदि लह्यो फिर मोख, अनन्त गुनातम मंडित चोख ॥
 जजौं तुम पाय जपौं गुनसार, प्रभु हमको भवसागर तार
 गही शरनागत दीनदयाल, विलम्ब करो मति हे गुनमाल ॥
 घटा:- जै जै भव भंजन जन मन रंजन, दया धुरंधर कुमतिहरा
 वृन्दावन वंदत मन आनन्दित, दीजै आत्म ज्ञान वरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो बांचे यह पाठ सरस संभव तनो
 सो पावे धनधान्य सरस सम्पति घनो ॥
 सकल पाप छय जाय सुजस जग में बढे
 पूजत सुर पद होय अनुक्रम शिव चढे
 इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री अभिनन्दननाथ - पूजन

अभिनन्दन आनन्दकंद, सिद्धारथनन्दन
 संवर पिता दिनन्द चन्द, जिहि आवत वन्दन ॥
 नगर अयोध्या जनम इन्द, नागिद जु ध्यावें
 तिन्हें जजन के हेत थापि, हम मंगल गावें ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र मम सभिहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पदमद्रहगत गंगचंग, अंभग-धार सु धार है
कनकमणि नगजडित झारी, द्वार धार निकार है ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद पंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल चन्दन कदलि नन्दन, जल सु संग घसाय के
होय सुगंध दशों दिशा में, भ्रमें मधुकर आय के ॥कलुष॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हीर हिम शशि फेन मुक्ता सरिस तंदुल सेत हैं
तास को ढिग पुञ्ज धारौ अक्षयपद के हैत हैं ॥कलुष॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

समर सुभट निघटन कारन सुमन सु मन समान
सुरभि तें जा पे करें झंकार मधुकर आन हैं ॥कलुष॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सरस ताजे नव्य गव्य मनोज्ञ चितहर लेय जी
छुधाछेदन छिमा छितिपति के चरन चरचेय जी ॥कलुष॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अतत तम-मर्दन किरनवर, बोधभानु-विकाश है
तुम चरनढिग दीपक धरौ, मो कों स्वपर प्रकाश है ॥कलुष॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

भुर अगर कपूर चुर सुगंध, अग्नि जराय है
सब करमकाष्ठ सु काटने मिस, धूम धूम उड़ाय है ॥कलुष॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आम निबु सदा फलादिक, पक्क पावन आन जी
मोक्षफल के हेत पूजौं, जोरि के जुग पान जी ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट द्रव्य संवारि सुन्दर सुजस गाय रसाल ही
नचत रजत जजौं चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अन्नर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

शुक्ल छट वैशाख विषै तजि, आये श्री जिनदेव
सिद्धारथा माता के उर में, करे सची शुचि सेव ॥
रतन वृष्टि आदिक वर मंगल, होत अनेक प्रकार
ऐसे गुननिधि को मैं पूजौं, ध्यावौं बारम्बार ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ल षष्ठीदिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
माघ शुक्ल तिथि द्वादशि के दिन, तीन लोक हितकार
अभिनन्दन आनन्दकंद तुम, लिनो जग अवतार ॥
एक महूरत नरकमांहि हू, पायो सब जिय चैन
कनकवरन कपि-चिह्न-धरन पद जजौं तुम्हें दिन रैन ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्ल द्वादश्यं जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
साढ़े छत्तिस लाख सुपूरब, राज भोग वर भोग
कछु कारन लखि माघ शुक्ल, द्वादशि को धार् यो जोग ॥
षष्ठम नियम समापत करि, लिय इंद्रदत्त घर छीर
जय धुनि पुष्प रतन गंधोदक, वृष्टि सुगंध समीर ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्ल द्वादश्यं तपोमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
पौष शुक्ल चौदशि को घाते, घाति करम दुखदाय
उपजायो वर बोध जास को, केवल नाम कहाय ॥
समवसन लहि बोधि धरम कहि, भव्य जीव सुखकन्द
मो कों भवसागर तें तारो, जय जय जय अभिनन्द ॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्ल चतुर्दश्यं केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जोग निरोग अघातिघाति लहि, गिर समेद तें मोख
मास सकल सुखरास कहे, बैशाख शुक्ल छठ चोख ॥
चतुरनिकाय अथ तित कीनी, भगति भाव उमगाय

हम पूजत इत अरघ लेय जिमि, विघन सघन मिट जाय ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ल षष्ठीदिने मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुंग सु तन धनु तीन सौ, औ पचास सुख धाम
कनक वरन अवलौकि के, पुनि पुनि करुं प्रणाम

सच्चिदानन्द सद्ज्ञान सदृशनी, सत्स्वरूपा लई सत्सुधा सर्सनी
सर्वाआनन्दकंदा महादेवा, जास पादाब्ज सेवैं सबै देवता
गर्भ औ जन्म निःकर्म कल्याण में, सत्व को शर्म पूरे सबै थान में
वंश इक्ष्वाकु में आप ऐसे भये, ज्यों निशा शर्द में इन्दु स्वेच्छै ठये

होत वैराग लौकांतुर बोधियो, फेरि शिविकासु चढ़ि गहन निज सोधियो
घाति चौघातिया ज्ञान केवल भयो, समवसरनादि धनदेव तब निरमयो
एक है इन्द्र नीली शिला रत्न की, गोल साढ़ेदशै जोजने रत्न की
चारदिश पैड़िका बीस हज्जार है, रत्न के चूर का कोट निरधार है
कोट चहुंओर चहुंद्वार तोरन खँचे, तास अगे चहुं मानथंभा रचे
मान मानी तजैं जास ढिग जाय के, नम्रता धार सेवैं तुम्हें आय के

बिब सिंहासनों पै जहां सोहहीं, इन्द्रनागेन्द्र केते मने मोहहीं
वापिका वारिसों जत्र सोहे भरी, जास में न्हात ही पाप जावै तरी
तास अगे भरी खातिका वारि सों, हंस सूअदि पंखी रमैं प्यार सों
पुष्प की वाटिका बाग वृक्षें जहां, फूल औ श्री फले सर्व ही हैं तहां
कोट सौवर्ण का तास अगे खड़ा, चार दरवाज चौ ओर रत्नों जड़ा
चार उद्यान चारों दिशा में गना, है धुजापंक्ति और नाट्यशाला बना
तासु अगें त्रिती कोट रुपामयी, तूप नौ जास चारों दिशा में ठयी
धाम सिद्धान्त धारीनके हैं जहां, औ सभाभूमि है भव्य तिष्ठें तहां
तास अगे रची गन्धकूटी महा, तीन है कटिनी चारु शोभा लहा
एक पै तौ निधैं ही धरी ख्यत हैं, भव्य प्राणी तहां लो सबै जात हैं
दूसरी पीठ पै चक्रधारी गमै, तीसरे प्रातिहारज लशै भाग में
तास पै वेदिका चार थंभान की, है बनी सर्व कल्याण के खान की
तासु पै हैं सुसिंघासनं भासनं, जासु पै पद्म प्राफुल्ल है आसनं
तासु पै अन्तरीक्षं विराजै सही, तीन छत्रे फिरें शीस रत्ने यही
वृक्ष शोकापहारी अशोकं लसै, दुन्दुभी नाद औ पुष्प खंते खसै

देह की ज्योतिसों मण्डलाकार है, सात सौ भव्य ता में लखेंसार है
दिव्य वानी खिरै सर्व शंका हरे, श्री गनाधीश झेलें सु शक्ति धरे
धर्मचक्री तुही कर्मचक्री हने, सर्वशक्री नमें मोद धारे घने
भव्य को बोधि सम्मेदतें शिव गये, तत्र इन्द्रादि पूजै सु भक्तिमये
हे कृपासिंधु मो पै कृपा धारिये, घोर संसार सों शीघ्र मो तारिये

छन्द:- जय जय अभिनन्दा आनंदकंदा, भव समुन्द्र वर पोत इवा
भ्रम तम शतखंडा, भानुप्रचंडा, तारि तारि जग रैन दिवा

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीअभिनन्दन पाप निकन्दन तिन पद जो भवि जजै सु धहर
ता के पुन्य भानु वर उगे दुरित तिमिर फाटै दुखकार ॥
पुत्र मित्र धन धान्य कमल यह विकसै सुखद जगतहित प्यार
कछुक काल में सो शिव पावै, पढ़ै सुने जिन जजै निहार ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री सुमतिनाथ - पूजन

संजम रतन विभूषन भूषित, दूषन वर्जित श्री जिनचन्द्र
सुमति रमा रंजन भवभंजन, संजययंत तजि मेरु नरिंद ॥
मातु मंगला सकल मंगला, नगर विनीता जये अमंद
सो प्रभु दया सुधा रस गर्भित आय तिष्ठ इत हरो दुःख दंद

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पंचम उदधितनों सम उजज्वल, जल लीनों वरगंध मिलाय
कनक कटोरी माहि धारि करि, धार देहु सुचि मन वच काय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाथ जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागर घनसार घसौं वर, केशर अर करपूर मिलाय
भवतपहरन चरन पर वारौं, जनम जरा मृतु ताप पलाय ॥हरि

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाथ चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शशिसम उज्ज्वल सहित गंधतल, दोनों अनी शुद्ध सुखदास
सौ लै अख्य संपदा कारन, पुञ्ज धरौं तुम चरनन पास
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, करना अरु गुलाब महकाय
सो ले समरशूल छयकारन, जजौं चरन अति प्रीति लगाय ॥हरि

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य गव्य पक्वान बनाऊं, सुरस देखि दृग मन ललचाय
सौ लै छुधारोग, धरौं चरण ढिग मन हरषाय ॥हरि

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाथ नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

रतन जड़ित अथवा घृतपूरित, वा कपूरमय जोति जगाय
दीप धरौं तुम चरनन अगे जातें केवलज्ञान लहाय ॥हरि

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाथ दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागरु चंदन, चूरि अगनि में देत जराय
अष्टकरम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम धूम यह तासु उड़ाय ॥हरि

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल मातुलिंग वर दाड़िम, आम निंबु फल प्रासुक लाय
मोक्ष महाफल चाखन कारन, पूजत हैं तुमरे जुग पाय ॥हरि

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु दीप धूप फल सकल मिलाय

नाचि राचि शिरनाथ समरचौं, जय जय जय 2 जिनराय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

संजयंत तजि गरभ पधारे, सावनसेत दुतिय सुखकारे
रहे अलिप्त मुकुर जिमि छाया, जजौं चरन जय जय जिनराया ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ल द्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत सुकल ग्यारस कहँ जानो, जनमे सुमति त्रयज्ञानों
मानों धर्यो धरम अवतारा, जजौं चरनजुग अष्ट प्रकासा ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

बैशाख सुकल नौमि भाखा, ता दिन तप धरि निज रस चाखा
पारन पद्म सद्ग पय कीनों, जजत चरन हम समता भीनों ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ल नवम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुकल चैत एकादश हाने, घाति सकल जे जुगपति जाने
समवसरनमँह कहि वृष सारं, जजहुं अनंत चतुष्टयधारं ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञान कल्याणकप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत सुकल ग्यारस निरवानं, गिरि समेद तें त्रिभुवन मानं
गुन अनन्त निज निरमल धारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

सुमति तीन सौ छत्तीसौं, सुमति भेद दरसाय
सुमति देहु विनती करौं, सु मति विलम्ब कराय
दयाबेलि तहँ सुगुननिधि, भविक मोद-गण-चन्द
सुमतिसतीपति सुमति कों, ध्यावौं धरि आनन्द
पंच परावरतन हरन, पंच सुमति सिर देन
पंच लब्धि दातार के, गुन गाऊँ दिन रैन

पिता मेघराजा सबै सिद्ध काजा, जपें नाम ता को सबै दुःखभाजा
महासुर इक्ष्वाकुवंशी विराजे, गुणग्राम जाकौ सबै ठौर छाजै
तिन्हों के महापुण्य सों आप जाये, तिहुँलोक में जीव आनन्द पाये

सुनासीर ताही धरी मेरु धायो, क्रिया जन्म की सर्व कीनी यथा यों
 बहुरि तातकों सौंपि संगीत कीनों, नमें हाथ जोरी भलीभक्ति भीनों
 बिताई दशै लाख ही पूर्व बालै, प्रजा उन्तीस ही पूर्व पालै
 कछु हेतु तें भावना बारा भाये, तहाँ ब्रह्मलोकान्त देव अये
 गये बोधि ताही समै इन्द्र आयो, धरे पालकी में सु उद्यान ल्यायो
 नमः सिद्ध कहि केशलेंचे सबै ही, धर्यो ध्यान शुद्धं जु घाती हने ही
 लह्यो केवलं औ समोसर्न साजं, गणाधीश जु एक सौ सोल राजं
 खिरै शब्द ता में छहौं द्रव्य धारे, गुनौपर्ज उत्पाद व्यय ध्रौव्य सारे
 तथा कर्म आठों तनी थिति गाजं, मिले जासु के नाश तें मोच्छराजं
 धरें मोहिनी सत्तरं कोड़कोड़ी, सरित्प्रमाणं थिति दीर्घ जोड़ी
 अवर्जान दृग्वेदिनी अन्तरायं, धरें तीस कोड़ाकुड़ि सिन्धुकायं
 तथा नाम गोतं कुड़ाकोड़ि बीसं, समुद्र प्रमाणं धरें सत्तईसं
 सु तैतीस अब्धि धरें आयु अब्धि, कहें सर्व कर्मों तनी वृद्धलब्धि
 जघन्यं प्रकारे धरे भेद ये ही, मुहूर्त वसू नामंगोतं गने ही
 तथा ज्ञान दृग्मोह प्रत्यूह आयं, सुअन्तर्मुहूर्त धरें थिति गायं
 तथा वेदनी बारहें ही मुहूर्त, धरें थिति ऐसे भन्यो न्यायजुतं
 इन्हें आदि तत्त्वार्थ भाख्यो अशेसा, लह्यो फेरि निर्वाण मांहीं प्रवेसा
 अनन्तं महन्तं सुरंतं सुतंतं, अमन्दं अफन्दं अनन्तं अभन्तं
 अलक्षं विलक्षं सुलक्षं सुदक्षं, अनक्षं अवक्षं अभक्षं अतक्षं
 अवर्णं सुवर्णं अमर्णं अकर्णं, अभर्णं अतर्णं अशर्णं सुशर्णं
 अनेकं सदेकं चिदेकं विवेकं, अखण्डं सुमण्डं प्रचण्डं सदेकं
 सुपर्मं सुधर्मं सुशर्मं अकर्मं, अनन्तं गुनाराम जयवन्त धर्मं
 नमें दास वृन्दावनं शर्न आई, सबै दुःख तें मोहि लीजे छुड़ाई
 घत्ता- तुम सुगुन अनन्ता घ्यावत सन्ता, भ्रमतम भंजन मार्तंडा
 सतमत करचंडा भवि कज मंडा, कुमति-कुबल-भन गन हंडा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

सुमति चरन जो जजैं भविक जन मनवचकाई
 तासु सकल दुख दंद पंद ततछिन छय जाई ॥
 पुत्र मित्र धन धान्य शर्म अनुपम सो पावै
 'वृन्दावन' निर्वाण लहे निहचै जो ध्यावै ॥
 इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री पद्मप्रभ - पूजन

पद्म- राग- मनि- वरन- धरन, तनतुंग अढ़ाई
शतक दंड अघखंड, सकल सुर सेवत आई ॥
धरनि तात विख्यात सु सीमाजू के नंदन
पद्म चरन धरि राग सुथापौं इत करि वंदन ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर संवौषट् अह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पूजौं भाव सों, श्री पद्मनाथपद सार, पूजौं भाव सों टेक
गंगाजल अति प्रासुक लीनों, सौरभ सकल मिलाय
मन वचन तन त्रयधार देत ही, जनम- जरा- मृतु जाय
पूजौं भाव सों, श्री पद्मनाथ पद- सार, पूजौं भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर कपूर चंदन घसि, केशर रंग मिलाय
भवतपहरन चरन पर वारौं, मिथ्याताप मिटाय पूजौं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल उज्ज्वल गंध अनी जुत, कनक थार भर लाय
पुंज धरौं तुव चरनन आगे, मोहि अखयपद दाय पूजौं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मदार कल्पतरुजनित, सुमन शुचि लाय
समरशूल निरमूल- करनकों, तुम पद पद्म चढ़ाय पूजौं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर आदि मनोहर, सद्य सजे शुचि लाय
क्षुधा रोग निर्वारन कारन, जजौं हरष उर लाय पूजौं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक ज्योति जगाय ललित वर, धूम रहित अभिराम
तिमिर मोह नाशन के कारन, जजौ चरन गुनधाम पूजौ

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागर मलयगिरि चंदन, चूर सुगंध बनाय
अग्नि माहिं जारौं तुम अगे, अष्टकर्म जरि जाय पूजौ

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस-वरन रसना मन भावन, पावन फल अधिकार
ता सों पूजौ जुगम चरन यह, विघम करम निरवार पूजौ

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ते फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगति भाव उमगाय
जजौं तुमहि शिवतिय वर जिनवर, आवागमन मिटाय पूजौ

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ते अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

छंद द्रुतविलंबिता तथा सुन्दरी (मात्रा 16)

असित माघ सु छट् बखानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
ऊरध ग्रीवक सों चये राज जी, जजत इन्द्र जजें हम आज भी ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्ण षष्ठीदिने गर्भ मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित कार्तिक तेरस को जये, त्रिजग जीव सुआनंद को लये
नगर स्वर्ग समान कुसंबिका, जजतु हैं हरिसंजुत अंबिका ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण त्रयोदश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित तेरस कार्तिक भावनी, तप धर्यो वन षष्ठम पावनी
करत आत्मध्यान धुरंधरो, जजत हैं हम पाप सबै हरो ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण त्रयोदश्यां तपो मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल-पूनम चैत सुहावनी, परम केवल सो दिन पावनी
सुर-सुरेश नरेश जजें तहां, हम जजें पद पंकज को इहां ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ल पूर्णिमायां केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित फागुन चौथ सुजानियो, सकलकर्म महारिपु हानियो
गिरसमेद थीकी शिव को गये, हम जजें पद ध्यानविषै लये ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण चतुर्थीदिने मोक्षमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जय पद्मजिनेशा शिवसद्देशा, पाद पद्म जजि पद्मेशा
जय भव तम भंजन, मुनिमम कंजन, रंजन को दिव साधेसा

जय-जय जिन भविजन हितकारी, जय जय जिन भव सागर तारी
जय जय समवसरन धन धारी, जय जय वीतराग हितकारी
जय तुम सात तत्त्व विधि भाख्यै, जय जय नवपदार्थ लिखिआख्ये
जय षट्द्रव्य पंचजुतकाय, जय सब भेद सहित दरशाया
जय गुनथान जीव परमानो, पहिले महि अनंत-जिव जानो
जय दूजे सासादन माहीं, तेरह कोड़ि जीव थित अहीं
जय तीजे मिश्रित गुणथाने, जीव सु बावन कोड़ि प्रमाने
जय चौथे अविरतिगुन जीवा, चार अधिक शत कोड़ि सदीवा
जय जिय देशावरत में शेषा, कोड़ि सात सा है थित वेशा
जय प्रमत्त षट्शून्य दोय वसु, नव तीन नव पांच जीवलसु
जय जय अपरमत्त दुइ कोरं, लक्ष छानवै सहस बहोरं
नियानवे एकशत तीना, ऐते मुनि तित रहहि प्रवीना
जय जय अष्टम में दुइ धारा, अठ शतक सत्तानों सारा
उपशम में दुइ सौ निन्यानों, छपक माहि तसु दूने जानों
जय इतने इतने हितकारी, नवें दशें जुगश्रेणी धारी
जय ग्यारें उपशम मगगामी, दुइ सौ निन्यानों अधगामी
जयजय छीनमोह गुनथानो, मुनि शत पांच अधिक अट्टानों
जय जय तेरह में अरिहंता, जुग नभपन वसु नव वसु तंता
ऐते राजतु हैं चतुरानन, हम वंदें पद थुतिकरि आनन
हैं अजोग गुन में जे देवा, मन सों ठानों करों सुसेवा
तित तिथि अ इ उ ऋ लृ भाषत, करिथित फिर शिव आनंद चाखत
ऐ उतकृष्ट सकल गुनथानी, तथा जघन मध्यम जे प्राणी
तीनों लोक सदन के वासी, निजगुन परज भेदमय राशी
तथा और द्रव्य के जेते, गुन परजाय भेद हैं तेते
तीनों कालतने जु अनंता, सो तुम जानत जुगपत संता
सोई दिव्य वचन के द्वारे, दे उपदेश भविक उद्दारे
फेरी अचल थल बासा कीनो, गुन अनंत निजआनंद भीनो
चरम देह तें किंचित ऊनो, नर आकृति तित है नित गूनो

जय जय सिद्धदेव हितकारी, बार बार यह अरज हमारी
मोकों दुखसागर तें काढ़ो, 'वृन्दवन' जांचतु है ठाढ़ो

जय जय जिनचंदा पद्मानंदा, परम सुमति पद्माधारी
जय जनहितकारी दयाविचारी, जय जय जिनवर अविकारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जजत पद्म पद पद्म सद्म ताके सुपद्म अत
होत वृद्धि सुत मित्र सकल आनंदकंद शत ॥
लहत स्वर्गपदराज, तहाँ तें चय इत आई
चक्री को सुख भोगि, अंत शिवराज कराई ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री सुपार्श्वनाथ- पूजन

जय जय जिनिद गनिद इन्द्र, नरिद गुन चिंतन करें
तन हरीहर मनसम हरत मन, लखत उर आनन्द भरें ॥
नृप सुपरतिष्ठ वरिष्ठ इष्ट, महिष्ठ शिष्ट पृथी प्रिया
तिन नन्दके पद वन्द वृन्द, अमंद थापत जुतक्रिया ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल जल शुचि गंध मिलाय, कंचनझारी भरकर लाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर चंदन घसि सार, लीनो भवतप भंजनहार
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥ तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास अखंड, उज्ज्वल जलछालित सित मंड
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

प्रासुक सुमन सुगंधित सार, गुंजत अलि मकरध्वजहार
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

छुधाहरण नेवज वर लाय, हरौ वेदनी तुम्हें चढ़ाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्वलित दीप भरकरि नवनीत, तुम ढिग धारतु हौं जगमीत
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविधि गन्ध हुताशन माहि, खेवत क्रूर करम जरि जाहि
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल केला आदि अनूप, ले तुम अग्र धरौं शिवभूप
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब साजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

सुकल भादव छट्ट सु जानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
करत सेव शची रचि मात की, अरघ लेय जजौं वसु भांत की ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लषष्ठीदिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुकल जेठ दुवादशि जन्मये, सकल जीव सु आनन्द तन्मये
त्रिदशराज जजें गिरिराजजी, हम जजें पद मंगल साजजी ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनम के तिथि पे श्रीधर ने धरी, तप समस्त प्रमादन को हरी
नृप महेन्द्र दियो पय भाव सौं, हम जजें इत श्रीपद चाव सों ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रमर फागुन छट्ट सुहावनो, परम केवलज्ञान लहावनो
समवर्सन विषैं वृष भाखियो, हम जजें पद आनन्द चाखनो ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण षष्ठीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित फागुन सातय पावनो, सकल कर्म कियो छय भावनो
गिरि समेदथकी शिव जातु हैं, जजत ही सब विघ्न विलातु हैं ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण सप्तमीदिने मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुंग अंग धनु दोय सौ, शोभा सागरचन्द्र
मिथ्यातपहर सुगुनकर, जय सुपास सुखकंद

जयति जिनराज शिवराज हितहेत हो,
परम वैराग आनन्द भरि देत हो ॥
गर्भ के पूर्व षट्मास धनदेव ने,
नगर निरमापि वाराणसी सेव में ॥
गगन सों रतन की धार बहु वरषहीं,
कोड़ि त्रैअर्द्ध त्रैवार सब हरषहीं ॥
तात के सदन गुनवदन रचना रची,
मातु की सर्वविधि करत सेवा शची ॥
भयो जब जनम तब इन्द्र-आसन चल्यो
होय चकित तब तुरित अवधितैं लखि भल्यो ॥
सप्त पग जाय शिर नाय वन्दन करी,
चलन उमग्यो तबै मानि धनि धनि घरी ॥
सात विधि सैन गज वृषभ रथ बाज ले,
गन्धर्व नृत्यकारी सबै साज ले ॥

गलित मद गण्ड ऐशवती साजियो,
लच्छ जोजन सुतन वदन सत राजियो ॥
वदन वसुदन्त प्रतिदन्त सरवर भरे,
ता सु मधि शतक पनबीस कमलिनि खरे ॥
कमलिनी मध्य पनवीस फूले कमल,
कमल-प्रति-कमल मैंह एक सौ आठ दल ॥
सर्वदल कोड़ शतबीस परमान जू
ता सु पर अपछरा नचहि जुतमान जू ॥
तततता तततता विततता ताथई,
धृगतता धृगतता धृगतता में लई ॥
धरत पग सनन नन सनन नन गगन में,
नूपुरे झनन नन झनन नन पगन में ॥
नचत इत्यादि कई भाँति सों मगन में,
केई तित बजत बाजे मधुर पगन में ॥
केई दम दम दुदम दम मृदंगनि धुनै,
केई झल्लरि झनन झंझनन झंझनै ॥
केई संसाग्रते सारंगि संसाग्र सुर, केई
बीना पटह बंसि बाजें मधुर ॥
केई तनतन तनन तनन ताने पुरैं, शुद्ध
उच्चारि सुर केई पाठैं पुरैं ॥
केइ झुकि झुकि फिरे चक्र सी भामिनी,
धृगगतां धृगगतां परम शोभा बनी ॥
केई छिन निकट छिन दूर छिन थूल-लघु
धरत वैक्रियक परभाव सों तन सुभगु ॥
केई करताल-करताल तल में धुनें, तत
वितत घन सुषिरि जात बाजें मुनै ॥
इन्द्र आदिक सकल साज संग धारिके,
अथ पुर तीन फेरी करी प्यार तें ॥
सचिय तब जाय परसूतथल मोद में,
मातु करि नींद लीनों तुम्हें गोद में ॥

आन-गिरवान नाथहि दियो हाथ में,
छत्र अर चमर वर हरि करत माथ में ॥
चढ़े गजराज जिनराज गुन जापियो,
जाय गिरिराज पांडुक शिला थापियो ॥
लेय पंचम उदधि-उदक कर कर सुरनि,
सुरन कलशनि भरे सहित चर्चित पुरनि ॥
सहस अरु आठ शिर कलश ढारें जबै,
अघघ घघ घघघ घघ भभभ भभ भौ तबै ॥
धधध धध धधध धध धुनि मधुर होत है,
भव्य जन हंस के हरस उद्योत है ॥
भयो इमि न्हौन तब सकल गुन रंग में,
पोंछि शृंगार कीनों शची अंग में ॥
आनि पितुसदन शिशु सौपि हरि थल गयो,
बाल वय तरुन लहि राज सुख भोगियो ॥
भोग तज जोग गहि, चार अरि कों हने,
धारि केवल परम धरम दुइ विध भने ॥
नाशि अरि शेष शिवथान वासी भये,
ज्ञानदृग अरि शेष शिवथान वासी भये
दीन जन की करुण सुन लीजिये,
धरम के नन्द को पार अब कीजिये ॥

जय करुणाधारी, शिवहितकारी, तारन तरन जिहाजा हो
सेवत नित वन्दे, मनआनदे, भवभय मेटनकाजा हो

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री सुपार्श्व पदजुगल जो जजें पढ़े यह पाठ
अनुमोदें सो चतुर नर पावें आनन्द ठाठ ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री चन्द्रप्रभनाथ- पूजन

चारुचरन आचरन, चरन चितहरन चिह्नचर
चंद-चंद-तनचरित, चंद थल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र-धनुरहर ॥

अर्थ - [चारु] सुन्दर चरणों और आचरण वाले, चित को हरने वाले [चिह्नचर] चंद्रमा के चिह्न से सुशोभित चरण, [चंद] परमपवित्र [चंद] चंद्रमा के सामान स्वच्छ [तनचरित] शरीर और चरित्र धारक चन्द्रप्रभ भगवान्, उन [चंदथल] चन्द्रप्रभ की शरण [चतुरनर] भक्त / धर्मात्मा चाहते हैं, जिन्होंने [चतुक] चार [चण्ड] निर्दयी (चार घातिया कर्मों) को [चकचूरि] नष्ट कर दिया है, [चिदचक्र] चैतन्य समूह के चार [गुनाकर] (अनंत चतुष्टय) गुणों के भण्डारधारक है, जिन्हें [चंचल चलित] निरंतर चंचल [सुरेश] इंद्र, [चक्र] चक्रवर्ती, [धनुरहर] धनुषधारी [चूलनुत] सभी नमस्कार करते हैं, ऐसे भगवन आप हैं ।

चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिर नंद शुचि
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि ॥

अर्थ - आप [चर] त्रस व [अचर] स्थावर जीवों के [हितू] हितकारी हैं (अहिंसा का) आप संसार को [तारन] स्वयं पार करने तथा [तरन] अन्यो को पार कराने वाले हैं । आपके [शुचि] पवित्र [चिरनंद] अनंतसुख की चर्चा सुनकर भव्य जीव प्रसन्न हो जाते हैं । ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् के चरणों की [चरच्यो] पूजा करने को [चहत] इच्छा रखता हुआ मेरा चित रुपी चकोर नाच / (प्रसन्न हो) रहा है । अर्थात् ऐसे चन्द्र प्रभु भगवान् की मैं हृदय से पूजा कर रहा हूँ ।

धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृपनंद
मातु लक्ष्मना उर जये, थापौ चंद जिनंद

अर्थ - शरीर डेढ़सौ धनुष [तुंग] ऊंचा, महासेन [नृप] राजा के [नंद] पुत्र, माता लक्ष्मना के उर से उत्पन्न चन्द्रप्रभ भगवान् की मैं यहाँ स्थापना करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाहद निरमल नीर, हाटक भृंग भरा
तुम चरन जजौ वरवीर, मेटो जनम जरा ॥
श्री चंद्रनाथ द्रुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - हे [वर] श्रेष्ठ वीर ! [गंगाहद] गंगा नदी का स्वच्छ [नीर] जल, [हाटक] स्वर्ण के [भृंग] घड़े में भरकर, मैं आपके चरणों की [जजौ] पूजा करता हूँ । आप मेरे जन्म और बुढ़ापे को नष्ट कर दीजिये । श्री चन्द्रप्रभ भगवान् की [द्रुति] कांति [चंद] चंद्रमा समान है, उनके चरणों में [चंद] चंद्रमा का चिह्न है, मैं मन-वचन-काय और [अमंद] अच्छे-शुद्ध भावों से अपनी आत्मा का प्रकाश जागृत करने के लिये / आत्मा के भान के लिए उनकी [जजत] पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीखण्ड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी
घसि प्रासुक जल के संग, भवआत्माप हरी
श्री चंद्रनाथ द्रुति चंद, चरनन चंद लसै

मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - मैं [श्रीखण्ड] चंदन और [सुचंग] श्रेष्ठ कपूर लेकर केशर के रंग से परिपूर्ण, प्रासुक जल में घिस कर आपको, अपने संसार के दुखों के निवारण हेतु, अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल सित सोम समान, सम लय अनियारे
दिये पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै

मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - [सोम] चंद्रमा के समान [सित] सफ़ेद शालीवन के [अनियारे] साबुत [तंदुल] चावलों के मनोहर पुंज लेकर आपके [पदतर] पूजनीय चरणों में अक्षय पद की प्राप्ति के लिए रख रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुर द्रुम के सुमन सुरंग, गंधित अलि अवे
ता सों पद पूजत चंग, कामविधा जावे
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै

मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - मैं [सुर] देवताओं के [द्रुम] वृक्षों अर्थात् कल्पवृक्ष से [सुरंग] अच्छे रंगों के सुगन्धित, [अलि] भंवरो से मंडराते [सुमन] फूलों को [तासों] आपके चरणों में [चंग] उत्साहपूर्वक [काम बिधा] कामवासना को नष्ट करने के लिए रखता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज नाना परकार, इंद्रिय बलकारी
सो ले पद पूजों सार, अकुलता-हारी
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - विभिन्न प्रकार के इंद्रियों को [बलकारी] शक्ति प्रदान करने वाले नेवज से अपनी [अकुलता हारी] क्षुधा की वेदना को नष्ट करने के लिए आपके [सार] श्रेष्ठ चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम भंजन दीप संवार, तुम ढिग धास्तु हैं
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुण याचतु हैं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - मोह रूपी [तम] अन्धकार को [भंजन] नष्ट करने के लिए [दीप संवार] दीप को प्रज्वलित करके, आपके [ढिग] समक्ष रखता हूँ क्योंकि आपमें यह गुण है इसलिए मेरा [तिमिरमोह] मोह-अन्धकार दूर कर दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दसगंध हुतासन माहि, हे प्रभु खेवतु हैं
मम करम दुष्ट जरि जाहि, या तें सेवतु हैं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - मैं [दसगंध] दस प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से धूप बना कर, दुष्ट कर्म को [जरि] जलाने के लिए, [हुताशन] अग्नि में [खेवतु] खेकर आप की प्रभु सेवा/पूजा कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अति उत्तम फल सु मंगाय, तुम गुण गावतु हैं
पूजौं तनमन हरषाय, विघन नशावतु हैं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - मैं सर्वोत्तम फलों को मंगाकर आपके गुणों को गाता हूँ, तन मन से हर्षित होकर आपकी मैं पूजा करता हूँ क्योंकि आप विघ्नों को नष्ट करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमौ
पूजौं अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमौ
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आत्म-जोति जगे ॥

अर्थ - आठों [पुनीत] पवित्र द्रव्यों को [सजी] सजाकर, [आठों अंग नमौ] आठों अंगों को झुक कर नमस्कार करता हुआ । आठवें हितकारी जिनेन्द्र भगवान चन्द्रप्रभू की बारम्बार, [अष्टम अवनि] अठवीं पृथ्वी - सिद्धशिला, पर [गमौ] जाने के लिए पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥

अर्थ - चैत्र की [कलि] वदी पंचमी [अलि] बहुत [सुहात] अच्छी लगती है क्योंकि इस दिन आप [गरभागम] गर्भ में पधारे थे और आपने जीवों को मंगल एवं [मोद भरी] प्रसन्नता प्रदान करी थी [हरि] इंद्र ने हर्षित होकर माता पिता की पूजा करी थी । हम आपका ध्यान करके [शर्मसिता] पवित्र सुख को प्राप्त करते हैं ।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण पंचम्यांगर्भमंगलंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि पौष एकादशि जन्म लयो, तब लोकविषै सुख थोक भयो
सुरईश जजैं गिरिशीश तबै, हम पूजत हैं नुत शीश अबै ॥

अर्थ - भगवान् आपने पौष [कलि] वदी एकादशी को जन्म लिया था उस समय समस्त लोक [सुखयोक्त] पूर्णतया सुखी हो गया था । [सुर ईश] तब इंद्र ने आपकी [गिरशीश] समेरु पर्वत पर ले जाकर [जजे] पूजा करी थी । हम यहाँ [अबै] अब आपकी मस्तक झुका कर नित्य पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा
निज ध्यान विषै लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

अर्थ - आपने पौष [कलि] कृष्ण एकादशी [पर्व वरा] श्रेष्ठ पर्व के दिन अत्यंत [दुद्धर] दुर्लभ और महान तप को धारण किया (आपका तप कल्याणक हुआ), आप अपनी आत्मा के ध्यान में लवलीन हो गए जो धन्य जीव इस दिन कि पूजा करते है उनके विघ्न नष्ट हो जाते है ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगल मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वर केवल भानु उद्योत कियो, तिहुंलोकतणों भ्रम मेट दियो
कलि फाल्गुन सप्तमि इंद्र जजे, हम पूजहि सर्व कलंक भजे ॥

अर्थ - हे [वर] भगवन् [तणों] आपने केवलज्ञान रुपी [भानु] सूर्य को [उद्योत] प्रकट किया था । [तिहुं] तीनों लोक के जीवों का [भ्रम] मिथ्यात्व मेट दिया था फाल्गुन [कलि] कृष्ण सप्तमि के दिन इंद्र ने आपकी पूजा करी थी । हम भी आपकी पूजा करते है जिससे सभी कर्म कलंक नष्ट हो जाए ।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण सप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित फाल्गुन सप्तमि मुक्ति गये, गुणवंत अनंत अबाध भये
हरि आय जजे तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे ॥

अर्थ - भगवन् आप फाल्गुन [सित] शुक्ल सप्तमि को मोक्ष पधारे, आप [गुणवंत अनंत] अनंतगुणों सहित, [अबाध] बाधा रहित हो गए । [हरि] इंद्र ने आकर अत्यंत [मोद] प्रसन्नता पूर्वक [तित] आपकी [जजे] पूजा करी थी । हम भी समस्त पापों को [हरे] हरने हेतु आपकी पूजा करते है ।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

हे मृगांद अंकित चरण, तुम गुण अगम अपार
गणधर से नहि पार लहि, तौ को वरनत सार

अर्थ - हे चन्द्रप्रभ भगवान् ! आपके चरणों में [मृगांक] चंद्रमा का चिह्न अंकित है आपके अनन्तगुण [अगम] अवर्णीय [अपार] अथाह है, गणधर देव भी उनकी [पार] थाह नहीं प्राप्त कर सकते [तौ] तो [को] कौन उनकी [सार] श्रेष्ठता का [वरनत] वर्णन कर सकता है ।

पै तुम भगति मम हिये, प्रेरे अति उमगाय
तातैं गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय

अर्थ - [पै] फिर भी मेरे [हिये] हृदय में आपकी भक्ति मुझे [प्रेरे] प्रेरित करके अत्यंत [उमगाय] उत्साहित कर रही है इसलिए आपके गुणों का गान करता हूँ, इसमें आप ही मेरी सहायता कीजिये ।

जय चंद्र जिनेंद्र दयानिधान, भवकानन हानन दव प्रमान
जय गरभ जनम मंगल दिनंद, भवि-जीव विकाशन शर्म कन्द ॥१॥

अर्थ - हे चन्द्रप्रभ भगवान् आपकी जय हो । आप दया के [निदान] भण्डार है, संसार रुपी [कानन] जंगल को नष्ट करने के

लिए दावानल के समान है, आपका गर्भ और जन्म कल्याणक हुआ था, आपकी जय हो, [भवि] भव्यजीव रूपी कमलों के हृदय को [विकाशन] विकसित करने के लिए आप सूर्य के समान है और [शर्मकन्द] सुख को उत्पन्न करने वाले हो ।

दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय
लखि कारण है जगतें उदास, चित्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास ॥२॥

अर्थ - भगवन आपने दस लाख पूर्व की आयु प्राप्त करी जिस के गृहस्थ अवस्था में मन वांछित सुखों को भोगे था । कुछ कारणवश आप संसार से उदासीन होकर, सुख के स्थानों, बारह भावनाओं का चिंतन करने लगे ।

तित लोकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग
तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय, ताछिन की शोभा को कहाय ॥३॥

अर्थ - लौकान्तिक देव अपने नियोगानुसार उनके [बोध्यो नियोग] वैराग्य की अनुमोदना के लिए [तित] वहां आये । इंद्र ने [शिविका] पालकी सजा कर रखी । चन्द्रप्रभ भगवान् ! [तापै] उस पर चढ़ कर आप, तप धारण करने के लिए जंगल की ओर बढ़े, [ताछिन] उस समय की शोभा का वर्णन करने में कौन समर्थ है ।

जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गल गुलक हार
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्र चरण चरचें पवित्र ॥४॥

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान् का [अंग सेत] शरीर [सित] श्वेत चंद्रमा के समान था, उन के ऊपर सफ़ेद चँवर ढोरे जा रहे थे, सिर के ऊपर भी सफ़ेद छत्र थे, गले में [गुलक] सुंदर, श्वेत रत्नों से जड़ित हार था, भिन्न-भिन्न आभूषण भी पहने हुए थे ऐसे श्वेत पवित्र चरणों वाले चन्द्रप्रभ भगवान् की हम अर्चना / पूजा करते हैं ।

सित तनद्युति नाकाधीश आप, सित शिविका कांधे धरि सुचाप
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित्त में चिंतित जात पर्व ॥५॥

अर्थ - आपके शरीर की कांति सफ़ेद है आप [नाकाधीश] देवताओं के स्वामी हैं, आपकी श्वेत [सुचाप] धनुषाकार [शिविका] पालकी को इंद्र और देव कंधे पर रख कर ले जाते हैं । उस जलूस में सभी सुरेश नरेश आपके यश (गुणों) का चिंतन करते हुए जाते हैं ।

सित चंद्र नगर तें निकसि नाथ, सित वन में पहुंचे सकल साथ
सित शिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह, सित तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥६॥

अर्थ - भगवन आप चन्द्रनगर से निकलकर वन में [सकल] सब के साथ पहुंचे । वहाँ श्वेत, स्वच्छ और [शिरोमणि] श्रेष्ठ शिला पर आप ने तप धारण किया अर्थात् सारे वस्त्र, आभूषण त्याग कर आपने निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण करी ।

सित पय को पारण परम सार, सित चंद्रदत्त दीनों उदार
सित कर में सो पय धार देत, मानो बांधत भवसिंधु सेत ॥७॥

अर्थ - आपकी [सित पय] श्वेत दूध की श्रेष्ठम रसीली [पारण] पारणा उदार सेठ चन्द्रदत्त द्वारा हुई । आपके श्वेत हाथों में वे दूध की धार देते थे, ऐसा लग रहा था जैसे संसार सागर पर [सेत] पुल ही बांध रहे हो ।

मानो सुपुण्य धारा प्रतच्छ, तित अचरज पन सुर किय ततच्छ
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवल ज्योति जग्यो अनन्त ॥८॥

अर्थ - आपके हाथ में दूध की धारा प्रत्यक्ष पुण्य की धारा बहती हुई लग रही थी । वहाँ पर देवताओं ने [ततच्छ] उसी क्षण [अचरज] पञ्चाशचर्य (रत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, मंदसुगंध, बयार, भिन्न-भिन्न बाजे बजना, अबोध आनंद का उच्चारण) किए । फिर आप गहन तप करने के लिए चले गए जिसके द्वारा आपने अनंत केवलज्ञान रूपी ज्योति को [जग्यो] प्राप्त किया ।

लहि समवसरन रचना महान, जा के दरसन सब पाप हान
जहँ तरु अशोक शोभै उतंग, सब शोक तनो चूरै प्रसंग ॥९॥

अर्थ - केवलज्ञान प्राप्त करते ही आपने समवशरण विभूति प्राप्त करी अर्थात् इंद्र ने कुबेर को भेजकर महान समवशरण की रचना करवाई । जिसको देखते ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं । वहाँ [उतंग] ऊँचा अशोक [तरु] वृक्ष शोभित हो रहा था जो कि समस्त शोक के प्रसंगों को [चूरै] नष्ट कर रहा था ।

सुर सुमन वृष्टि नभ तें सुहात, मनु मन्मथ तजि हथियार जात

बानी जिनमुख सों खिरत सार, मनु तत्व प्रकाशन मुकुर धार ॥१०॥

अर्थ - वहाँ, देवता [नभ] आकाश से सुगन्धित सुहावने पुष्पों की [वर्षा] वृष्टि करते हैं, ऐसा लगता है मानो [मन्मथ] कामदेव अपने हथियारों को छोड़ कर भाग रहा हो । भगवन के मुख से वहाँ श्रेष्ठ वाणी, दिव्यध्वनि, खिरती है जो कि मानो तत्वों के प्रकाशन के लिए साक्षत [मुकुर धार] दर्पणमय है ।

जहाँ चौसठ चमर अमर दुरंत, मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत
सिंहासन है जहाँ कमल जुक्त, मनु शिव सरवर को कमल शुक्ल ॥११॥

अर्थ - जहाँ चौसठ चँवर [अमर] देव निरंतर ढेरते हैं, ऐसा लगता है मानो आपके यश की [झरि] वर्षा मेघों द्वारा हो रही हो, गंधकुटी के ऊपर सिंहासन है, जिस पर कमल है । यह कमल, मोक्षरूपी सरोवर का ही श्वेतकमल लग रहा है ।

दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार
शिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण, मनु रतन तीन त्रय ताप हर्ण ॥१२॥

अर्थ - [जित] जहाँ मधुर सुरों में दुंदुभि बज रही है, ऐसा लगा मानो कर्मों पर विजय का नगाड़ा बज रहा हो । आपके सिर के ऊपर तीन छत्र, श्वेत वर्ण के फिर रहे हैं, मानो ये तीन रत्नो (रत्नत्रय) के देने वाले और तीन प्रकार के ताप अर्थात् जन्म जरा मृत्यु को हरने वाले हों ।

तन प्रभा तनो मंडल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात
मनु दर्पण द्युति यह जगमगाय, भविजन भव मुख देखत सु आय ॥१३॥

अर्थ - आपके शरीर की प्रभा का जो सुहावना मंडल है उसमें भव्य जीव अपने-अपने सात-सात (तीन भूत, तीन भविष्य के और १ □□□□□□□) भव देखते हैं । जैसे वे दर्पण में अपना मुख स्पष्ट देख कर आते हैं ।

इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान
ता को वरणत नहि लहत पार, तो अंतरंग को कहै सार ॥१४॥

अर्थ - इन अनेक विभूतियों को देखकर आपकी बाह्य महिमा का वर्णन करना कठिन है फिर अंतरंग महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ।

अनअंत गुणनिजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार
फिर जोग निरोध अघातिहान, सम्मेदथकी लिय मुक्तिथान ॥१५॥

अर्थ - भगवान् आपने अपने अनंतगुणों सहित विहार किया है और भव्य जीवों को संसार से पार लगने का उपदेश दिया । फिर योग-निरोध अर्थात् मन-वचन-काय तीनों योगों का निरोध करके, चार अघातिया कर्मों को नष्ट करके सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

'वृन्दावन वंदत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय
ता तें का कहौं सु बार बार, मनवांछित कारज सार सार ॥१६॥

अर्थ - वृन्दावन कवि शीश नवकार बारम्बार प्रभु की वंदना करते हैं - प्रभू ! आप सब जानते हो कि मेरे हृदय में क्या है, उसे मैं बार बार क्या कहूँ, मेरे मन की इच्छा, [सार सार] श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्ति [कारज] करवा दीजिये ।

जय चंद जिन्दा, आनंदकंदा, भवभयभंजन राजें हैं
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा, मुक्ति मांहि थिति साजें हैं ॥१७॥

अर्थ - जिनेन्द्र चन्द्र प्रभ आपकी जय हो । आप आनंद के समूह हैं, संसार के भय को नष्ट करने वाले हैं, रागादि द्वंदों के फंदों को हरने वाले हैं, आप मोक्ष में भली प्रकार विराजमान हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेद्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजें
ता के भव-भव के अघ भाजें, मुक्तिसार सुख ताहि सजें ॥

जम के त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजें
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जा तें शिवपुरि राज रजें ॥

अर्थ - जो भव्य जीव आठों द्रव्यों को लेकर चन्द्र प्रभु भगवान् की पूजा करते हैं उनके भव-भव के [अघ] पाप नष्ट हो जाते हैं और मुक्ति-सुख की प्राप्ति होती है । जन्म के [त्रास] दुःख मिट जाते हैं, समस्त अमंगल दूर हो जाते हैं । वृन्दावन कवि ये देखकर, पूजा करते हैं जिस से मोक्ष सुख की प्राप्ति हो सके ।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री पुष्पदन्त - पूजन

पुष्पदन्त भगवन्त सन्त सु जपन्त तन्त गुन
महिमावन्त महन्त कन्त शिवतिय रमन्त मुन ॥
काकन्दीपुर जन्म पिता सुग्रीव रमा सुत
श्वेत वरन मनहरन तुम्हें थापौं त्रिवार नुत ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमवन गिरिगत गंगाजल भर, कंचन भृंग भराय
करम कलंक निवारनकारन, जजौं, तुम्हारे पाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावन चन्दन कदलीनन्दन, कुंकुम संग घसाय
चरचौं चरन हरन मिथ्यातम, वीतराग गुण गाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शालि अखंडित सौरभमंडित, शशिसम द्युति दमकाय
ता को पुञ्ज धरौं चरननढिग, देहु अखय पद राय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुमन सुमनसम परिमलमंडित, गुंजत अलिगन आय
ब्रह्मपुत्र मद भंजन कारन, जजौं तुम्हारे पाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर फेनी गोंजा, मोदन मोदक लाय
छुधा वेदनि रोग हरन को, भेंट धरौ गुण गाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

वाति कपूर दीप कंचनमय, उज्ज्वल ज्योति जगाय
तिमिर मोह नाशक तुमको लखि, धरौ निकट उमगाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशवर गंध धनंजय के संग, खेवत हौं गुन गाय
अष्टकर्म ये दुष्ट जेरें सो, धूम सु धूम उड़ाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल मातुलिंग शुचि चिरभट, दाड़िम आम मंगाव
ता सों तुम पद पद्म जजत हौं, विघन सघन मिट जाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल सकल मिलाय मनोहर, मनवचतन हुलसाय
तुम पद पूजौं प्रीति लाय के, जय जय त्रिभुवनराय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

नवमी तिथि कारी फागुन धारी, गरभ मांहि थिति देवा जी
तजि अरण थानं कृपानिधानं, करत शची तित सेवा जी ॥
रतनन की धारा परम उदारा, परी व्योम तें सारा जी
मैं पूजौं ध्यावौं भगति बढ़ावौं, करो मोहि भव पारा जी ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णानवम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मंगसिर सितपच्छं परिवा स्वच्छं, जनमे तीरथनाथा जी
तब ही चवभेवा निरजर येवा, आय नये निज माथा जी ॥
सुरगिर नहवाये, मंगल गाये, पूजे प्रीति लगाई जी
मैं पूजौं ध्यावौं भगत बढ़ावौं, निजनिधि हेतु सहाई जी ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ल प्रतिपदायां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित मंगसिर मासा तिथि सुखरासा, एकम के दिन धारा जी
तप आत्मज्ञानी आकुलहानी, मौन सहित अविकारा जी ॥
सुरमित्र सुदानी के घर अनी, गो-पय पारन कीना जी
तिन को मैं वन्दौ पाप निकंदौ, जो समता रस भीना जी ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ल प्रतिपदायां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित कार्तिक गाये दोइज घाये, घातिकरम परचंडा जी
केवल परकाशे भ्रम तम नाशे, सकल सार सुख मंडा जी ॥
गनराज अठासी आनंदभासी, समवसरण वृषदाता जी
हरि पूजन अयो शीश नमायो, हम पूजें जगत्राता जी ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ल द्वितीयायां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा 4

भादव सित सारा अठैं धारा, गिरिसमेद निरवाना जी
गुन अष्ट प्रकारा अनुपम धारा, जय जय कृपा निधाना जी ॥
तित इन्द्र सु अयौ, पूज रचायौ, चिह्न तहां करि दीना जी
मैं पूजत हौं गुन ध्यान मणी सों, तुमरे रस में भीना जी ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपद शुक्लऽष्टम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

लच्छन मगर सुश्वेत तन तुङ्गं धनुष शत एक
सुरनर वंदित मुक्तिपति, नमौ तुम्हें शिर टेक ॥
पुहुपदन्त गुनवदन है, सागर तोय समान
क्यों करि कर-अंजुलिनि कर, करिये तासु प्रमान ॥

पुष्पदन्त जयवन्त नमस्ते, पुण्य तीर्थकर सन्त नमस्ते
ज्ञान ध्यान अमलान नमस्ते, चिद्विलास सुख ज्ञान नमस्ते
भवभयभंजन देव नमस्ते, मुनिगणकृत पद-सेव नमस्ते
मिथ्या-निशि दिन-इन्द्र नमस्ते, ज्ञानपयोदधि चन्द्र नमस्ते
भवदुःख तरु निःकन्द नमस्ते, राग दोष मद हनन नमस्ते
विश्वेश्वर गुणभूर नमस्ते, धर्म सुधारस पूर नमस्ते
केवल ब्रह्म प्रकाश नमस्ते, सकल चराचरभास नमस्ते
विघ्नमहीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरुधगति रिज्जु नमस्ते
जय मकराकृत पाद नमस्ते, मकरध्वज-मदवाद नमस्ते

कर्मभर्म परिहार नमस्ते, जय जय अधम-उद्धार नमस्ते
दयाधुरंधर धीर नमस्ते, जय जय गुन गम्भीर नमस्ते
मुक्ति रमनि पति वीर नमस्ते, हर्ता भवभय पीर नमस्ते
व्यय उत्पति थितिधार नमस्ते, निजअधार अविकार नमस्ते
भव्य भवोदधितार नमस्ते, 'वृन्दावन' निस्तार नमस्ते
घत्ता:- जय जय जिनदेवं हरिकृतसेवं, परम धरमधन धारी जी
मैं पूजौं ध्यावौं गुनगन गावौं, मेटो विथा हमारी जी

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय पूर्णाघ्यं निर्वपामीति सवह

पुहुपदंत पद सन्तु, जजें जो मनवचकाई
नाचें गावें भगति करें, शुभ परनति लाई ॥
सो पावें सुख सर्व, इन्द्र अहिमिंद तनों वर
अनुक्रम तें निरवान, लहें निहचै प्रमोद धर ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री शीतलनाथ - पूजन

शीतलनाथ नमौं धरि हाथ, सु माथ जिन्हों भव गाथ मिटाये
अच्युत तें च्युत मात सुनन्द के, नन्द भये पुर बढल अये ॥
वंश इक्ष्वाकु कियो जिन भूषित, भव्यन को भव पार लगाये
ऐसे कृपानिधि के पद पंकज, थापतु हौं हिय हर्ष बढ़ाये ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

देवापगा सु वर वारि विशुद्ध लायो, भृंगार हेम भरि भक्ति हिये बढ़ायो
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीखंड सार वर कुंकुम गारि लीनों, कं संग स्वच्छ घिसि भक्ति हिये धरीनों
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्त-समान सित तंदुल सार राजे, धारंत पुंज कलिकंज समस्त भाजें
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

श्री केतकी प्रमुख पुष्प अदोष लायो, नौरंग जंग करि भृंग सु रंग पायो
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नैवेद्य सार चरु चारु संवारि लायो, जांबूनद-प्रभृति भाजन शीश नायो
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्नेह प्रपूरित सुदीपक जोति राजे, स्नेह प्रपूरित हिये जज्जेऽघ भाजे
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागरू प्रमुख गंध हुताश माहीं, खेवौं तवाग्र वसुकर्म जरंत जाही
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

निम्बाम्र कर्कटि सु दाड़िम अदि धारा, सौवर्ण-गंध फल सार सुपक प्यारा
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ श्री-फलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे, नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजे
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

(छंद इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा)

अठैं वदी चैत सुगर्भ मांही, अये प्रभू मंगलरूप थाहीं
सेवै शची मातु अनेक भेवा, चर्चौं सदा शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णऽष्टम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री माघ की द्वादशि श्याम जायो, भूलोक में मंगल सार आयो
शैलेन्द्र पै इन्द्र फनिन्द्र जज्जे मैं ध्यान धारौं भवदुःख भज्जे ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्ण द्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री माघ की द्वादशि श्याम जानो, वैराग्य पायो भवभाव हानो
ध्यायो चिदानन्द निवार मोहा, चर्चौ सदा चर्न निवारि कोहा ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्ण द्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चतुर्दशी पौष वदी सुहायो, ताही दिना केवल लब्धि पायो
शोभै समोसृत्य बखानि धर्म, चर्चौ सदा शीतल पर्म शर्म ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां केवल ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कुवार की अठैं शुद्ध बुद्धा, भये महा मोक्ष सरूप शुद्धा
सम्मेद तें शीतलनाथ स्वामी, गुनाकरं ता सु पदं नमामी ॥

ॐ ह्रीं अश्विनशुक्लऽष्टम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप अनंत गुनाकर राजे, वस्तुविकाशन भानु समाजे
मैं यह जानि गही शरना है, मोह महारिपु को हरना है
दोहा:- हेम वरन तन तुंग धनु-नव्वै अति अभिराम
सुर तरु अंक निहारि पद, पुनि पुनि करौं प्रणाम

जय शीतलनाथ जिनन्द वरं, भव दाह दवानल मेघझरं
दुख-भुभृत-भंजन वज्र समं, भव सागर नागर-पोत-पमं
कुह-मान-मयागद-लोभ हरं, अरि विघ्न गयंद मृगिद वरं
वृष-वारिधवृष्टन सृष्टिहितू, परदृष्टि विनाशन सुष्टु पितू
समवस्रत संजुत राजतु हो, उपमा अभिराम विराजतु हो
वर बारह भेद सभा थित को, तित धर्म बखानि कियो हित को
पहले महि श्री गणराज रजैं, दुतिये महि कल्पसुरी जु सजैं
त्रितिये गणनी गुन भूरि धरैं, चवथे तिय जोतिष जोति भरैं
तिय-वितरनी पन में गनिये, छह में भुवनेसुर तिय भनिये
भुवनेश दशों थित सत्तम हैं, वसु-वितर उत्तम हैं
नव में नभजोतिष पंच भरे, दश में दिविदेव समस्त खरे
नरवृन्द इकादश में निवसें, अरु बारह में पशु सर्व लसें
तजि वैर, प्रमोद धरें सब ही, समता रस मग्न लसें तब ही

धुनि दिव्य सुनें तजि मोहमलं, गनराज असी धरि ज्ञानबलं
सबके हित तत्त्व बखान करें, करुना-मन-रंजित शर्म भरे
वरने षटद्रव्य तनें जितने, वर भेद विराजतु हैं तितने
पुनि ध्यान उभै शिवहेत मुना, इक धर्म दुती सुकलं अधुना
तित धर्म सुध्यान तणों गुनियो, दशभेद लखे भ्रम को हनियो
पहलोरि नाश अपाय सही, दुतियो जिन बैन उपाया गही
त्रिति जीवविषै निजध्यावन है, चवथो सु अजीव रमावन है
पनमों सु उदै बलटारन है, छहमों अरि-राग-निवारन है
भव त्यागन चितन सप्तम है, वसुमों जितलोभ न आत्म है
नवमों जिन की धुनि सीस धरे, दशमों जिनभाषित हेत करे
इमि धर्म तणों दश भेद भन्यो, पुनि शुक्लतणो चदु येम गन्यो
सुपृथक्-वितर्क-विचार सही, सुइकत्व-वितर्क-विचार गही
पुनि सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपात कही, विपरीत-क्रिया-निरवृत्त लही
इन आदिक सर्व प्रकाश कियो, भवि जीवनको शिव स्वर्ग दियो
पुनि मोक्षविहार कियो जिनजी, सुखसागर मग्न चिरं गुनजी
अब मैं शरना पकरी तुमरी, सुधि लेहु दयानिधि जी हमरी
भव व्याधि निवार करो अब ही, मति ढील करो सुख द्यो सब ही

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल जिन ध्याऊं भगति बढ़ाऊं, ज्यों रतनत्रय निधि पाऊं
भवदंद नशाऊं शिवथल जाऊं, फेर न भव वन में आऊं

दिदरथ सुत श्रीमान् पंचकल्याणक धारी, तिन पद जुगपद्म जो जजै भक्तिधारी
सहजसुख धन धान्य दीर्घ सौभाग्य पावे, अनुक्रम अरि दाहै, मोक्ष को सो सिधावै ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री श्रेयांसनाथ - पूजन

विमल नृप विमला सुअन, श्रेयांसनाथ जिनन्द
सिंहपुर जन्मे सकल हरि, पूजि धरि आनन्द ॥
भव बंध ध्वंसनिहेत लखि मैं शरन आयो येव
थापौं चरन जुग उरकमल में, जजनकारन देव

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कलधौत वरन उतंग हिमगिरि पदम द्रह तें आवई
सुरसरित प्रासुक उदक सों भरि भृंग धार चढ़ावई ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गोशीर वर करपूर कुंकुम नीर संग घसौं सही
भवताप भंजन हेत भवदधि सेत चरन जजौं सही ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सित शालि शशि द्रुति शुक्ति सुन्दर मुक्तकी उनहार हैं
भरि थार पुंज धरंत पदतर अखयपद करतार हैं ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सद सुमन सु मन समान पावन, मलय तें मधु झंकरें
पद कमलतर धरतैं तुरित सो मदन को मद खंकरें ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

यह परम मोदक आदि सरस सँवारि सुन्दर चरु लियो
तुव वेदनी मदहरन लखि, चरचौं चरन शुचिकर हियो ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

संशय विमोह विभ्रम तम भंजन दिनन्द समान हो
तातैं चरनढिग दीप जोऊँ देहु अविचल ज्ञान हो ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

वर अगर तगर कपूर चूर सुगन्ध भूर बनाइया
दहि अमर जिह्वाविषैं चरनढिग करम भरम जराइया ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरलोक अरु नरलोक के फल पक्क मधुर सुहावने
ले भगति सहित जजौं चरन शिव परम पावन पावने ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलमलय तंदुल सुमनचरु अरु दीप धूप फलावली
करि अरघ चरचौं चरन जुग प्रभु मोहि तार उतावली ॥श्रे

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

पुष्पोत्तर तजि आये, विमलाउर जेठकृष्ण छट्टम को
सुरनर मंगल गाये, पूजौं मैं नासि कर्म काठनि को ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा

जनमे फागुनकारी, एकादशि तीन ग्यान दगधारी
इक्ष्वाकु वंशंतारी, मैं पूजौं घोर विघ्न दुख टारी ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा

भव तन भोग असार, लख त्याग्यो धीर शुद्ध तप धारा
फागुन वदि इग्यारा, मैं पूजौं पाद अष्ट परकारा ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा

केवलज्ञान सुजानन, माघ बदी पूर्णतित्थ को देवा
चतुरानन भवभानन, वंदौं ध्यावौं करौं सुपद सेवा ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णमावस्यायां केवलज्ञानमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा

गिरि समेद तें पायो, शिवथल तिथि पूर्णमासि सावन को
कुलिशायुध गुनगायो, मैं पूजौं आप निकट आवन को ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लपूर्णिमायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

शोभित तुंग शरीर सुजानो, चाप असी शुभ लक्षण मानो
कंचन वर्ण अनूपम सोहे, देखत रुप सुरासुर मोहे

जय जय श्रेयांस जिन गुणगरिष्ठ, तुम पदजुग दायक इष्टमिष्ट
जय शिष्ट शिरोमणि जगतपाल, जय भव सरोजगन प्रातःकाल
जय पंच महाव्रत गज सवार, लै त्याग भाव दलबल सु लार
जय धीरज को दलपति बनाय, सत्ता छितिमहँ रन को मचाय

धरि रतन तीन तिहुँशक्ति हाथ, दश धरम कवच तपटोप माथ
 जय शुक्लध्यान कर खड़ग धार, ललकारे आठों अरि प्रचार
 ता में सबको पति मोह चण्ड, ता को तत छिन करि सहस खण्ड
 फिर ज्ञान दरस प्रत्यूह हान, निजगुन गढ़ लीनों अचल थान 5
 शुचि ज्ञान दरस सुख वीर्य सार, हुई समवशरण रचना अपार
 तित भाषे तत्व अनेक धार, जा को सुनि भव्य हिये विचार
 निजरूप लाह्यो आनन्दकार, भ्रम दूर करन को अति उदार
 पुनि नयप्रमान निच्छेप सार, दरसायो करि संशय प्रहार
 ता में प्रमान जुगभेद एव, परतच्छ परोछ रजै स्वमेव
 ता में पतच्छ के भेद दोय, पहिलो है संविवहार सोय
 ता के जुग भेद विराजमान, मति श्रुति सोहें सुन्दर महान
 है परमारथ दुतियो प्रतच्छ, हैं भेद जुगम ता माहि दच्छ 9
 इक एकदेश इक सर्वदेश, इकदेश उभैविधि सहित वेश
 वर अवधि सु मनपरजय विचार, है सकलदेश केवल अपार
 चर अचर लखत जुगपत प्रतच्छ, निरद्वन्द रहित परपंच पच्छ
 पुनि है परोच्छमहँ पंच भेद, समिरति अरु प्रतिभिज्ञान वेद
 पुनि तरक और अनुमान मान, आगमजुत पन अब नय बखान
 नैगम संग्रह व्यौहार गूढ़, ऋजुसूत्र शब्द अरु अमभिरुढ़
 पुनि एवंभूत सु सप्त एम, नय कहे जिनेसुर गुन जु तेम
 पुनि दरव क्षेत्र अर काल भाव, निच्छेप चार विधि इमि जनाव
 इनको समस्त भाष्यो विशेष, जा समुझत भ्रम नहि रहत लेश
 निज ज्ञानहेत ये मूलमन्त्र, तुम भाषे श्री जिनवर सु तन्त्र
 इत्यादि तत्त्व उपदेश देय, हनि शेषकरम निरवान लेय
 गिरवान जजत वसु दरब ईस, 'वृन्दावन' नितप्रति नमत शीश

घत्ता:- श्रेयांस महेशा सुगुन जिनेशा, वज्रधरेशा ध्यावतु हैं
 हम निशदिन वन्दें पापनिकंदें, ज्यों सहजानंद पावतु हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो पूजें मन लाय श्रेयनाथ पद पद्म को
 पावें इष्ट अघाय, अनुक्रम सों शिवतिय वैं ॥
 इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री वासुपूज्य - पूजन

श्रीमत् वासुपूज्य जिनवर पद, पूजन हेत हिये उमगाय
थापौ मन वच तन शुचि करके, जिनकी पाटलदेव्या माय ॥
महिष चिह्न पद लसे मनोहर, लाल वरन तन समतादाय
सो करुनानिधि कृपादृष्टि करि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ इहं अय ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाजल भरि कनक कुंभ में, प्रासुक गंध मिलाई
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागरु मलयागिर चंदन, केशरसंग घिसाई
भवआत्ताप विनाशन-कारन, पूजौ पद चित लाई ॥वासु

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास शुद्ध वर सुवरन थार भराई
पुंज धरत तुम चरनन आगे, तुरित अखय पद पाई ॥वासु

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात संतान कल्पतरु-जनित सुमन बहु लाई
मीन केतु मद भंजनकारन, तुम पदमद चढ़ाई ॥वासु

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य-गव्य आदिक रसपूरित, नेवज तुरत उपाई
क्षुधारोग निवारन कारन, तुम्हें जजौ शिरनाई ॥वासु

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक जोत उदोत होत वर, दश-दिश में छवि छाई

मोह तिमिर नाशक तुमको लखि, जजौं चरन हरषाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविध गंध मनोहर लेकर, वात होत्र में डाई
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूप सु धूम उड़ाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस सुपक्क सुपावन फल ले कंचन थार भराई
मोक्ष महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरौं गुन गाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल दरव मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई
शिवपदराज हेत हे श्रीपति ! निकट धरौं यह लाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

कलि छट्ट असाढ़ सुहायो, गरभागम मंगल पायो
दशमें दिवि तें इत अये, शतइन्द्र जजें सिर नाये॥
ॐ ह्रीं आषाढकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कलि चौदस फागुन जानो, जनमो जगदीश महानो
हरि मेरु जजे तब जाई, हम पूजत हैं चित लाई ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा
नृप सुन्दर के पय पायो, हम पूजत अति सुख थायो ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सुदि माघ दोइज सोहे, लहि केवल आत्म जोहे
अनअंत गुनाकर स्वामी, नित वंदौ त्रिभुवन नामी ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञान मंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सित भादव चौदस लीनो, निरवान सुथान प्रवीनी
पुर चंपा थानक सेती, हम पूजत निज हित हेती ॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चंपापुर में पंच वर-कल्याणक तुम पाय
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय

महासुखसागर अगर ज्ञान, अनंत सुखामृत मुक्त महान
महाबलमंडित खंडितकाम, रमाशिवसंग सदा विसराम
सुरिद फनिद खगिद नरिद, मुनिद जजें नित पादारविद
प्रभू तुम अंतरभाव विराग, सु बालहि तें व्रतशील सों राग
कियो नहि राज उदास सरूप, सु भावन भावत आत्म रूप
'अनित्य' शरीर प्रपंच समस्त, चिदात्म नित्य सुखाश्रित वस्त
'अर्शन' नहीं कोउ शर्न सहाय, जहां जिय भोगत कर्म विपाय
निजातम को परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न
'जगत्' जथा जल बुदबुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव
अनेक प्रकार धरी यह देह, भ्रमे भवकानन आन न गेह
'अपावन' सात कुधात भरीय, चिदात्म शुद्ध सुभाव धरीय
धरे तन सों जब नेह तबेव, सु 'आवत कर्म' तबै वसुभेव
जबै तन-भोग-जगत्-उदास, धरे तब 'संवर' 'निर्जर' आस
करे जब कर्मकलंक विनाश, लहे तब 'मोक्ष' महासुखराश
तथा यह 'लोक' नराकृत नित, विलोकियते षट्द्रव्य विचित
सु आत्मजानन 'बोध' विहिनि, धरे किन तत्व प्रतीत प्रवीन
'जिनागम ज्ञानरु' संजम भाव, सबै निजज्ञान विना विरसाव
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिस तें शिव हाल
लयो सब जोग सु पुन्य वशाय, कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय
विचारत यों लौकान्तिक आय, नमे पदपंकज पुष्प चढ़ाय 11
कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार, प्रबोधि सुपेम कियो जु विहार
तबै सौधर्मतनों हरि आय, रच्यो शिविका चढ़िआय जिनाय
धरे तप पाय सु केवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध
लियो फिर मोक्ष महासुखराश, नमें नित भक्त सोई सुख आश
नित वासव वंदत, पापनिकंदत, वासुपूज्य व्रत ब्रह्मपती
भवसंकलखंडित, आनंदमंडित, जै जै जै जैवंत जती

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वासुपूजद सार, जजौं दरबविधि भाव सों
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्ति को जो परम ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री विमलनाथ - पूजन

सहस्रार दिवि त्यागि, नगर कम्पिला जनम लिय
कृतधर्मानृपनन्द, मातु जयसेना धर्मप्रिय ॥
तीन लोक वर नन्द, विमल जिन विमल विमलकर
थापौ चरन सरोज, जजन के हेतु भाव धर ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कंचन झारी धारि, पदमद्रह को नीर ले
तृषा रोग निरवारि, विमल विमलगुन पूजिये ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागर करपूर देववल्लभा संग घसि
हरि मिथ्यातमभूर, विमल विमलगुन जजतु हौं ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

वासमती सुखदास, स्वेत निशपति को हँसै
पूरे वाँछित आस, विमल विमलगुन जजत ही ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार, संतानक सुरतरु जनित
जजौं सुमन भरि थार, विमल विमलगुन मदनहर ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य गव्य रसपूर, सुवर्ण थाल भरायके
छुधावेदनी चूर, जजौं विमल विमलगुन ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

माणिक दीप अखण्ड गो छाई वर गो दशों

हरो मोहतम चंड, विमल विमलमति के धनी ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

आरु तगर घनसार, देवदारु कर चूर वर
खेवौं वसु अरि जार, विमल विमल पद पद्म ढिग ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल सेव अनार, मधुर रसीले पावने
जजौं विमलपद सार, विघ्न हरे शिवफल करें ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब संवार, मनसुखदायक पावने
जजौं अरघ भर थार, विमल विमल शिवतिय रमण ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

गरभ जेठ बदी दशमी भनो, परम पावन सो दिन शोभनो
करत सेव सची जननीतणी, हम जजें पदपद्म शिरौमणी ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णदशम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्लमाघ तुरी तिथि जानिये, जनम मंगल तादिन मानिये
हरि तबै गिरिराज विषै जजे, हम समर्चत आनन्द को सजे ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप धरे सित माघ तुरी भली, निज सुधातम ध्यावत हैं रली
हरि फनेश नरेश जजें तहां, हम जजें नित आनन्द सों इहां ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां तपोमंगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

विमल माघरसी हनि घातिया, विमलबोध लयो सब भासिया
विमल अर्घ चढ़ाय जजौं अबै, विमल आनन्द देहु हमें सबै ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लषष्ठ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रमरसाढ़ छटी अति पावनो विमल सिद्ध भये मन भावनो
गिरसमेद हरी तित पूजिया, हम जजें इत हर्ष धरैं हिया ॥

ॐ ह्रीं आषाढकृष्णषष्ठ्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

गहन चहत उड़गन गगन, छिति तिथि के छहँ जेम
तुम गुन-वरनन वरननि, माँहि होय तब केम
साठ धुनष तन तुंग है, हेम वरन अभिराम
वर वराह पद अंक लखि, पुनि पुनि करौ प्रनाम

जय केवलब्रह्म अनन्तगुनी, तुम ध्यावत शेष महेश मुनी
परमात्म पूरन पाप हनी, चितचित्ततदायक इष्ट धनी
भव आतपध्वंसन इन्दुकरं, वर सार रसायन शर्मभरं
सब जन्म जरा मृतु दाहहरं, शरनागत पालन नाथ वरं
नित सन्त तुम्हें इन नामनि तें, चित चिन्तन हैं गुनगाम नितैं
अमलं अचलं अटलं अतुलं, अरलं अछलं अथलं अकुलं
अजरं अमरं अहरं अडरं, अपरं अभरं अशरं अनरं
अमलीन अछीन अरीन हने, अमतं अगतं अरतं अघने
अछुधा अतृषा अभयात्म हो, अमदा अगदा अवदात्म हो
अविरुद्ध अक्रुद्ध अमानधुना, अतलं असलं अनअन्त गुना
अरसं सरसं अकलं सकलं, अवचं सवचं अमचं सबलं
इन आदि अनेक प्रकार सही, तुमको जिन सन्त जपें नित ही
अब मैं तुमरी शरना पकरी, दुख दूर करो प्रभुजी हमरी
हम कष्ट सहे भवकानन में, कुनिगोद तथा थल आनन में
तित जानम मर्न सहे जितने, कहि केम सकें तुम सों तितने
सुमुहूरत अन्तरमाहि धरे, छह त्रै त्रय छः छहकाय खरे
छिति वहि व्यारिक साधरनं, लघु धूल विभेदनि सों भरनं
परतेक वनस्पति ग्यार भये, छ हजार दुवादश भेद लये
सब द्वै त्रय भू षट छः सु भया, इक इन्द्रिय की परजाय लया
जुग इन्द्रिय काय असी गहियो, तिय इन्द्रिय साठनि में रहियो
चतुरिन्द्रिय चालिस देह धरा, पनइन्द्रिय के चवबीस वरा
सब ये तन धार तहाँ सहियो, दुखघोर चितारित जात हियो
अब मो अरदास हिये धरिये, दुखदंद सबै अब ही हरिये
मनवांछित कारज सिद्ध करो, सुखसार सबै घर रिद्ध भरो

घत्ता:- जय विमलजिनेशा नूतनाकेशा, नागेशा नरईश सदा
भवताप अशेषा, हरन निशेशा, दाता चिन्तित शर्म सदा
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमत विमल जिनेशपद, जो पूजें मनलाय
पूरें वांछित आश तसु, मैं पूजौं गुनगाय ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री अनन्तनाथ - पूजन

पुष्पोत्तर तजि नगर अजुध्या जनम लियो सूर्या उर आय,
सिंघसेन नृप के नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय
गुन अनंत भगवंत धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय,
थापतु हौं त्रय बार उचरि के, कृपासिन्धु तिष्ठहु इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुचि नीर निरमल गंग को ले, कनक भृंग भराइया
मल करम धोवन हेतु, मन वच काय धार ढराइया ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचन्द्र कदलीनंद कंकुम्, दंद ताप निकंद है
सब पापरुजसंताप भंजन, आपको लखि चंद है ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

कनशाल दुति उजियाल हीर, हिमाल गुलकनि तें घनी
तसु पुंज तुम पदतर धरत, पद लहत स्वच्छ सुहावनी ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्कर अमरत जनित वर, अथवा अवर कर लाइया
तुम चरन-पुष्करतर धरत, सरशूर सकल नशाइया ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पक्वान नैना घ्रान रसना, को प्रमोद सुदाय हैं
सो ल्यान चरन चढ़ाय रोग, छुधाय नाश कराय हैं ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तममोह भानन जानि आनन्द, अनि सरन गही अबै
वर दीप धारौं वारि तुम ढिग, स्वपर-ज्ञान जु द्यो सबै ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

यह गंध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्रध्वज में खेय हौं
वसुकर्म भर्म जराय तुम ढिग, निज सुधातम वेय हौं ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रसथक पक सुभक चक, सुहावने मृदु पावने
फलासार वृन्द अमंद ऐसो, ल्याय पूज रचावने ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरौं
अरु धूप फल जुत अरघ करि, करजोरजुग विनति करौं ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

असित कार्तिक एकम भावनो, गरभ को दिन सो गिन पावनो
किय सची तित चर्वन चाव सों , हम जजें इत आनंद भाव सों ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णप्रतिपदायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनम जेठवदी तिथि द्वादशी, सकल मंगल लोकविषै लशी
हरि जजे गिरिराज समाज तें, हम जजें इत आत्म काज तें ॥

ॐ ह्रीं जेष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भव शरीर विनस्वर भाइयो, असित जेठ दुवादशि गाइयो

सकल इंद्र जजें तित अइके, हम जजैं इत मंगल गाइके ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित चैत अमावस को सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही
लही समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित चैत अमावस गाइयो, अघत घाति हने शिव पाइयो
गिरि समेद जजें हरि आय के, हम जजें पद प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुम गुण वरनन येम जिम, खंविहाय करमान
था मेदिनी पदनिकरि, कीनो चहत प्रमान ॥
जय अनन्त रवि भव्यमन, जलज वृन्द विहँसाय
सुमति कोकतिय थोक सुख, वृद्ध कियो जिनराय ॥

जै अनन्त गुनवंत नमस्ते शुद्ध ध्येय नित सन्त नमस्ते
लोकालोक विलोक नमस्ते चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते
रक्तत्रयधर धीर नमस्ते करमशत्रुकरि कीर नमस्ते
चार अनंत महन्त नमस्ते जय जय शिवतियकंत नमस्ते
पंचाचार विचार नमस्ते पंच करण मदहार नमस्ते
पंच पराव्रत-चूर नमस्ते पंचमगति सुखपूर नमस्ते
पंचलब्धिधरनेश नमस्ते पंचभावसिद्धेश नमस्ते
छहों दरब गुनजान नमस्ते छहों कालपहिचान नमस्ते
छहों काय रच्छेश नमस्ते छह सम्यक उपदेश नमस्ते
सप्तव्यसनवनवह्नि नमस्ते जय केवल अपरह्नि नमस्ते
सप्ततत्त्व गुनभनन नमस्ते सप्त श्वभ्रगति हनन नमस्ते
सप्तभंग के ईश नमस्ते सातों नय कथनीश नमस्ते
अष्टकरम मलदल्ल नमस्ते अष्टजोग निरशल्ल नमस्ते
अष्टम धराधिराज नमस्ते अष्ट गुननि सिरताज नमस्ते
जय नवकेवल प्राप्त-नमस्ते नव पदार्थथिति आप्त नमस्ते
दशों धरम धरतार नमस्ते दशों बंधपरिहार नमस्ते

विघ्न महीधर विज्जु नमस्ते जय ऊरुधगति रिज्जु नमस्ते
तन कनकंदुति पूर नमस्ते इक्ष्वाकु वंश कज सूर नमस्ते
धनु पचासतन उच्च नमस्ते कृपासिंधु मृग शुच्च नमस्ते
सेही अंक निशंक नमस्ते चितचकोर मृग अंक नमस्ते
राग दोषमदटार नमस्ते निजविचार दुखहार नमस्ते
सुर-सुरेश-गन-वृन्द नमस्ते 'वृन्द' करो सुखकंद नमस्ते

जय जय जिनदेवं सुरकृतसेवं, नित कृतचित्त हुल्लासधरं
आपद उद्धारं समतागारं, वीरराग विज्ञान भरं

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो जन मन वच काय लाय, जिन जजे नेह धर,
वा अनुमोदन करे करावे पढ़े पाठ वर
ताके नित नव होय सुमंगल आनन्द दाई,
अनुक्रम तें निरवान लहे सामग्री पाई ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री धर्मनाथ - पूजन

तजि के सरवारथसिद्धि विमान, सुभान के आनि आनन्द बढ़ाये
जगमात सुव्रति के नन्दन होय, भवोदधि डूबत जंतु कढ़ाये ॥
जिनके गुन नामहि प्रकाश है, दासनि को शिवस्वर्ग मँढ़ाये
तिनके पद पूजन हेत त्रिवार, सुथापतु हौं इहं फूल चढ़ाये ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि मन सम शुचि शीर नीर अति, मलय मेलि भरि झारी
जनमजरामृत ताप हरन को, चरचौं चरन तुम्हारी ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

केशर चन्दन कसली नन्दन, दाहनिकन्दन लीनि
जलसंग घस लसि शसिसम शमकर, भव अताप हरीनो परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

जलज जीर सुखदास हीर हिम, नीर किरनसम लायो
पुंज धरत आनन्द भरत भव, दंद हरत हरषायो ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुमन सुमन सम सुमणि थाल भर, सुमनवृन्द विहंसाई
सुमन्मथ-मद-मंथन के कारन, अरचौं चरन चढ़ाई ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर अर्द्ध चन्द्र सम, छिद्र सहज विराजे
सुरस मधुर ता सों पद पूजत, रोग असाता भाजै ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुन्दर नेह सहित वर दीपक, तिमिर हरन धरि आगे
नेह सहित गाऊँ गुन श्रीधर, ज्यों सुबोध उर जागे ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

आगर तगर कृष्णागर तव दिव हरिचन्दन करपूरं
चूर खेय ज्वलन मांहि जिमि, करम जेरें वसु कूरं ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आम्र काम्रक अनार सारफल, भार मिष्ट सुखदाई
सो ले तुम ढिग धरहुँ कृपानिधि, देहु मोच्छ ठकुराई ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुनगाई
बाजत दमदम दम मृदंग गत, नाचत ता थेई थाई ॥परम

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

पूजौं हो अबार, धरम जिनेसुर पूजौं ।टेक
अठैं सित बैशाख की हो, गरभ दिवस अधिकार
जगजन वांछित पूर को, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ल अष्टम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल माघ तेरसि लयो हो, धरम धरम अवतार
सुरपति सुरगिर पूजियो, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं माघशुक्ल त्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

माघशुक्ल तेरस लयो हो, दुर्द्धर तप अविष्कर
सुरऋषि सुमनन तें पूजें, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं माघशुक्ल त्रयोदश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पौषशुक्ल पूनम हने अरि, केवल लहि भवितार
गण-सुर-नरपति पूजिया, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं पौषशुक्ल पूर्णिमायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जेठशुक्ल तिथि चौथ की हो, शिव समेद तें पाय
जगतपूज्यपद पूजहूँ, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्ल चतुर्थ्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

घनाकार करि लोक पट, सकल उदधि मसि तंत
लिखै शारदा कलम गहि, तदपि न तुव गुन अंत

जय धरमनाथ जिन गुनमहान्, तुम पद को मैं नित धरौं ध्यान
जय गरभ जनम तप ज्ञानयुक्त वर मोच्छ सुमंगल शर्मभुक्त
जय चिदानन्द आनन्दकंद, गुनवृन्द सु ध्यावत मुनि अमन्द
तुम जीवनि के बिनु हेतु मित्त, तुम ही हो जग में जिन पवित्त
तुम समवसरण में तत्त्वसार, उपदेश दियो है अति उदार
ता को जे भवि निजहेत चित्त, धारें ते पावें मोच्छवित्त
मैं तुम मुख देखत आज परम, पायो निज आत्मरूप धर्म
मो कों अब भवदधि तें निकार, निरभयपद दीजे परमसार
तुम सम मेरो जग में न कोय, तुमही ते सब विधि काज होय
तुम दया धुरन्धर धीर वीर, मेतो जगजन की सकल पीर

तुम नीतिनिपुन विन रागरोष, शिवमग दरसावतु हो अदोष
तुम्हरे ही नामतने प्रभाव, जगजीव लहें शिव-दिव-सुराव
ता तैं मैं तुमरी शरण आय, यह अरज करतु हौं शीश नाय
भवबाधा मेरी मेट मेट, शिवराधा सों करौं भेंट भेंट
जंजाल जगत को चूर चूर, आनन्द अनूपम पूर पूर
मति देर करो सुनि अरज एव, हे दीनदयाल जिनेश देव
मो कों शरना नहिँ और ठौर, यह निहचै जानो सुगुन मौर
'वृन्दावन' वंदत प्रीति लाय, सब विघन मेट हे धरम-राय

जय श्रीजिनधर्म, शिवहितपर्म, श्रीजिनधर्म उपदेशा
तुम दयाधुरंधर विनतपुरन्दर, कर उरमन्दर परवेशा
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो श्रीपतिपद जुगल, उगल मिथ्यात जजे भव
ता के दुख सब मिटहि, लहे आनन्द समाज सब ॥
सुर-नर-पति-पद भोग, अनुक्रम तैं शिव जावे
ता तैं 'वृन्दावन' यह जानि, धरम-जिन के गुन ध्यावे ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री शांतिनाथ - पूजन

या भव कानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरी हमेरी
आत्म जानन मानन ठानन, बान न होन दर्ई सठ मेरी ॥
तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी
आन गही शरनागत को, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

अर्थ - हे [चतुरानन] भगवन (जिनके चार मुख है) ! इस [भव] संसार रुपी [कानन] जंगल में पाप रुपी [पनानन] (जिस्के पांच मुख होते हैं अर्थात् सिंह) सिंह ने हमे घेर लिया है इसलिए मैं आत्मा को [जानन] नहीं जान (सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति) पाया, [मानन] नहीं मान (सम्यग्दर्शन की प्राप्ति) पाया और [ठानन] नहीं उसमे स्थित (सम्यक्चारित्र की प्राप्ति) हो पाया अर्थात् सिंह रुपी पांच पापों के कारण रत्नत्रय धारण नहीं कर सका! इस [शठ] दुष्ट ने मेरी कोई भी [वान] बात होने नहीं दी; (कल्याण का मार्ग पकड़ने ही नहीं दिया) । [तामद] उसके घमंड को [भानन] नष्ट करने वाले मात्र आप ही हैं यह मैंने भली प्रकार जान लिया कि अन्य कोई है नहीं इसलिए मैं आपकी शरण में [आनन] आकर [टेरी] पुकार लगा रहा हूँ । मैंने आपकी शरण प्राप्त कर ली है, [श्रीपतजी] हे भगवान् अब मेरी [पत] लाज रखना ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमगिरि गतगंगा, धार अभंगा, प्रासुक संग, भरि भृंगा
जर - जनम - मृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदु हिगा ॥

श्री शान्ति जिनेशं, नुतशकेशं, वृषचकेशं चकेशं
हनि अरिचकेशं, हे गुणधेशं, दयाऽमृतेशं, मकेशं ॥

अर्थ - [हिमगिरिगत] हिमवन् पर्वत से निकली हुई गंगा नदी की [अभंगा] निरंतर धारा के बीच से जल लेकर, [संगा] वस्त्र से छान कर, प्रासुक कर [भृंगा] झारी में बुढ़ापे, जन्म और [मृतंगा] मृत्यु और [अघंगा] पापों को नष्ट करने के लिए भरकर आपके [मृदु] कोमल [पदंगा] चरणों की पूजा करता हूँ। हे शान्तिनाथ भगवान् तीर्थकर जिनेन्द्र हैं, [शकेशं] इन्द्रों द्वारा [नुत] वंदित है, [वृषचकेशं] धर्म चक्र के स्वामी हैं, [चकेशं] चक्रवर्ती हैं, अष्टकर्म [अरिचकेशं] शत्रुओं के समूह को अपने नष्ट कर लिया है, [गुणधेशं] गुणों के स्वामी हैं, [दयाऽमृतेशं] दया रूपी अमृत के स्वामी, [मकेशं] कामदेव हैं !

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाथ जलं निर्वपामीति स्वाहा

वर बावन चन्दन, कदली नन्दन, घन आनन्दन सहित घसौं
भवताप निकन्दन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन बसौं ॥श्री

अर्थ - [वर] श्रेष्ठ [बावन] उत्कृष्ट चंदन और [कदली नन्दन] कपूर को [घन] अत्यंत [आनन्दन] आनंद पूर्वक संसार के ताप (दुखों) को [निकन्दन] नष्ट करने के लिए घिसा है, हे । [ऐरानन्दन] ऐरा माता के पुत्र, मैं [अमंदन] तीव्र भक्ति पूर्वक [वंदि] वंदना करता हूँ और आपके चरणों में ठहरा रहूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाथ चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हिमकर करि लज्जत मलय सुसज्जत अच्छत जज्जत भरि थारी
दुखदारिद गज्जत सदपद सज्जत भवभय भज्जत अतिभारी ॥श्री

अर्थ - आपकी [जज्जत] पूजा के लिए भगवान् मैं [हिमकर] चन्द्रमा को लज्जित करने वाले [मलय] चंदन से सुगंधित अक्षत से थाली भरकर, दुःख और दरिद्रता को [गज्जत] नाश करने के लिए लाया हूँ ! आप [सदपदसज्जत] श्रेष्ठपद को सुशोभित करने वाले, संसार के भय को [भज्जत] नष्ट करने वाले [अतिभारी] सर्वश्रेष्ठ है ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मंदार, सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं
भरि कंचनथारी, तुमढिग धारी, मदनविदारी, धीरधरं ॥श्री

अर्थ - मंदार (एक वृक्ष), [सरोज] कमल और [कदली जोजं] केले के फूलों के पुंजों को [मलय] चन्दन से [भरोजं] भरकर सोने की थाली में आपके निकट [मदनविदारी] कामदेव को नष्ट करने के लिए रखता हूँ! आप अत्यंत [धीरधरं] धीरज धारक हो ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाथ पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पक्वान नवीने, पावन कीने षटरस भीने, सुखदाई

मनमोदन हारे, छुधा विदारे, आगे धारे गुनगाई ॥श्री

अर्थ - ताज़े पकवान्, पवित्रता से बनाये हुए, षटरस से डूबे हुए सुखदायक, वित्त को प्रसन्न करने वाले, भूख का नाश करने वाले हैं, इनको आपके आगे आपके गुणों को गाते हुए रख रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेय विकासे सुखरासे
दीपक उजियारा, यातें धारा, मोह निवारा, निज भासे ॥श्री

अर्थ - भगवान् आप ज्ञान के प्रकाशक, मिथ्यात्व रूपी अन्धकार के नाशक, ज्ञेय पदार्थों के प्रकाशक, सुख के समूह हैं । मैंने यहाँ उजियारे दीपक को मोहकर्म के नाश और अपनी आत्मा के दर्शन के लिए रखा है ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

चन्दन करपूरं करि वर चूरं, पावक भूरं माहि जुरं
तसु धूम उड़वे, नाचत जावे, अलि गुंजावे मधुर सुरं ॥श्री

अर्थ - चंदन और कपूर का चूर्ण बनाकर बहुत सारी अग्नि में मैं जलाता हूँ । उसका धुँआ उड़ रहा है ऐसा लग रहा है जैसे नृत्य कर रहा हो और इसकी खुशबु से भँवर गुंजनकर मधुर स्वर कर रहे हो, ऐसे धुप से आपकी मैं पूजा करता हूँ !

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निबुक भूरं ले आयो
ता सों पद जज्जौं, शिवफल सज्जौं, निजरस रज्जौं उमगायो ॥श्री

अर्थ - बादाम, खजूर, अनार और नींबू भरे हुए लाया हूँ । उनसे आपके चरणों की पूजा के लिए उत्साहपूर्वक मोक्षफल और आत्मसुख की प्राप्ति के लिए करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी, दृग-प्यारी
तुम हो भव तारी, करुणाधारी, या तें थारी शरनारी ॥श्री

अर्थ - आनंदकारी और नेत्रों को अच्छे लगने वाले, आठों द्रव्यों को संवार कर आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ! आप संसार से पार कराने वाले हैं, करुणाधारक हो, इसलिए आपकी शरण में आया हूँ । हे शान्तिनाथ भगवान् आप जिनेन्द्र, इन्द्रों द्वारा वंदित, धर्म चक्र के स्वामी, चक्रवर्ती, अष्टकर्म शत्रुओं के समूह को आपने नष्ट कर लिया है, गुणों के स्वामी हैं, दया रूपी अमृत के स्वामी, कामदेव हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

असित सातँय भादव जानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये

सचि कियो जननी पद चर्वनं, हम करें इत ये पद अर्चनं ॥

अर्थ - भादों वदी सप्तमी को भगवान् गर्भ में पधारे थे, आपका गर्भ कल्याणक मनाया था । (शचि) इंद्राणी ने माता के चरणों की पूजा करी थी, हम आपके चरणों की यहाँ पर पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णा सप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम है
गजपुरै गज-साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजिहों अबै ॥

अर्थ - आपका जन्म जेठ कृष्ण चतुर्दशी को हुआ था । सभी इंद्र आपके स्थान पर आये थे । हस्तिनापुर में ऐरावत हाथी को सजा कर तब सभी ने आपको समेरु पर्वत के पांडुक वन में ले जा कर आपकी पूजा करी थी मैं यहाँ आपकी पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यं जन्ममंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं
भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी, धरम हेत जजौं गुन पावनी ॥

अर्थ - संसार, शरीर और भोग असार हैं विचारकर आपने कृष्ण जेठ चतुर्दशी को तप धारण किया था । उस रत्नत्रय गुणों की प्राप्ति के लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यं तपोमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्लपौष दशैं सुखरास है, परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है
भवसमुद्र उधारन देव की, हम करें नित मंगल सेवकी ॥

अर्थ - पौष शुक्ल दशमी सुखदायक है क्योंकि इस दिन आपको केवलज्ञान का श्रेष्ठ प्रकाश प्राप्त हुआ था । संसार पार करने वाले आप देव की हम नित्य मंगल सेवा करते हैं ।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित चौदशि जेठ हने अरी, गिरि समेदथकी शिव-तिय वरी
सकल इन्द्र जजैं तित आय के, हम जजैं इत मस्तक नाय के ॥

अर्थ - जेठ वदी चतुर्दशी को आपने शेष अघातिया कर्मों को नष्ट कर सम्मैद शिखर जी पर मोक्ष लक्ष्मी का वरन किया था । सब इन्द्रों ने वहाँ आकर आपकी पूजा करी थी । हम मस्तक नवा कर आपकी यहाँ पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यं मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा
मैं तिन्हें भगत मंडिते सदा, पूजिहौं कलषु हंडिते सदा ॥

अर्थ - शांति नाथ भगवान् आप शांति देने वाले गुण से मंडित हैं, आपको बड़े बड़े पंडित निरंतर ध्याते हैं । मैं उन शांतिनाथ भगवान् को सदा भक्ति पूर्वक पूजता हूँ जो कि सदा [कलषु हंडिते] पापों का नाश करने वाले हैं ।

मोच्छ हेतुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन रत्न माल हो
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरौं, ध्यावते तुरत मुक्ति-तिय वरौं ॥

अर्थ - मोक्ष के कारण मैं आप ही दयालु है, (आपकी कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है) । हे जिनेन्द्र भगवान् आप गुण रुपी रत्नों की [दाम] माला हैं । मैं अब आपके अच्छे गुणों की माला को कहता हूँ जिनके ध्याने से ही तुरंत मोक्ष रुपी स्त्री प्राप्त होती है ।

जय शान्तिनाथ चिद्रुपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज
तुम तजि सरवारथसिद्धि थान, सरवारथजुत गजपुर महान ॥

अर्थ - शांति नाथ भगवान् आपने [चिद्रुपराज] आत्मा के सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लिया है आप की जय हो । आप संसार को पार करने वाले अद्भुत जहाज है । आप सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर, जहाँ सारे कार्यो कि सिद्धि होती है, ऐसे महान हस्तिनापुर में आप पधारे / जन्म हुआ था ।

तित जनम लियो अनन्द धार, हरि ततछिन अयो राजद्वार
इन्द्रनी जाय प्रसूति थान, तुम को कर में ले हरष मान ॥

अर्थ - वहाँ आपने आनंद पूर्वक जन्म लिया था उसी क्षण इंद्र आपके राज्य के द्वार पर आये थे । इंद्राणी प्रसूति स्थान पर गई थी और उसने आप को अपने हाथों में हर्ष पूर्वक उठाया था ।

हरि गोद देय सौ मोदधार, सिर चमर अमर ढारत अपार
गिरिराज जाय तित शिला पांडु, ता पे थाप्यो अभिषेक माँड ॥

अर्थ - उसने आपको इंद्र की गोद में दिया । वह आपके सिर पर चमर ढारने लगे । उन्होंने आपको समेरुपर्वत पर पांडुकशिला पर ले जाकर विराजमान किया और अभिषेक सम्पन्न किया ।

तित पंचम उदधि तनों सुवार, सुर कर कर करि ल्याये उदार
तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सिर धारा ढारयो समुन्द ॥

अर्थ - वहाँ पंचम समुद्र, क्षीरसागर तक देवो ने पंक्ति लगाकर वहाँ से हाथों में जल लाये, इंद्र ने अपने एक हजार हाथ बनाकर आपके सिर पर क्षीर सागर के जल की धारा दे कर आनंद मनाया ।

अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर
दमदम दमदम बाजत मृदंग, इन नन नन नन नन नूपुरंग ॥

अर्थ - कलशों को ढोते हुए सभी इंद्र/देवो के नृत्य करने से अघ घघ की ध्वनि से घोर शोर हो रहा था, कलशों को उठाने रखने से भभभभ भभ धध धध का शोर हो रहा था । ढोल के बजने से दमदम दमदम और नूपुर के बजने से इन नन नन नन नन की आवाज़ आ रही थी । अर्थात् सारा वातावरण मंगलमय हो रहा था !

तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहि भाल ॥

अर्थ - कोई तानपुरा बजा रहा था उससे तन नन नन नन नन और कोई घंटा बजा रहा था उससे घन नन नन आवाज़ आ रही थी । कोई तबले की थाप पर ताथेई थेई थेई थेई आवाज़ कर रहे थे । सभी नृत्य करते हुए अपना मस्तक आपके समक्ष झुका रहे थे ।

चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट थट विराट
इमि नाचत राचत भगति रंग, सुर लेत जहाँ आनन्द संग ॥

अर्थ - जो नाच रहे थे उनकी तरह तरह की आवाज़ चट चट चट अटपट, झट झट झट हट नट थट आ रही थी सभी [विराट] सुन्दर देवी देवता इधर उधर भागने दौड़ने, भक्ति रंग में रचे नृत्य आदि करने में लगे हुए थे और देवता लोग आपके अभिषेक स्थल, (समेरुपर्वत के पांडुकवन) में खूब आनंद ले रहे थे

इत्यादि अतुल मंगल सु ठाठ, तित बन्यो जहाँ सुर गिरि विराट
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौप्यो तुम तित वृद्ध थाय ॥

अर्थ - इत्यादि मंगल अतुल्य ठाठ के साथ आप वहाँ देवताओं से भी अधिक सुन्दर, पर्वत के समान विराट हुए । फिर आपके पिता के घर आकर, नियोग कर इंद्र ने आपको उनके सुपर्द कर अपने घर चले गये ।

पुनि राजमाहि लहि चक्ररत्न, भोग्यो छहखण्ड करि धरम जत्त
पुनि तप धरि केवल रिद्धि पाय, भवि जीवनि को शिवमग बताय ॥

अर्थ - फिर आपने राज्य में लीन रहते हुए चक्ररत्न की प्राप्ति कर छह खण्डों के सुख भोगते हुए भी धर्म का यत्न किया फिर तप धारण कर के आपने केवल ज्ञान ऋद्धि प्राप्त कर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बताया ।

शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश, गुणमंडित अतुल अनन्त भेष
मैं ध्यावतु हूँ नित शीश नाय, हमरी भवबाधा हर जिनाय ॥

अर्थ - आप जिनेन्द्र देव अनंत गुणों से मंडित और अतुल्य अनंत स्वरूप सहित मोक्ष पथारे । मैं आपको नित्य शीश झुका कर ध्याता हूँ हे जिनेन्द्र भगवान् हमारी भव बाधा को दूर कीजिये ।

सेवक अपनो निज जान जान, करुणा करि भौभय भान भान
यह विघन मूल तरु खंड खंड, चितचिन्तित आनन्द मंड मंड ॥

अर्थ - हे भगवन मुझे अपना सेवक जानकार, करुणा कर के, संसार के भय को दूर कर दीजिये । विघनों का इस वृक्ष को खंडित कर दीजिये । भगवान् मैं आपको हृदय में आनंदपूर्वक धारण करता हूँ और आप से प्रार्थना करता हूँ ।

छन्दः- श्रीशान्ति महंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवंता
भव भ्रमन हनन्ता, सौख्य अनन्ता, दातारं, तारनवन्ता ॥

अर्थ - हे श्री शान्तिनाथ, आप [महंता] महान्, [शिवतियकंता] मोक्ष रूपी स्त्री के पति, अनंत सुगुणों युक्त, [भगवंता] भगवान्, संसार के भ्रमण को नष्ट कर, अनंतसुख धारक हैं और [तारन वन्ता] संसार से पार करने वाली शक्ति को [दातारं] प्रदान करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वहा

शान्तिनाथ जिन के पदपंकज, जो भवि पूजें मन वच काय
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजि के जायं पलाय ॥
मनवांछित सुख पावे सो नर, बांचे भगतिभाव अति लाय
ता तें 'वृन्दावन' नित वंदे, जा तें शिवपुरराज कराय ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीशान्तिनाथपूजन

(श्री बख्तवर सिंह कृत)

सर्वार्थ सुविमान त्याग गजपुर में आये
विश्वसेन भूपाल तासु के नन्द कहाये ॥
पंचम चक्री भय मदन द्वादश में राजे
मैं सेवूं तुम चारण तिष्ठायें ज्यों दुःख भाजे ॥

अर्थ - आप सर्वार्थसिद्धि विमान को छोड़कर [गजपुर] हस्तिनापुर में पधारे थे, विश्वसेन [भूपाल] राजा के [नन्द] पुत्र कहलाये थे ।

आप पांचवें चक्रवर्ती हुए और [द्वादश] बारहवें [मदन] कामदेव हुए । मैं आपके चरणों की सेवा करता हूँ, आप मेरे हृदय में पधारिये जिससे मेरे समस्त सांसारिक दुःख [भाजे] दूर हो जाए ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननं)

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनं)

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधि करणं)

पंचम उदधि तनो जल निर्मल कंचन कलश भरे हरषाय
धार देत ही श्री जिन सन्मुख जन्मजरामृत दूर भगाय ॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद्र जाय ॥

अर्थ - [पंचम उदधि] क्षीर सागर [तनो] के निर्मल जल को सोने के कलश में लेकर, अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक श्री जी के सम्मुख धार देने से जन्म, जरा और मृत्यु नष्ट हो जाते हैं । शांतिनाथ भगवान्, आपने पांचवें चक्रवर्ती, बारहवें कामदेव का पद पाया ।

आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख और दारिद्रता नष्ट हो जाते हैं ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलियागिरि चंदन कदलीनंदन कुंकुम जल के संग घसाय
भव अताप विनाशन कारण चरचूं चरण सबै सुखदाय ॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद्र जाय ॥

अर्थ - मैं मलियागिरि का उत्कृष्ट चंदन, [कदली नंदन] कपूर, कुंकुम को जल के साथ घिसकर, भव भव के समस्त दुखों को नष्ट करने के लिए लेकर आपके चरणों की पूजा करता हूँ जो कि सब सुख देने वाली है शांतिनाथ भगवान् जी आप पांचवें चक्रवर्ती, बारहवें कामदेव का पद पाया था । आप के चरण कमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख और दारिद्रता नष्ट हो जाते हैं

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यराशि सम उज्ज्वल अक्षत शशिमारीचि तसु देख लजाय
पुंज किये तुम चरणन आगे अक्षय पद के हेतु बनाये ॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद्र जाय ॥

अर्थ - मैं, पुण्यराशि के समान स्वच्छ अक्षत के पुंजों को जिन्हें देख कर [शशिमारीचि] चंद्रमा की किरणें भी लज्जित हो जाती हैं, मोक्ष पद की प्राप्ति के लिए, आपके चरणों के समक्ष अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्ते अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुर पुनीत अथवा अवनी के कुसुम मनोहर लिय मंगाये
भेंट धरत तुम चरणन के ढिग ततक्षिन कामबाण नस जाय ॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये

तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अर्थ - मैं [सुर] देवों द्वारा लाये गये [पुनीत] पवित्र (कल्पवृक्ष के) अथवा [अवनी] पृथ्वी/मध्यलोक के मनोहर [कुसुम] पुष्प को मंगाकर आप के चरणों के समक्ष अर्पित कर रहा हूँ जिससे तुरंत काम-वासना नष्ट हो जाए ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

भाँति भाँति के सद्य मनोहर कीने मैं पकवान संवार
भर थारी तुम सम्मुख लायो क्षुधा वेदनी वेग निवार ॥

शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अर्थ - मैं क्षुधा की वेदना को [वेग] शीघ्रता से निवारण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के, [सद्य] ताज़े मनोहर पकवान संवारकर, थाली में रखकर आपके सम्मुख अर्पित करने के लिए लाया हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा

घृत सनेह करपूर लाय कर दीपक ताके धरे परजार
जगमग जोत होत मंदिर में मोह अंध को देत सुटार ॥

शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अर्थ - [सनेह] चिकने घी और कपूर से [परजार] प्रज्वलित करके दीपक आपके सम्मुख अर्पित करता हूँ जिससे मंदिर जी में जग मग ज्योति होती है और मोहरूपी अन्धकार [सुटार] पूर्णतया दूर हो जाता है

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

देवदारु कृष्णागरु चंदन ,तगर कपूर सुगंध अपार
खेऊँ अष्ट करम जारन को धूप धनंजय माहि सुडार ॥

शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अर्थ - [देवदारु] देवदार की लकड़ी, चंदन और कपूर मिलाकर अत्यंत सुगंधित धुप बनाकर, अष्टकर्मों के [जारन] नष्ट के लिए खेता हूँ । मेरे कर्मों को नष्ट करने की कृपा करे

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

नारंगी बादाम सुकेला एला दाड़िम फल सहकार
कंचन थाल माहि धर लायो अरचत ही पाऊँ शिवनार ॥

शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अर्थ - [माहि] मैं नारंगी, बादाम, केला, [एला] इलाइची, [दाड़िम] अनार, [सहकार] आम आदि फलों को सोने के थाल में भरकर आपकी पूजा करने के लिए लाया हूँ जिससे [शिवनार] मोक्ष लक्ष्मी प्राप्ति हो

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि वसु द्रव्य संवारे अर्घ चढाये मंगल गाये
'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराये ॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अर्थ - जल फल आदि आठों द्रव्य को [संवारे] मिलाकर मंगल गान करते हुए आपको अर्घ्य अर्पित करता हूँ । बख्तवर कवि कहते हैं कि आप ही हमारे [साहिब] स्वामी हो हमें [अनर्घ] मोक्ष [राज्य] दिलवा दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

(पंच कल्याणक)

भादव सप्तमि श्यामा, सर्वार्थ त्याग नागपुर आये
माता ऐरा नाम, मैं पूजूं ध्याऊँ अर्घ शुभ लाये ॥

भावार्थ - आप सर्वार्थसिद्धि त्यागकर भादव [श्यामा] कृष्ण सप्तमी को माता ऐरा के उदर में, [नागपुर] हस्तिनापुर में पथारे में आपकी पूजा और ध्यान कर शुभ अर्घ आपके समक्ष समर्पित करता हूँ

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय भाद्रपद कृष्ण सप्तम्यां गर्भकल्याणक प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

जन्मे तिरथ नाथं, वर जेठ असित चतुर्दशि सो है
हरि गण नावें माथं, मैं पूजूं शांति चरण युग जो है ॥

अर्थ - तीर्थकर नाथ का जन्म [वर] श्रेष्ठ ज्येष्ठ [असित] कृष्ण चतुर्दशी को हुआ । [हरि-गण] देव और इंद्र ने भगवान् को [नावें] नमस्कार किया । मैं भी शांति नाथ भगवान् के दोनों चरणों की पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दश्यां जन्मकल्याणक प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

चौदस जेठ अँधियारी, कानन में जाय योग प्रभु लीन्हा
नवनिधि रत्न सुछारी, मैं बंदू आत्मसार जिन चीन्हा ॥

अर्थ - भगवान् ने ज्येष्ठ वदी चतुर्दशी को [कानन] जंगल में जाकर [योग] दीक्षा [लीन्हा] धारण करी । उन्होंने नवनिधियों, रत्नों चक्रवर्ती पद को भी [सुछारी] त्याग दिया । मैं ऐसे शांतिनाथ भगवान् की वंदना करता हूँ जिन्होंने [आत्मसार] आत्मा की श्रेष्ठता को [चीन्हा] पहिचान लिया है

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दश्यां तपकल्याणक प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

पौष दसे उजियारा, अरि घाति ज्ञान भानु जिन पाया
प्रातिहार्य वसुधारा, मैं सेऊँ सुर नर जासु यश गाया ॥

अर्थ - पौष [उजियारा] शुक्ल दशमी को भगवान् ने [अरि] कर्मशत्रु का घात कर/चार घातिया कर्मों को नष्ट कर अपने, ज्ञान रूपी सूर्य का उदय किया अर्थात् उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ । केवल ज्ञान प्राप्त होते ही उनको अष्ट प्रातिहार्य प्राप्त हुए, देवों और मनुष्यों ने भी उनके यशगान किया है; ऐसे भगवान् शांतिनाथ भगवान् की मैं सेवा/पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय पौष शुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणक प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

सम्मद शैल भारी, हनकर अघाति मोक्ष जिन पाई जेठ चतुर्दिशकार, मैं पूजूं सिद्धथान सुखदाई ॥

अर्थ - सम्मदशिखर पर्वत पर अघातीकर्मों को [हंकार] नष्ट कर जिन्होंने जेठ चतुर्दशी [कारी] वदी (कृष्ण) को मोक्ष प्राप्त किया, मैं भगवान् के सुखदायी [सिद्धथान] निर्वाण-क्षेत्र की पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दश्यं मोक्ष कल्याणक प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

(जयमाला)

भये आप जिनदेव जगत में सुख विस्तारे
तारे भव्य अनेक तिन्हों के संकट टारे ॥
टारे आठों कर्म मोक्ष सुख तिनको भारी
भारी विरद निहार लही मैं शरण तिहारी ॥

अर्थ - आप जिनेन्द्र भगवान् हो गए हैं, आपने जगत में सुख का विस्तार किया है, अनेक भव्य जीवों को संसार से पार लगाकर उनके संकट दूर किये हैं। आपने आठों कर्मों को नष्ट कर उनको भी मोक्ष सुख प्राप्त कराया है आप के (विरद) यश को (निहार) देखकर मैं आपकी शरण में आया हूँ (मुझे भी पार लगा दीजिये)

तिहारे चरणन को नमूं दुःख दारिद संताप हर
हर सकल कर्म छिन एक में, शान्ति जिनेश्वर शान्ति कर ॥

अर्थ - मैं आपके चरणों को नमन करता हूँ मेरे दुःख, दरिद्रता और संताप को हर लीजिये। एक क्षण (छिन) में मेरे (सकल) समस्त कर्मों को हर लीजिये। शान्तिनाथ भगवान् आप शान्ति प्रदान करें

सारंग लक्षण चरण में, उन्नत धनु चालीस
हाटक वर्ण शरीर द्युति, नमूं शान्ति जग ईश ॥

अर्थ - आपके चरण में (सारंग) हिरन का (लक्षण) चिन्ह है, ऊंचाई ४० धनुष, (हाटक) स्वर्णमयी शरीर की कौंति थी, हे जगत के स्वामी शान्ति नाथ भगवान् मैं आपको नमस्कार करता हूँ

प्रभो आपने सर्व के फंद तोड़े, गिनाऊं कछू मैं तिनों नाम थोड़े
पड़ो अम्बु के बीच श्रीपाल राई, जपों नाम तेरो भए थे सहाई ॥

अर्थ - प्रभु आपने बहुत लोगों के फंदे तोड़े हैं, अर्थात् उन्हें मुक्ति दिलाई है उनमें से कुछ के नाम मैं गिनाता हूँ। जब श्रीपाल (राई) राजा (अम्बु) समुद्र के बीच में गिर गया था तब उसने आप का नाम जपा था तब आपने उन की सहायता करी थी। **कथा** - मैना-सुंदरी कथा में, मैना सुंदरी के पति श्रीपाल, को धवल सेठ ने मायाचारी से धक्का देकर समुद्र में फिक्का दिया था तब श्रीपाल, भगवान् के नाम की माला जपते जपते समुद्र से पार लग गए थे

धरो राय ने सेठ को सूलिका पै, जपी आपके नाम की सार जपै
भये थे सहाई तबै देव अये, करी फूल वर्षा सिंहासन बनाये ॥

अर्थ - (राय) राजा ने सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़ा दिया था, उन्होंने आपके नाम की (सार) श्रेष्ठ जाप जपी थी तब देवों ने आकर उनकी फूलों की वर्षा कर तथा सिंहासन बनाकर, उस पर उन्हें बैठा कर, सम्मान कर (सहाई) सहायता करी थी

जबै लाख के धाम वहि प्रजारी, भयो पांडवों पै महा कष्ट भारी

जबै नाम तेरे तनी टेर कीनी, करी थी विदुर ने वही राह दीनी ॥

अर्थ - पांडवों के लाख के [धाम] घर में [वह्नि] आग [प्रजारी] लगाने से, उन पर महान कष्ट आया था जब उन्होंने आपका नाम लेकर आपको [टेर] पुकारा था तब विदुर ने उन्हें रास्ता बता दिया था

हरी द्रोपदी घातकी खंड माहीं, तुम्हीं वहाँ सही भला ओर नाहीं
लियो नाम तेरो भलो शील पालो, बचाई तहाँ ते सबै दुःख टालो ॥

अर्थ - द्रोपदी को घातकी खंड में हर लिया गया था वहाँ अन्य कोई नहीं था, आप ही तो सहारा थे उसने । आपका नाम लेकर शील का पालन किया, आपने उसकी वहाँ रक्षा कर उसके सभी दुःख को दूर किया । कथा - एक बार द्रोपदी के महल में नारद के आने पर उसने उनको देख कर नाक मुँह सिकोड़ा था, जिससे नारद ने अपने को अपमानित महसूस किया । तब नारद ने घातकी खंड के राजा पद्मनाभ को जाके द्रोपदी का चित्र दिखाया पद्मनाभ ने अपनी विद्या को भेजकर द्रोपदी को अपने पास घातकी खंड में बुलवा लिया जिससे यहाँ तो हाहाकार मच गया और वहाँ द्रोपदी ने विचार किया मैं यहाँ कैसे आ गयी, तब उसने आपका नाम लिया जिससे उस का सारा संकट दूर हो गया, अर्जुन वहाँ पहुंचकर द्रोपदी को वापिस ले आये

जबै जानकी राम ने जो निकारी, धरे गर्म को भार उद्यान डारी
रटो नाम तेरो भलो सबै सौख्यदाई, करी दुर पीड़ा सु क्षण न लगाई ॥

अर्थ - जब राम जी ने गर्भावस्था में, (जानकी) सीता को निकाल कर (उद्यान) जंगल में छुड़वा दिया था तब उसने आपका नाम लिया था जिससे आपने उनकी पीड़ा को दूर करने में देर नहीं लगाई, उनकी पीड़ा क्षण भर में समाप्त हो गयी

व्यसन सात सेवें करें तस्कराई सुअंजन से तारे घड़ी न लगाई
सहे अंजना चंदना दुःख जेते, गये भाग सारे जरा नाम लेते ॥

अर्थ - अंजन चोर सप्त व्यसन का सेवन करता था, [तस्कराई] चोरी करता था, किन्तु जब उसने इन सब का त्याग कर आपको चित्त में धारण किया तब आपको उसे संसार से पार लगाने में एक घड़ी भी नहीं लगी । अंजना और चंदना भी कितने कितने दुःख भोगे, वे आपका नाम लेते ही दूर हो गये । नोट - अंजना जी हनुमान जी की माता जी थी, चंदना जी भगवान् महावीर (की मौसी) ने उन्हें आहार दिया था

घड़े बीच में सास ने नाग डारो, भलो नाम तेरो जु सोम संभारो
गई काढ़ने को भई फूलमाला, भई है विख्यातं सबै दुःख टाला ॥

अर्थ - सास ने एक घड़े में साप डाल दिया था, सोमसती ने आपका नाम भली प्रकार लिया था । घड़े में से उसे निकालने के लिए जब गई तो वह फूल माला बन गया, जिससे उसके शील की सब जगह प्रशंसा हुई । भगवन आपने उसके सारे दुखों को दूर कर दिया । नोट - सोम नाम की सती थी जिसके चरित्र पर दोष लगाया गया था

इन्हे अदि देके कहाँ लो बखानें, सुनों विरद भारी तिहँ लोक जाने
अजी नाथ मेरी जरा और हेरो, बड़ी नाव तेरी रती बोझ मेरो ॥

अर्थ - इनका मैं बखान कहाँ तक करूँ, आपका यश तो बड़ा भारी है । तीनों लोक में हर जीव जानता है । हे नाथ भगवन ! मेरी ओर [रती] जरा [हेरो] देख लीजिये, आपकी नाव बहुत बड़ी है मेरा तो भार थोड़ा सा ही है, (मैं भी उस में बैठ कर पार हो जाऊँ)

गहो हाथ स्वामी करो वेग पारा, कहूँ क्या अबै आपनी मैं पुकारा
सबै ज्ञान के बीच भासी तुम्हारे, करो देर नाहीं मेरे शांति प्यारे ॥

अर्थ - भक्त भगवान् से विनती करते हुए कह रहा है, भगवन आप मेरा हाथ [गहो] पकड़ कर [वेग] जल्दी से पार लगा दीजिये अब आपसे और क्या कहूँ, मैं तो अपनी (पुकारा) विनती आपके सामने कर रहा हूँ आपके ज्ञान के बीच मैं सब [भासी] प्रकाशमान है, (आपसे मैं अपने भूत और वर्तमान के दुखों के विषय में क्या कहूँ आपको सब पता है) केवल ज्ञानी हैं, मेरे शांति नाथ प्रभु अब और देर मत कीजिये, अनंत काल से मैं भटकता रहा, अन्य देवों भगवानों के चक्कर में भटकता रहा जो कि गलत था, अब मैं सही जगह आ गया हूँ, जल्दी से संसार से मुझे निकाल लीजिये

श्री शान्ति तुम्हारी, कीरत भारी, सुर नरनारी गुणमाला

बख्तर ध्यावे, रतन सुगावे, मम दुःख दारिद सब टाला ॥

अर्थ - शांतिनाथ भगवान् आपका यश तीनों लोक में बहुत फैला हुआ है । देवता हो, मनुष्य स्त्री आदि सभी आपके गुणों की माला को धारण करते हैं अर्थात् निरंतर आपका गुणगान करते हैं । बख्तर कवि कहते हैं कि जो आपका ध्यान करता है और आपके गुणों का गान करता है वे सब पार होते हैं । मैंने भी आपके गुणों का गान किया है मेरे भी दुःख और दरिद्रता को दूर कीजिये

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये महार्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥

अजी एरा नन्दन छबि लखत ही आप अरणं
धैरे लज्जा भारी करत श्रुति सो लाग चरणं ॥
कैरे सेवा सोई लहत सुख सो सार क्षण में
घने दीना तारे हम चहत हैं बास तिन में ॥

अर्थ - मैंने [श्रुति] सुना है कि एरा देवी के पुत्र, आपकी छवि देखते ही [अरणं] सूर्य भी अत्यंत लज्जित हो जाता है, सूर्य समझता था कि [घने] सर्वाधिक प्रकाशमान आभा उसके पास ही है किन्तु भगवान की आभा तो करोड़ों सूर्य के प्रकाश से भी [सार] अधिक है इसलिए मैं आपकी शरण में आ गया हूँ । भगवान् जी, जो आपकी सेवा/भक्ति में लगते हैं वे श्रेष्ठ सुखों को क्षण में प्राप्त कर लेते हैं आपने तो बहुतों को पार लगा दिया है हम चाहते हैं कि हमारा भी वास उनमें हो जाए

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

श्री कुंथुनाथ - पूजन

अज अंक अजै पद राजै निशंक, हरे भवशंक निशंकित दाता
मदमत्त मतंग के माथे गँथे, मतवाले तिन्हें हने ज्यें अरिहाता ॥
गजनागपुरे लियो जन्म जिन्हौं, रवि के प्रभु नंदन श्रीमति-माता
सो कुंथु सुकंथुनि के प्रतिपालक, थापौं तिन्हें जुतभक्ति विख्याता ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥
प्रभु सुन अरज दासकेरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
जगजाल पर्यो हौं वेगि निकारो बांह पकर मेरी टेक
सुरसरिता को उज्ज्वल जल भरि, कनकभृंग भेरी
मिथ्यातृषा निवारन कारन, धरौं धार नेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावन चंदन कदलीनंदन, घसिकर गुन टेरी
तपत मोह नाशन के कारन, धरौं चरन नेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ताफलसम उज्ज्वल अक्षत, सहित मलय लेरी
पुंज धरौं तुम चरनन आगे अख्य सुपद देरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेला दौना, सुमन सुमनसेरी
समरशूल निरमूल हेत प्रभु, भेंट करौं तेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर मोदन मोदक, मृदु उत्तम पेरी
ता सों चरन जजौं करुनानिधि, हरो छुधा मेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कंचन दीपमई वर दीपक, ललित जोति घेरी
सो ले चरन जजौं भ्रम तम रवि, निज सुबोध देरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

देवदारु हरि अगर तगर करि चूर अग्नि खेरी
अष्ट करम ततकाल जरे ज्यें, धूम धनंजेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

लौंग लायची पिस्ता केला, कमरख शुचि लेरी
मोक्ष महाफल चाखन कारन, जजौं सुकरि ढेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी
फलजुत जनन करौं मन सुख धरि, हरो जगत फेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुसावन की दशमी कलि जान, तज्यो सरवारथसिद्ध विमान
भयो गरभागम मंगल सार, जजें हम श्री पद अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णादशम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

महा बैशाख सु एकम शुद्ध, भयो तब जनम तिज्ञान समृद्ध
कियो हरि मंगल मंदिर शीस, जजें हम अत्र तुम्हें नुतशीश ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तज्यो षटखंड विभौ जिनचंद, विमोहित चित्त चितार सुछंद
धरे तप एकम शुद्ध विशाख, सुमग्न भये निज आनंद चाख ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुदी तिय चैत सु चेतन शक्त, चहूं अरि छयकरि तादिन व्यक्त
भई समवसृत भाखि सुधर्म, जजौ पद ज्यें पद पाइय पर्म ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लतृतीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुदी वैशाख सु एकम नाम, लियो तिहि द्यौस अभय शिवधाम
जजे हरि हर्षित मंगल गाय, समर्चतु हौं तुहि मन-वच-काय ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

षट खंडन के शत्रु राजपद में हने, धरि दीक्षा षटखंडन पाप तिन्हें देने ॥
त्यागि सुदर्शन चक्र धर्म चक्री भये, कर्मचक्र चकचूर सिद्ध दिढ़ गढ़ लये ॥
ऐसे कुंथु जिनेश तने पद पद्म को, गुन अनंत भंडार महा सुख सद्म को ॥
पूजौ अरघ चढ़ाय पुरणानंद हो, चिदानंद अभिनंद इन्द्र-गन-वंद हो ॥

जय जय जय जय श्रीकुंथुदेव, तुम ही ब्रह्मा हरि त्रिबुकेव
जय बुद्धि विदाँवर विष्णु ईश, जय रमाकांत शिवलोक शीश ॥
जय दया धुरंधर सृष्टिपाल, जय जय जगबंधु सुगनमाल
सरवारथसिद्धि विमान छार, उपजे गजपुर में गुन अपार ॥
सुरराज कियो गिर न्हौन जाय, आनंद-सहित जुत-भगति भाय
पुनि पिता सौंपि करमुदितअंग, हरितांडव-निरत कियो अभंग ॥
पुनि स्वर्ग गयो तुम इत दयाल, वय पाय मनोहर प्रजापाल
षटखंड विभौ भोग्यो समस्त, फिर त्याग जोग धार्यो निरस्त ॥
तब घाति केवल उपाय, उपदेश दियो सब हित जिनाय
जा के जानत भ्रम-तम विलाय, सम्यक् दर्शन निर्मल लहाय ॥
तुम धन्य देव किरपा-निधान, अज्ञान-क्षमा-तमहरन भान
जय स्वच्छ गुनाकर शुक्त सुक्त, जयस्वच्छ सुखामृत भुक्तिमुक्त ॥

जय भौभयभंजन कृत्यकृत्य, मैं तुमरो हौं निज भृत्य भृत्य
प्रभु असरन शरन आधार धार, मम विघ्न-तुलगिरि जारजार ॥
जय कुनय यामिनी सूर सूर, जय मन वाँछित सुख पूर पूर
मम करमबंध दिढ़ चूर चूर, निजसम आनंद दे भूर भूर ॥
अथवा जब लों शिव लहौं नाहि, तब लों ये तो नित ही लहाहि
भव भव श्रावक-कुल जनमसार, भवभव सतमति सतसंग धार ॥
भव भव निजआम-तत्व ज्ञान, भव-भव तपसंयमशील दान
भव-भव अनुभव नित चिदानंद, भव-भव तुमआगम हे जिनंद ॥
भव-भव समाधिजुत मरन सार, भव-भव व्रत चाहौं अनागार
यह मो कों हे करुणा निधान, सब जोग मिले आगम प्रमान ॥
जब लों शिव सम्पति लहौं नाहि, तबलों मैं इनको लहाँहि
यह अरज हिये अवधारि नाथ, भवसंकट हरि कीजे सनाथ ॥

जय दीनदयाला, वरगुनमाला, विरदविशाला सुख आला
मैं पूजौं ध्यावौं शीश नमावौं, देहु अचल पद की चाला
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कुंथु जिनेसुर पाद पदम जो प्रानी ध्यावें
अलिसम कर अनुराग, सहज सो निज निधि पावें ॥
जो बांचे सरधहें, करें अनुमोदन पूजा
'वृन्दावन' तिह पुरुष सदृश, सुखिया नहि दूजा ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री अरहनाथ - पूजन

तप तुरंग असवार धार, तारन विवेक कर
ध्यान शुक्ल असिधार शुद्ध सुविचार सुखतर ॥
भावन सेना, धर्म दशों सेनापति थापे
रतन तीन धरि सकति, मंत्रि अनुभो निरमापे ॥
सत्तातल सोहं सुभटि धुनि, त्याग केतु शत अग्र धरि
इहविध समाज सज राज को, अर जिन जीते कर्म अरि ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कनमनिमय झारी, दृग सुखकारी, सुर सरितारी नीर भरी
मुनिमन सम उज्ज्वल जनम जरादल, सो ले पदतल धार करी ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भवताप नशावन, विरद सुपावन, सुनि मन भावन, मोद भयो
तातैं घसि बावन, चंदनपावन, तुमहि चढ़ावन, उमगि अयो ॥प्रभु

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अनियारे, श्वेत सँवारे, शशिदुति टारे, थार भरे
पद अख्य सुदाता, जगविख्याता, लखि भक्ताता पुंजधरे ॥प्रभु

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु के शोभित, सुरन मनोभित, सुमन अछोभित ले आयो
मनमथ के छेदन, आप अवेदन, लखि निरवेदन गुन गायो ॥प्रभु

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज सज भक्षक प्रासुक अक्षक, पक्षक रक्षक स्वक्ष धरी
तुम करम निकक्षक, भस्म कलक्षक, दक्षक पक्षक रक्ष करी ॥प्रभु

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुम भ्रमतम भंजन मुनिमन कंजन, रंजन गंजन मोह निशा
रवि केवलस्वामी दीप जगामी, तुम ढिग अमी पुण्य दृशा ॥प्रभु

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशधूप सुरंगी गंध अभंगी वह्नि वरंगी माहि हवें
वसुकर्म जरावें धूम उड़ावें, ताँडव भावें नृत्य पवें ॥प्रभु

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रितुफल अतिपावन, नयन सुहावन, रसना भावन, कर लीने

तुम विघन विदारक, शिवफलकारक, भवदधि तारक चरचीने ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

सुचि स्वच्छ पटीरं, गंधगहीरं, तंदुलशीरं, पुष्पचरुं
वर दीपं धूपं, अनंदरुपं, ले फल भूपं, अर्घ करुं ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

फागुन सुदी तीज सुखदाई, गरभ सुमंगल ता दिन पाई
मित्रादेवी उदर सु आये, जजे इन्द्र हम पूजन आये ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्ल तृतीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मंगसिर शुक्ल चतुर्दशि सोहे, गजपुर जनम भयो जग मोहे
सुर गुरु जजे मेरु पर जाई, हम इत पूजें मनवचकाई ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ल चतुर्दश्यं जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मंगसिर सित दसमी दिन राजे, ता दिन संजम धरे विराजे
अपराजित घर भोजन पाई, हम पूजें इत चित हरषाई ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ल दशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कार्तिक सित द्वादशि अरि चूरे, केवलज्ञान भयो गुन पूरे
समवसरन तिथि धरम बखाने, जजत चरन हम पातक भाने ॥
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ल द्वादश्यं ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
चैत्र कृष्ण अमावसी सब कर्म, नाशि वास किय शिव-थल पर्म
निहचल गुन अनंत भंडारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णअमावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

बाहर भीतर के जिते, जाहर अर दुखदाय
ता हर कर अर जिन भये, साहर शिवपुर राय
राय सुदरशन जासु पितु, मित्रादेवी माय
हेमवरन तन वरष वर, नव्वै सहस सुआय

जय श्रीधर श्रीकर श्रीपति जी, जय श्रीवर श्रीभर श्रीमति जी
भवभीम भवोदधि तारन हैं, अरनाथ नमों सुखकारन हैं
गरभादिक मंगल सार धरे, जग जीवनि के दुखदंद हरे

कुरुवंश शिखामनि तारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
करि राज छखंड विभूति मई, तप धारत केवलबोध ठई
गण तीस जहाँ भ्रमवारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
भविजीवन को उपदेश दियो, शिवहेत सबै जन धारि लियो
जग के सब संकट टारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
कहि बीस प्ररुपन सार तहाँ, निजशर्म सुधारस धार जहाँ
गति चार हृषीपन धारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
षट काय तिजोग तिवेद मथा, पनवीस कषा वसु ज्ञान तथा
सुर संजम भेद पसारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
रस दर्शन लेश्य भव्य जुगं, षट सम्यक् सैनिय भेद युगं
जुग हारा तथा सु अहारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
गुनथान चतुर्दस मारगना, उपयोग दुवादश भेद भना
इमि बीस विभेद उचारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
इन आदि समस्त बखान कियो, भवि जीवनि ने उर धार लियो
कितने शिववादिन धारन हैं, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
फिर आप अघाति विनाश सबै, शिवधाम विषै थित कीन तबै
कृतकृत्य प्रभू जगतारन हैं अरनाथ नमौ सुखकारन हैं
अब दीनदयाल दया धरिये, मम कर्म कलंक सबै हरिये
तुमरे गुन को कछु पार न है, अरनाथ नमौ सुखकारन हैं

जय श्रीअरदेवं, सुरकृतसेवं समताभेवं, दातारं
अरिकर्म विदारन, शिवसुखकारन, जयजिनवर जग त्रातारं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर जिन के पदसारं, जो पूजै द्रव्य भाव सों प्राणी
सो पावै भवपारं, अजरामर मोक्षथान सुखखानी ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री मल्लिनाथ - पूजन

अपराजित तें आय नाथ मिथलापुर जाये

कुंभराय के नन्द, प्रभावति मात बताये ॥
कनक वरन तन तुंग, धनुष पच्चीस विराजे
सो प्रभु तिष्ठहु आय निकट मम ज्यें भ्रम भाजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुर-सरिता-जल उज्ज्वल ले कर, मनिभृंगार भराई
जनम जरामृतु नाशन कारन, जजहुं चरन जिनराई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावनचंदन कदली नंदन, कुंकुमसंग घिसायो
लेकर पूजौं चरनकमल प्रभु, भवआत्ताप नसायो ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय भवात्तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल शशिसम उज्ज्वल लीने, दीने पुंज सुहाई
नाचत गावत भगति करत ही, तुरित अखैपद पाई ॥राग

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार सुमन, संतान जनित महकाई
मार सुभट मद भंजनकारन, जजहुं तुम्हें शिरनाई ॥राग

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

फेनी गोझा मोदन मोदक, आदिक सद्य उपाई
सो लै छुधा निवारन कारन जजहुं चरन लवलाई ॥राग

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तिमिरमोह उरमंदिर मेरे, छाय रह्यो दुखदाई

तासु नाश कारन को दीपक, अद्भुत जोति जगाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर चंदन चूरि सुगंध बनाई
अष्टकरम जारन को तुम ढिग, खेवत हौं जिनराई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला केला लाई
मोक्ष महाफल दाय जानिके, पूजैं मन हरखाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल अरघ मिलाय गाय गुन, पूजौं भगति बढ़ाई
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरन गहो मैं आई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

चैत की शुद्ध एकैं भली राजई, गर्भकल्यान कल्यान को छाजई
कुंभराजा प्रभावति माता तने, देवदेवी जजे शीश नाये घने ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लप्रतिपदायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मार्गशीर्ष सुदी ग्यारसी राजई, जन्मकल्यान को द्यौस सो छाजई
इन्द्र नागेंद्र पूजें गिरिद जिन्हें, मैं जजौं ध्याय के शीश नावौं तिन्हें ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मार्गशीर्ष सुदीग्यारसीके दिना, राजको त्याग दीच्छ धरी है जिना
दान गोछीरको नन्दसेने दयो, मैं जजौं जासु के पंच अचरज भयो ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पौष की श्याम दूजी हने घातिया, केवलज्ञानसाम्राज्यलक्ष्मी लिया
धर्मचक्री भये सेव शक्री करें, मैं जजौं चर्न ज्यों कर्म वक्री टरें ॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णाद्वितीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

फाल्गुनी सेत पांचैं अघाती हते, सिद्ध अलै बसै जाय सम्मेदतें
इन्द्रनागेंद्र कीन्ही क्रिया आपके, मैं जजौं शिव मही ध्यायके गायके ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लपंचम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुअ नमित सुरेशा, नर नागेशा, रजत नगेशा भगति भरा

भवभयहरनेशा, सुखभरनेशा, जै जै जै शिवरमनिवरा

जय शुद्ध चिदात्म देव एव, निरदोष सुगुन यह सहज टेव
जय भ्रमतम भंजन मारतंड, भवि भवदधि तारन को तरंड
जय गरभ जनम मंडित जिनेश, जय छायाक समकित बुद्धभेस
चौथे किय सातों प्रकृतिछीन, चौ अनंतानु मिथ्यात तीन
सातय किय तीनों आयु नास, फिर नवें अंश नवमें विलास
तिन माहि प्रकृति छत्तीस चूर, या भाँति कियो तुम ज्ञानपूर
पहिले महं सोलह कहँ प्रजाल, निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचाल
हनि थानगृद्धि को सकल कुब्ब, नर तिर्यगति गत्यानुपुब्ब
इक बे ते चौ इन्द्रीय जात, थावर आत्तप उद्योत घात
सूच्छम साधारन एक चूर, पुनि दुतिय अंश वसु कयो दूर
चौ प्रत्याप्रत्याख्यान चार, तीजे सु नपुंसक वेद टार
चौथे तियवेद विनाशकीन, पांचें हास्यादिक छहों छीन
नर वेद छठें छय नियत धीर, सातयें संज्ज्वलन क्रोध चीर
आठवें संज्ज्वलन मान भान, नवमें माया संज्ज्वलन हान
इमि घात नवें दशमें पधार, संज्ज्वलन लोभ तित हू विदार
पुनि द्वादशके द्वय अंश माहि, सोलह चकचूर कियो जिनाहि
निद्रा प्रचला इक भाग माहि, दुति अंश चतुर्दश नाश जाहि
ज्ञानावरनी पन दरश चार, अरि अंतराय पांचो प्रहार
इमि छय त्रेशठ केवल उपाय, धरमोपदेश दीन्हों जिनाय
नव केवललब्धि विराजमान, जय तेरमगुन तिथि गुनअमान
गत चौदहमें द्वै भाग तत्र, क्षय कीन बहत्तर तेरहत्र
वेदनी असाता को विनाश, औदारि विक्रियाहार नाश
तैजस्य कारमानों मिलाय, तन पंच पंच बंधन विलाय
संघात पंच घाते महंत, त्रय अंगोपांग सहित भनंत
संठान संहनन छह छहेव, रसवरन पंच वसु फरस भेव
जुग गंध देवगति सहित पुव्व, पुनि अगुरुलघु उस्वास दुव्व
परउपघातक सुविहाय नाम, जुत असुभगमन प्रत्येक खाम
अपरज थिर अथिर अशुभ सुभेव, दुरभाग सुसुर दुस्सुर अभेव

अन आदर और अजस्य कित्ति, निरमान नीचे गोतौ विचित्त
ये प्रथम बहत्तर दिय खपाय, तब दूजे में तेरह नशाय
पहले सातावेदनी जाय, नर आयु मनुष्यगति को नशाय
मानुष गत्यानु सु पूरवीय, पंचेंद्रिय जात प्रकृति विधिय
त्रसवादर पर्जापति सुभाग, आदरजुत उत्तम गोत पाग
जसकीरती तीरथप्रकृति जुक्त, ए तेरह छयकरि भये मुक्त
जय गुनअनंत अविकार धार, वरनत गनधर नहि लहत पार
ताकों मैं वंदौ बार बार, मेरी आपत उद्धार धार
सम्मेदशैल सुरपति नमंत, तब मुक्तथान अनुपम लसंत
'वृन्दावन' वंदत प्रीति-लाय, मम उर में तिष्ठहु हे जिनाय

जय जय जिनस्वामी, त्रिभुवननामी, मल्लि विमल कल्यानकरा
भवदंदविदारन आनंद कारन, भविकुमोद निशिईश वरा

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जजें हैं जो प्रानी दरब अरु भावादि विधि सों,
करैं नाना भाँति भगति थुति औ नौति सुधि सों
लहै शक्री चक्री सकल सुख सौभाग्य तिनको,
तथा मोक्ष जावे जजत जन जो मल्लिजिन को ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री मुनिसुव्रतनाथ - पूजन

प्रानत स्वर्ग विहाय लियो जिन, जन्म सु राजगृहीमहँ आई
श्री सुहमित्त पिता जिनके, गुनवान महापदमा जसु माई ॥
बीस धनू तनु श्याम छवी, कछु अंक हरी वर वंश बताई
सो मुनिसुव्रतनाथ प्रभू कहँ थापतु हौ इत प्रीत लगाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् अह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल सुजल जिमि जस तिहांरो, कनक झारीमें भरौं

जरमरन जामन हरन कारन, धार तुम पदतर करौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भवतापघायक शान्तिदायक, मलय हरि घसि ढिग धरौं
गुनगाय शीस नमाय पूजत, विघनताप सबैं हरौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अखण्डित दमक शशिसम, गमक जुत थारी भरौं
पद अखयदायक मुकति नायक, जानि पद पूजा करौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

बेला चमेली रायबेली, केतकी करना सरौं
जगजीत मनमथहरन लखि प्रभु, तुम निकट ढेरी करौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान विविध मनोज्ञ पावन, सरस मृदुगुन विस्तरौं
सो लेय तुम पदतर धरत ही छुधा डाइन को हरौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक अमोलिक रतन मणिमय, तथा पावन घृत भरौं
सो तिमिर मोहविनाश अतम भास कारण ज्वै धरौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर चन्दन चूर भूर, सुगन्ध पावक में धरौं
तसु जरत जरत समस्त पातक, सार निज सुख को भरौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल अनार सु आम आदिक पक्कफल अति विस्तरौं
सो मोक्ष फल के हेत लेकर, तुम चरण आगे धरौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलगंध आदि मिलाय आठों दरब अरघ सजौं वरौं
पूजौं चरन रज भगतिजुत, जातें जगत सागर तरौं ॥
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

तिथि दोयज सावन श्याम भयो, गरभागम मंगल मोद थयो
हरिवृन्द सची पितु मातु जजें, हम पूजत ज्यै अघ ओघ भजें ॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्ण द्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

बैसाख बदी दशमी वरनी, जनमे तिहिं द्योस त्रिलोकधनी
सुरमन्दिर ध्याय पुरन्दर ने, मुनिसुव्रतनाथ हमें सरनै ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्ण दशम्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर ने गहियो, वैशाख बदी दशमी कहियो
निरुपाधि समाधि सुध्यावत हैं, हम पूजत भक्ति बढ़ावत हैं ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्ण दशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वर केवलज्ञान उद्योत किया, नवमी वैसाख वदी सुखिया
धनि मोहनिशाभनि मोखमगा, हम पूजि चहैं भवसिन्धु थगा ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णानवम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वदि बारसि फागुन मोच्छ गये, तिहुं लोक शिरोमणी सिद्ध भये
सु अनन्त गुनाकर विघ्न हरी, हम पूजत हैं मनमोद भरी ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण द्वादश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

मुनिगण नायक मुक्तिपति, सूक्त व्रताकर युक्त

भुक्ति मुक्ति दातार लखि, वन्दौ तन-मन युक्त

जय केवल भान अमान धरं, मुनि स्वच्छ सरोज विकास करं
भव संकट भंजन लायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
घनघात वनं दवदीप्त भनं, भविबोध त्रषातुर मेघघनं
नित मंगलवृन्द वधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
गरभादिक मंगलसार धरे, जगजीवन के दुखदंद हरे
सब तत्व प्रकाशन नायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
शिवमारग मण्डन तत्व कह्यो, गुनसार जगत्रय शर्म लह्यो
रुज रागरू दोष मिटायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
समवस्रत में सुरनार सही, गुनगावत नावत भाल मही
अरु नाचत भक्ति बढ़ायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
पग नूपुर की धुनि होत भनं, इननं इननं इननं इननं
सुरलेत अनेक रमायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
घननं घननं घन घंट बजें, तननं तननं तनतान सजें
टमटम मिरदंग बजायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
छिन में लघु औ छिन थूल बनें, जुत हावविभाव विलासपने
मुखतें पुनि यों गुनगायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
धृगतां धृगतां पग पावत हैं, सननं सननं सु नचावत हैं
अति आनन्द को पुनि पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
अपने भव को फल लेत सही, शुभ भावनि तें सब पाप दही
तित तैं सुख को सब पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
इन आदि समाज अनेक तहां, कहि कौन सके जु विभेद यहाँ
धनि श्री जिनचन्द सुधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
पुनि देश विहार कियो जिन ने, वृष अमृतवृष्टि कियो तुमने
हमको तुमरी शरनायक है, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
हम पै करुनाकरि देव अबै, शिवराज समाज सु देहु सबै
जिमि होहुं सुखाश्रम नायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
भवि वृन्दतनी विनती जु यही, मुझ देहु अभयपद राज सही
हम आनि गही शरनायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं

घत्ता:- जय गुनगनधारी, शिवहितकारी, शुद्धबुद्ध चिद्रूप पती
परमानंददायक, दास सहायक, मुनिसुव्रत जयवंत जती
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमुनिसुव्रत के चरन, जो पूजें अभिनन्द
सो सुरनर सुख भोगि के, पावें सहजानन्द ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री नमिनाथ - पूजन

श्री नमिनाथ जिनेन्द्र नमौ विजयारथ नन्दन
विष्यदेवी मातु सहज सब पाप निकन्दन ॥
अपराजित तजि जये मिथिलापुर वर आनन्दन
तिन्हें सु थापौ यहाँ त्रिधा करि के पदवन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैषट् अह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुरनदी जल उज्ज्वल पावनं, कनक भृंग भरौ मन भावनं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदांबुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिमलय मिलि केशर सों घसौं, जगतनाथ भवातप को नसौं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

गुलक के सम सुन्दर तंदुलं, धरत पुञ्जसु भुंजत संकुलं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतुकी बेलि सुहावनी, समरसूल समस्त नशावनी
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शशि सुधासम मोदक मोदनं, प्रबल दुष्ट छुधामद खोदनं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि घृताश्रित दीपक जोइया, असम मोह महातम खोइया
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अमरजिह्व विषें दशगंध को, दहत दाहत कर्म के बंधको
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

फलसुपक मनोहर पावने, सकल विघ्न समुह नशावने
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भवभय हरं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कल्याणक अर्घ्यावली

गरभागम मंगलचारा, जुग अश्विन श्याम उदारा
हरि हर्षि जजे पितुमाता, हम पूजें त्रिभुवन-त्राता ॥

ॐ ह्रीं अश्विनकृष्ण॥ द्वितीयां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनमोत्सव श्याम असाढ़ा, दशमी दिन आनन्द बाढ़ा
हरि मन्दर पूजे जाई, हम पूजें मन वच काई ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्ण॥ दशम्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर धारा, दशमी कलि षाढ़ उदारा
निज आत्म रस झर लायो, हम पूजत आनन्द पायो ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्ण॥ दशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित मंगसिर ग्यारस चूरे, चव घाति भये गुण पूरे
समवस्रत केवलधारी, तुमको नित नौति हमारी ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वैसाख चतुर्दशि श्यामा, हनि शेष वरी शिव वामा
सम्मेद थकी भगवन्ता, हम पूजें सुगुन अनन्ता ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आयु सहस्र दश वर्ष की, हेम वरन तनसार
धनुष पंचदश तुंग तनु, महिमा अपरम्पार

जय जय जय नमिनाथ कृपाला, अरिकुल गहन दहन दवज्वाला
जय जय धरम पयोधर धीरा, जय भव भंजन गुन गम्भीरा
जय जय परमानन्द गुनधारी, विश्व विलोकन जनहितकारी
अशरन शरन उदार जिनेशा, जय जय समवशरन आवेशा
जय जय केवल ज्ञान प्रकाशी, जय चतुरानन हनि भवफांसी
जय त्रिभुवनहित उद्यम वंता, जय जय जय जय नमि भगवंता
जै तुम सप्त तत्व दरशायो, तास सुनत भवि निज रस पायो
एक शुद्ध अनुभव निज भाखे, दो विधि राग दोष छै अखे
दो श्रेणी दो नय दो धर्म, दो प्रमाण आगमगुन शर्म
तीनलोक त्रयजोग तिकालं, सल्ल पल्ल त्रय वात वलायं
चार बन्ध संज्ञागति ध्यानं, आराधन निछेप चउ दानं
पंचलब्धि पंचभाव शिव भौनें, छहों दरब सम्यक अनुकौने
हानिवृद्धि तप समय समेता, सप्तभंग वानी के नेता
संयम समुद् घात भय सारा, अथ करम मद सिध गुन धारा
नवों लबधि नवतत्व प्रकाशे, नोकषाय हरि तूप हुलाशे
दशों बन्ध के मूल नशाये, यों इन आदि सकल दरशाये
फेर विहरि जगजन उद्दारे, जय जय ज्ञान दरश अविकारे
जय वीरज जय सूक्ष्मवन्ता, जय अवगाहन गुण वरनंता
जय जय अगुरुलघू निरबाधा, इन गुनजुत तुम शिवसुख साधा

ता कों कहत थके गनधारी, तौ को समरथ कहे प्रचारी
ता तैं मैं अब शरने आया, भवदुख मेटि देहु शिवराया
बार बार यह अरज हमारी, हे त्रिपुरारी हे शिवकारी ॥
पर-परणति को वेगि मिटावो , सहजानन्द स्वरूप भितावो
'वृन्दावन' जांचत शिरनाई, तुम मम उर निक्सो जिनराई
जब लों शिव नहि पावौं सारा, तब लों यही मनोरथ म्हारा

जय जय नमिनाथं हो शिवसाथं, औ अनाथ के नाथ सदम
ता तैं शिर नायौ, भगति बढ़ायो, चीह्न चिह्न शत पत्र पदम
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री नमिनाथ तने जुगल, चरन जजें जो जीव
सो सुर नर सुख भोगकर, होवें शिवतिय पीव ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीनेमिनाथ - पूजन

जैतिजै जैतिजै जैतिजै नेमकी, धर्म औतार दातार श्यैचैनकी
श्री शिवानंद भौफंद निकन्द, ध्यावें जिन्हें इन्द्र नागेन्द्र ओ मैनकी ॥
परमकल्याण के देनहारे तुम्हीं, देव हो एव तातें करौं एनकी
थापि हौं वार त्रै शुद्ध उच्चार के, शुद्धताधार भवपार कूं लेन की ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ।।टेक ।।
गंग नदी कुश प्राशुक लीनो, कंचन भृंग भराय
मन वच तन तैं धार देत ही, सकल कलंक नशाय ॥
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय ॥ दाता

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचन्दनजुत कदलीनन्दन, कुंकुम संग घिसाय
विघन ताप नाशन के कारन, जजौं तिहारै पाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यराशि तुमजस सम उज्ज्वल तंदुल शुद्ध मंगाय
अख्य सौख्य भोगन के कारन, पुंज धरौं गुन गाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुण्डरीक सुरद्रुम करनादिक, सुगम सुगंधित लाय
दर्पक मनमथ भंजनकारन, जजहुं चरन लवलाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरत मंगाय
क्षुधा-वेदनी नाश करन को, जजहुं चरन उमगाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कनक दीप नवनीत पूरकर, उज्ज्वल जोति जगाय
तिमिर मोह नाशक तुम को लखि, जजहुं चरन हुलसाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविध गंध मंगाय मनोहर, गुंजत अलिगन आय
दशों बंध जारन के कारन, खेवौं तुम ढिग लाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस वरन रसना मन भावन, पावन फल सु मंगाय
मोक्ष महाफल कारन पूजौं, हे जिनवर तुम पाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय
अष्टम छिति के राज कारन को, जजौं अंग वसु नाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
सित कातिक छट्ट अमंदा, गरभागम आनन्दकन्दा

शचि सेय शिवापद अई, हम पूजत मनवचकाई ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठ्यं गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित सावन छट्ट अमन्दा, जनमे त्रिभुवन के चन्दा
पितु समुन्द्र महासुख पायो, हम पूजत विघन नशायो ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यं जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तजि राजमती व्रत लीनो, सित सावन छट्ट प्रवीनो
शिवनारि तबै हरषाई, हम पूजैं पद शिर नाई ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यं तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित अश्विन एकम् चूरे, चारों घाती अति कूरे
लहि केवल महिमा सारा, हम पूजैं अष्ट प्रकारा ॥

ॐ ह्रीं अश्विनशुक्लप्रतिपदायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सितषाढ सप्तमी चूरे, चारों अघातिया कूरे
शिव ऊर्जयन्त तें पाई, हम पूजैं ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्याम छवी तनु चाप दश, उन्नत गुननिधिधाम
शंख चिह्न पद में निखरि, पुनि-पुनि करौं प्रनाम

जै जै जै नेमि जिनिंद चन्द, पितु समुद देन आनन्दकन्द
शिवमात कुमुदमन मोददाय, भविवृन्द चकोर सुखी कराय
जयदेव अपूरव मारतंड, तुम कीन ब्रह्मसुत सहस खंड
शिवतिय मुखजलज विकाशनेश, नहि रह्यो सृष्टि में तम अशेष
भवभीत कोक कीनों अशोक, शिवमग दरशायो शर्म थोक
जै जै जै जै तुम गुनगँभीर, तुम आगम निपुन पुनीत धीर
तुम केवल जोति विराजमान, जै जै जै जै करुना निधान
तुम समवसरन में तत्वभेद, दरशायो जा तें नशत खेद

तित तुमको हरि आनंदधार, पूजत भगतीजुत बहु प्रकार
पुनि गद्यपद्यमय सुजस गाय, जै बल अनंत गुनवंतराय
जय शिवशंकर ब्रह्मा महेश, जय बुद्ध विधाता विष्णुवेष
जय कुमतिमतंगन को मृगेन्द्र, जय मदनध्वांत को रवि जिनेन्द्र
जय कृपासिंधु अविरुद्ध बुद्ध, जय रिद्धिसिद्धि दाता प्रबुद्ध
जय जगजन मनरंजन महान, जय भवसागर महं सुष्टुयान
तुव भगति करें ते धन्य जीव, ते पावैं दिव शिवपद सदीव
तुमरो गुनदेव विविध प्रकार, गावत नित किन्नर की जु नार
वर भगति माहि लवलीन होय, नाचैं ताथेई थेई थेई बहोय
तुम करुणासागर सृष्टिपाल, अब मों को वेगि करो निहाल
मैं दुख अनंत वसुकरमजोग, भोगे सदीव नहि और रोग
तुम को जग में जान्यो दयाल, हो वीतराग गुन रतन माल
ता तें शरना अब गही आय, प्रभु करो वेगि मेरी सहाय
यह विघनकरम मम खंड खंड, मनवांछित कारज मंडमंड
संसार कष्ट चक्चूर चूर, सहजानन्द मम उर पूर पूर
निजपर प्रकाशबुधि देई, तजि के विलंब सुधि लैइ लैइ
हम याचतु हैं बार बार, भवसागर तें मो तार तार
नहि सह्यो जात यह जगत दुःख, तातैं विनवौं हे सुगुनमुख

श्रीनेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं सुखकारं
भवभयहरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुख धन जस सिद्धि पुत्र पौत्रादि वृद्धी
सकल मनसि सिद्धि होतु है ताहि रिद्धि ॥
जजत हरषधारी नेमि को जो अगारी
अनुक्रम अरिजारी सो वरे मोक्षनारी ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री पार्श्वनाथ - पूजन

वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये ॥
नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लच्छन पद लसैं
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो करम मेरे सब नसैं ॥

अर्थ - पार्श्वनाथ भगवान् [वर] श्रेष्ठ प्राणत स्वर्ग को [विहाय] छोड़कर माता वामा देवी और अश्वसेन के [सुत] पुत्र हुए । जिनके चरणों की वंदना [सुर] देवताओं ने करी थी । उनका [तन] शरीर नौ हाथ [उन्नत] ऊँचा [विराजै] सुशोभित था । उनके [पद] पैर में [उरग] सर्प का [लच्छन] चिन्ह [लसैं] सुशोभित था । हे जिनेन्द्र भगवान् में आपकी यहाँ स्थापना करता हूँ आप यहाँ आकर [तिष्ठो] विराजमान होइये जिससे मेरे सब कर्म नष्ट हो जायें ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

क्षीरसोम के समान अम्बुसार लाइये,
हेमपात्र धारि के सु आपको चढ़ाइये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अर्थ - [क्षीर] दूध के अथवा [सोम] चंद्रमा के समान सफ़ेद [सार] श्रेष्ठ [अम्बु] जल को [हेम] स्वर्ण [पात्र] कलश में [धारि] लेकर आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये,
आप चरण चर्च मोह-ताप को हनीजिये ॥ पार्श्व

अर्थ - मैं चंदन, केशर आदि सुगंधित वस्तुएँ लेकर आपके चरणों की पूजा करता हूँ, आप मोह (राग द्वेष) की [ताप] अग्नि को [हनीजिये] नष्ट कर दीजिए ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चंदनं जलं निर्वपामीति स्वाहा

फेन, चंद्र के समान अक्षतान् लाइके,
चर्न के समीप सार पुंज को रचाइके ॥ पार्श्व

अर्थ - दूध के [फेन] झाग या चंद्रमा के समान श्वेत स्वच्छ चावलों के श्रेष्ठ पुंजों को बनाकर । आपके [चर्न] चरणों के समीप हे पार्श्वनाथ भगवान् मैं आपकी सदा सेवा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् जलं निर्वपामीति स्वाहा

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइके,
धार चर्न के समीप काम को नशाइके ॥ पार्श्व

अर्थ - केवड़ा, गुलाब और केतकी के फूलों को चुन-चुन कर लाकर आपके चरणों के समीप, मेरे काम बाण को नष्ट करने के लिए रख रहा हूँ, आप उसे नष्ट कर दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं जलं निर्वपामीति स्वाहा

घेवरदि बावरदि मिष्ट सद्य में सने,
आप चर्न चर्चति क्षुधादि रोग को हने ॥पार्श्व

अर्थ - घेवर, बावर/ईमरती (मिठाई) आदि [सद्य] घी में [सने] बना कर [मिष्ट] चाशनी में डालकर आपके चरणों की पूजा करने से क्षुधा आदि रोग नष्ट हो जायेंगे ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

लाय रत्न दीप को सनेह पूर के भरुं,
वातिका कपूर बारि मोह ध्वांत को हरुं ॥पार्श्व

अर्थ - मोह रुपी [ध्वान्त] अन्धकार को क्षय करने के लिए, रत्न के दीपक को [सनेह पूर] घी से पूरा भरकर, कपूर की बत्ती से जला कर, आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप गंध लेय के सुअग्निसंग जारिये,
तास धूप के सुसंग अष्टकर्म बारिये ॥पार्श्व

अर्थ - सुगन्धित धूप लेकर अग्नि के साथ जलाता हूँ [तासु] उस धूप के संग अष्ट कर्मों को [बारिये] नष्ट करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

खारिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरुं,
हर्ष धारिके जजुं सुमोक्ष सौख्य को वरुं ॥पार्श्व

अर्थ - [खारिक] छुआरा आदि, [चिरभटा] ककड़ी आदि को रत्न के थाल में भरकर लाया हूँ । आपकी पूजा प्रफुल्लित होकर हर्षो-उल्लास पूर्वक मोक्ष सुख के प्राप्ति के लिए करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

नीर गंध अक्षतान पुष्प चारु लीजिये
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तै जजीजिये ॥पार्श्व

अर्थ - जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल आदि का अर्घ बनाकर मैं आपकी [जजीजिये] पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

शुभप्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर अये
वैशाख तनी दुतकारी, हम पूजे विघ्न निवारी ॥

अर्थ - आप शुभ प्राणत स्वर्ग को [विहाय] छोड़कर वामा माता के [उर] पेट में वैशाख [कारी] कृष्ण [द्विती] द्वितीया को अये थे । हम विघ्नों के निवारण के लिए आप (भगवान् पार्श्वनाथ जी) की पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता
श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै ॥

अर्थ - तीनों लोक के सुख-दाता, त्रिलोक-नाथ का जन्म प्रसिद्ध पौष कृष्ण एकादशि को हुआ था । आपका काले वर्ण का शरीर अत्यंत सुशोभित हो रहा था, उसका प्रकाश करोड़ों सूर्य के प्रकाश को भी लज्जित कर रहा था ।
ॐ ह्रीं पौषकृष्ण॥ एकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई
अपने कर लौंच सु कीना, हम पूजें चरन जजीना ॥

अर्थ - पौष कृष्ण एकादशि को आपने १२ भावनाओं को भाया । अपने हाथों से केश-लौंच कर दिक्षा धारण करी, हम आपके पूज्य चरणों की [जजीना] अर्चना करते हैं ।
ॐ ह्रीं पौषकृष्ण॥ एकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवल ज्ञान उपाई
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना ॥

अर्थ - चैत कृष्ण चतुर्थी को भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । तब भगवान् ने उपदेश दिया जिससे भव्य जीवों को सुख की प्राप्ति हुई ।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्ष कल्याणा ॥

अर्थ - श्रावण [सित] शुक्ल सप्तमी को मोक्ष रूपी लक्ष्मी/स्त्री का वरण किया अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया । [हरि] इंद्र ने सम्मेद शिखर जी पर आकर आपके मोक्ष स्थल पर वज्र की [सूची] कलम से [माना] आपके चरण अंकित किये । हम आपके मोक्ष कल्याणक की पूजा करते हैं ।
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

पारसनाथ जिनेंद्रतने वच, पौन भखी जरते सुन पाये
क्यों सरधान लहो पद अन भये पद्मावति शेष कहाये
नाम प्रताप टैं संताप, सुभव्यन को शिवशर्म दिखाये
हे अश्वसेन के नंद भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षिये ॥

अर्थ - [जरते] जलते हुए [पौनभखी] (हवा खाने वाले) सर्प/सर्पिणी ने पारसनाथ जिनेंद्र [तने] के, वचन सुनकर उन पर श्रद्धा करने से पद्मावती और धरणेन्द्र में जन्म लिया । उनके नाम के प्रताप से दुःख दूर हो जाते हैं, भव्य जीवों को [शर्म] मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है । हे अश्वसेन के पुत्र हम आपके गुणों का गान हर्षपूर्वक करते हैं ।

केकी-कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ
लक्षण उरग निहार पग, वंदौ पारसनाथ

अर्थ - पार्श्वनाथ भगवान् की छवि अर्थात् वर्ण [केकी] मोर के [कंठ] गले के समान नीला/काला, [वपु] शरीर की [तंग] ऊंचाई [नव] नौ हाथ थी, मैं उनके चरणों में [उरग] सर्प का चिह्न देखकर उनकी पूजा करता हूँ ।

रची नगरी छह मास अगर, बने चहुं गोपुर शोभ अपार

सु कोट तनी रचना छबि देत, कंगूरन पें लहकें बहुकेत ॥१॥

अर्थ - भगवान् के गर्भ में आने से छह माह [अगार] पूर्व नगरी बनाई जो कि चारों दिशाओं में [गोपुर] मुख्य द्वारों से अत्यंत सुशोभित थी । उसके चारों ओर बहुत सुंदर [कोट] बाउंड्री बनायी थी । ऊपर [कंगूरन पें लहकें बहुकेत] बहुत सारी झुमरिया [लहकें] लहरा रही थी ।

बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भांति धनेश तैयार
तहां अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार ॥२॥

अर्थ - विविध प्रकार से कुबेर ने अत्यंत सुन्दर बनारस नगरी बनाई थी । वहाँ अत्यंत उदार राजा अश्वसेन अपनी पटरानी वामा देवी के साथ सुखों से भरपूर जीवन आनंद पूर्वक व्यतीत कर रहे थे ।

तज्ये तुम प्रानत नाम विमान, भये तिनके वर नंदन आन
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय, गिरिद करी विधि न्हौन सुजाय ॥३॥

अर्थ - हे भगवान् आप प्राणत स्वर्ग को [तज्ये] त्याग कर उनके माता वामा देवी और अश्वसेन राजा) [वर नंदन] श्रेष्ठ पुत्र हुए। तभी देव और इंद्र [नियोगनि] नियोग पूजा करने के लिए आये और उनको (जिनेन्द्र भगवान् बालक) [गिरिद] समेरू पर्वत पर ले जाकर नहलाया / उनका जन्माभिषेक किया ।

पिता-घर सौंपि गये निजधाम, कुबेर करै वसु जाम सुकाम
बढ़े जिन दोज-मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन ॥४॥

अर्थ - [निर्जर] बालक तीर्थकर को उनके पिता के घर छोड़कर वे अपने घर चले गए । कुबेर उनकी [वसु] आठों [जाम] पहर सेवा करते थे । वे दूज के [मयंक] चंद्रमा के समान बढ़ने लगे। बहुत से देवों ने बालक बनकर बालक तीर्थकर के साथ क्रीड़ा कर उनके साथ रहे ।

भए जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो ममआस ॥५॥

अर्थ - जब पार्श्वनाथ कुमार आठ वर्ष के हुए तब उन्होंने महान सुखदायक अणुव्रतों को धारण किया । पिताजी ने अपनी आशा की पूर्ति करने के लिए उनसे विवाह का [अरदास] निवेदन किया ।

करी तब नाहि रहे जग चंद, किये तुम काम कषाय जुमंद
चढ़े गजराज कुमारन संग, सुदेखत गंगतनी सुतरंग ॥६॥

अर्थ - पिता के निवेदन पर पार्श्वनाथ ने विवाह के लिए मना कर संसार में चंद्रमा के समान सुशोभित रहते हुए काम और कषायों को अधिक मंद किया । हाथी पर चढ़कर अन्य कुमारों के साथ जाते हुए गंगा नदी की तरंगों को देख कर आनंदित हो रहे थे ।

लख्ये इक रंक कहै तप घोर, चहुंदिशि अगनि बलै अति जोर
कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात, करै बहु जीवन की मत घात ॥७॥

अर्थ - उन्होंने एक [रंक] सन्यासी को चारों तरफ लकड़ी [बलै] जलाकर घोर तप करते हुए [लख्ये] देखा । जिनेन्द्र भगवान् ने कहा कि हे भाई सुनो इन्हे जलाकर तुम जीवों का घात मत करो । (तुम्हारे लकड़ी जलाने से सर्प और सर्पिणी का युगल जिन्द जल रहा है, यह उन्होंने अवधि ज्ञान से जान लिया था)

भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव
लख्ये यह कारण भावन भाय, नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय ॥८॥

अर्थ - तब वह सन्यासी [कोप] क्रोधित होकर कहने लगा जीव कहाँ है । तब उन्होंने उसे जलते हुए जीवित सर्प को दिखाया । यह देखकर वे १२ भावनाओं को भाने लगे और उन्हें वैराग्य वृद्धि हुई, [ब्रह्मरिषीसुर] लौकांतिक देव ने आकर उन्हें नमस्कार कर के वैराग्य की अनुमोदना करी ।

तबहि सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज कंध मनोग
कियो वन माहि निवास जिन्द, धरे व्रत चारित आनन्दकंद ॥९॥

अर्थ - तभी चारों प्रकार के देवों ने अपने नियोग के अनुसार [मनोग] सुंदर [शिविका] पालकी को अपने कंधों पर रख कर ले गए। वन में जिनेन्द्र भगवान् ने रह कर आनंद के समूह को प्रदान करने वाले व्रत और चरित्र अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण करी ।

गहे तहँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तने जु अवास
दियो पयदान महासुखकार, भई पन वृष्टि तहां तिहि बार ॥१०॥

अर्थ - उपवास के बाद धनदत्त सेठ के घर गये जहाँ उन्होंने भगवान् को महा सुखकारी पयदान / अहार दान दिया जिस के फलस्वरूप उनके आंगन में तीन बार देवों ने रत्नों की वृष्टि करी ।

गये तब कानन माहि दयाल, धर्यो तुम योग सबहि अघ टाल
तबै वह धूम सुकेतु अयान, भयो कमठाचर को सुर आन ॥११॥

अर्थ - अपने [कानन] वन में जाकर समस्त [अघ] पापों को दूर कर योग धारण किया । तब वह सन्यासी कमठ का जीव अचानक आया ।

करै नभ गौन लखे तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्ष्ण पवन झकोर ॥१२॥

अर्थ - वह आकाश में गमन कर रहा था उसने आपको देखा और पूर्व बैर को विचार करके भयानक उपसर्ग कर, घोर अंधी चलायी, तीक्ष्ण हवा चलायी ।

रह्यो दशहूं दिश में तम छाये, लगी बहु अग्नि लखी नहि जाय
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़ै जल मूसलधार अथाय ॥१३॥

अर्थ - जिससे दसों दिशाओं में अन्धकार हो गया, चारों ओर उसने अग्नि लगाई, [सुरुण्डन] धड़ के बिना [मुंड] सिर दिखाए और मूसलाधार जल की वर्षा करी ।

तबै पद्मावति-कंत धनिद, नये जुग आय जहां जिनचंद
भग्यो तब रंक सुदेखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल ॥१४॥

अर्थ - तब पद्मावति और उनके [कन्ठ] पति धरणेन्द्र दोनों ने आकर [नये] नमस्कार किया, तब वह रंक-कमठ का जीव वहाँ से भाग गया और भगवान् को केवल ज्ञान हुआ ।

दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोध समेद पधार
सुवर्णभद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध ॥१५॥

अर्थ - भगवान् ने दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को बोध कर समेद शिखर जी पहुंच कर वहां की प्रसिद्ध सुवर्ण-भद्र कूट से मोक्ष-लक्ष्मी का वरण किया अर्थात् मोक्ष पधारे ।

जजूं तुम चरन दोउ कर जोर, प्रभू लखिये अबही मम ओर
कहै 'बखतावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भव पार लगाय ॥१६॥

अर्थ - मैं आपके दोनों चरणों की हाथ जोड़कर वंदना करता हूँ प्रभु अब मेरी ओर देखिये । बखतावर कवि कहते हैं जिनेन्द्र भगवान् हमको पार लगा दीजिये ।

घत्ता:- जय पारस देव, सुरकृत सेव, वंदत चर्न सुनागपती
करुणा के धारी पर उपकारी, शिवसुखकारी कर्महती

अर्थ - पार्श्वनाथ भगवान् की जय हो । देवों के द्वारा जिनकी वंदना करी जाती है, हम उन चरणों की वंदना करते हैं, वे करुणा धारी हैं, अन्य जीवों का उपकार करने वाले हैं, मोक्ष सुख को प्रदान करने वाले और कर्मों को नष्ट करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही
ताके दुख सब जाय भीति व्यापै नहि कित ही ॥
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे
अनुक्रमसों शिव लहै, 'रत्न' इमि कहै पुकारे ॥

अर्थ - जो भव्य नित्य मन लगाकर पार्श्वनाथ भगवान् को पूजते हैं उसके सब दुःख नष्ट हो जाते हैं और उसे किसी भी प्रकार का डर नहीं सताता । उसके सुख, सम्पत्ति, पुत्र, मित्र खूब होते हैं । और क्रम से वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीमहावीर - पूजन (कविवर वृन्दवन कृत)

श्रीमत वीर हरें भवपीर, भरें सुखसीर अनाकुलताई
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरि पंकति मौलि सुआई ॥
मैं तुमको इत थापत हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरषाई
हे करुणा-धन-धारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई ॥

अर्थ - [श्रीमत] श्रीमान (अंतरंग बहिरंग विभूतियों से युक्त) भगवान् महावीर [भव] संसार के [पीर] दुखों को [हरे] हरने वाले हैं, निराकुल सुख के [सीर] स्रोत हैं । उनका [केहरि-अंक] चिन्ह (पहिचान) है कि उन्होंने [अरि] शत्रुओं (कर्मों) को [करदंक] नष्ट कर दिया है । [हरि पंकति] इन्द्रों की कतार अपने [मौलि] मुकुटों को आप के [सुआई] चरणों में झुका कर [नमे] नमस्कार करते हैं । हे करुणा रुपी धन के धारक भगवन् । मैं आप की भक्ति पूर्वक [हिये] चित्त में हर्षित होकर यहाँ स्थापना करता हूँ । आप यहाँ शीघ्र आइये, आइये, [तिष्ठ] विराजमान होइये ।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन भृंग भरौं
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातें धार करौं ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अर्थ - [क्षीरोदधि] क्षीरसागर का [शुचि] पवित्र [नीर] जल के [सम] समान जल [कंचन] सोने की [भृंग] झारी में [भरौं] भरकर लाया हूँ । हे प्रभु मेरी [भवपीर] सांसारिक दुखों के [वेग] शीघ्र निवारण [यातें] के लिए, यह जल [धार] धारा आपके समक्ष [करौं] प्रवाहित कर रहा हूँ । आप श्री वीर, महावीर, [सन्मति] सुबुद्धि के नायक हैं, वर्धमान! आप की जय हो! आप अत्यंत गुणवान्, धैर्यवान् और [सन्मतिदायक] अच्छी बुद्धि के दाता हो ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर चन्दनसार, केसर संग घसौं
प्रभु भवआत्ताप निवार, पूजत हिय हुलसौं ॥श्रीवीर

अर्थ - मैं मलयागिरि का **[सार]** श्रेष्ठ चन्दन केसर के साथ घिसकर लाया हूँ । प्रभु **[भवा]** संसार के **[अताप]** दुखों को **[निवार]** नष्ट कर दीजिये । आपकी पूजा करते हुए मेरा हृदय **[हुलसौ]** प्रसन्न/अनंदित हो रहा है ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल सित-शशिसम शुद्ध लीनो थार भरी
तसु पुंज धरौं अविरुद्ध पावौं शिवनगरी ॥श्रीवीर

अर्थ - **[शशिसम]** चंद्रमा के समान **[सिता]** सफ़ेद **[तंदुल]** चावल थाली में भरकर लाया हूँ । मोक्ष नगरी की प्राप्ति के लिए उनके पुंज आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे
सो मनमथ भंजन हेतु, पूजौं पद थारे ॥श्रीवीर

अर्थ - **[सुरतरु]** कल्पवृक्षों के **[सुमन]** पुष्पों सहित **[सुमन]** भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पों से मन से प्रफुल्लित हो कर **[मनमथ]** कामदेव को **[भंजन]** नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥श्रीवीर

अर्थ - रस से **[रज्जत]** भरे/डूबे हुए **[सद्य]** ताज़े **[सज्जत]** बनाये हुए नैवेद्य **[मज्जत]** मंजे हुए **[थार]** थाल में भरकर लाया हूँ । **[अद्य]** आज उन नैवेद्य से **[रज्जत]** अनंदित होकर आपके चरणों में अर्पित करता हूँ जिसके **[भज्जत]** सेवन से भूख रुपी **[अरी]** शत्रु दूर हो जाए ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हैं
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हैं ॥श्रीवीर

अर्थ - आप **[सुखगेह]** सुख के भण्डार हैं । मैं **[तम]** अंधकार को **[खंडित]** नष्ट करने वाले, **[नेह]** घी / चिकनाई से **[मंडित]** भरे / सुशोभित दीपक को **[जोवत]** जलाकर कर **[भ्रमतम]** मोह रुपी अन्धकार को **[खोवत]** नष्ट करने के लिए उसे आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥श्रीवीर

अर्थ - मैं हरिचंदन / श्रेष्ठ चंदन, अगर, कपूर का सुगन्धित चूर्ण आठों कर्म नष्ट करने के लिए आपके चरणों के समक्ष भली प्रकार खेता हूँ ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रितु फल कल-वर्जित लाय, कंचन थाल भरौं
शिव फलहित हे जिनराय, तुम ढिग भेंट धरौं ॥श्रीवीर

अर्थ - हे जिनेन्द्र भगवान् ! **[रितुफल]** ऋतू के, **[कल]** शरीर/जीव **[वर्जित]** रहित, फल **[कंचन]** स्वर्ण के थाल में भरकर

मोक्षफल की प्राप्ति के लिए आपके [ढिग] समक्ष अर्पित कर रहा हूँ ।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरौ
गुण गाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरौ ॥श्रीवीर

अर्थ - जल से फल तक [वसु] अष्ट द्रव्यों को [हिम] सोने के थाल में [सजि] सजाकर, शरीर और मन में अत्यन्त [मोद] प्रसन्नता धारण कर के आपके गुणों को गा रहा हूँ, मुझे संसार सागर से पार लगा दीजिये, आपकी पूजा करने से पापों का नाश हो जाय (ऐसा वरदान दीजिये) ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

मोहि राखो हो शरणा, श्री वर्द्धमान जिनरायजी ।टेक॥
गरभ साढ सित छट् लियो थित, त्रिशला उर अघ हरना
सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजूं भवतरना ॥
मोहि राखो हो शरणा, श्री वर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो हो शरणा

अर्थ - आप [साढ] आषाढ [सित] शुक्ल छठ तिथि को गर्भ में अये थे, त्रिशला माता के उदर में पधारे थे, आपका गर्भकल्याणक [अघ] पापों को हरने वाला था ! [सुर] देवता, [सुरपति] इंद्र [तित] आपकी [नित] नित्य [सेव] सेवा करते थे ! मैं आपको [भवतरना] संसार को पार करने के लिए पूजता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये । हे भगवन वर्द्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यं गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन वरना
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजौं भवहरना ॥मोहि॥

अर्थ - आपका जन्म चैत [सित] शुक्ल तेरस को कुण्डलपुर में [कन वरना] स्वर्ण शरीर के वर्ण सहित हुआ था । [सुरगिरि] समेरु पर्वत पर [सुरगुरु] बृहस्पति इंद्र आदि ने आपको पूजा रचाई थी । मैं भी आपके जन्म-कल्याणक की पूजा, संसार के जन्म मरण के संकट को नष्ट करने के लिए करता हूँ ।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यं जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना
नृपति कूल घर पारन कीनों, मैं पूजौं तुम चरना ॥मोहि॥

अर्थ - मंगसिर [असित] कृष्ण की मनोहर दशमी को निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करी थी । कूल नामक राजा के घर आपने [पारन] पारणा करी । (देवों ने तो पञ्चाशच्चर्य कर वंदना कर ली थी) मैं (आपके अहार को समरण करके) आपके चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल दशैं वैशाख दिक्स अरि, घात चतुक क्षय करना
केवल लहि भवि भवसर तारे, जजौं चरन सुख भरना ॥मोहि॥

अर्थ - वैशाख शुक्ल दशमी को आपने चार घातिया कर्मों का क्षय कर के केवल ज्ञान प्राप्त करके [भवि] भव्य जीवों को

[भवसर] संसार सागर से [तारे] पार किया । मैं आपके सुख [भरना] प्रदान करने वाले चरणों की पूजा करता हूँ ।
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक श्याम अमावस शिव तिय, पावापुर तैं वरना
गणफनिवृन्द जजें तित बहुविध, मैं पूजौं भयहरना ॥मोहि॥

अर्थ - कार्तिक [श्याम] वदि / कृष्ण अमावस्या को पावापुर से मोक्ष मोक्ष [वरना] प्राप्त किया । [गन] गणधर, [फनि] धरणेन्द्र आदि देवों के [वृन्द] समूह ने [तित] वहाँ [बहुविध] अनेक प्रकार से [जजे] पूजा करी, मैं भी भगवन संसार का भय नष्ट करने के लिए आपकी पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

गणधर, अशनिधर, चक्रधर, हलधर, गदाधर, वरवदा
अरु चापधर, विद्यासुधर तिरशूलधर सेवहि सदा ॥
दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं
सुकुमाल गुण मनिमाल उन्नत भालकी जयमला हैं ॥

अर्थ - गणधर, [असनिधर] वज्रधारक/इंद्र, [चक्रधर] चक्रवर्ती, [हलधर] हलधारक/बलदेव/बलभद्र, गदाधारक, [वदा] वक्ताओं में [वर] श्रेष्ठ, [चापधर] धनुष धारक, [विद्यासुधर] विद्याधारी, [तिरशूलधर] त्रिशूलधारी सदैव आपकी सेवा/करते हैं । आप दुखों को हरने वाले हैं, आनंद प्रदान करने वाले हैं, आप [तारन] स्वयं तरने और [तरन] अन्यो को तारने वाले हैं, आपके चरण बहुत [रसाल] सुंदर हैं । ऐसे सुकुमाल भगवान् वर्धमान जिनका [भाल] मस्तक गुण रुपी [मनिमाल] मणियों की माला से [उन्नत] ऊँचा हो रहा है, के गुणानुवाद की जयमाला कही जा रही है ।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन चंदवरं
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित संपंदन नयन धरं ॥

अर्थ - हे माता [त्रिशलानंदन] त्रिशला के पुत्र ! [हरिकृतवंदन] इन्द्रों द्वारा वंदित [जगदानंदन] जगत को आनंद प्रदान करने के लिए [चंदवरं] श्रेष्ठ चंद्रमा के समान है (चंद्रमा की चंदनी अत्यंत शीतलता प्रदान करती है), संसार के [ताप] दुखों को [निकंदन] नष्ट करने वाले हैं, [तनमन] शरीर और मन को [नन्दन] आनंद प्रदान करने वाले हैं, नेत्रों की पलके [संपंदन] संपंदन रहित हैं अर्थात् झपकती नहीं है, स्थिर नेत्रों के [धरं] धारक है ।

जय केवलभानु- कला- सदनं, भवि- कोक- विकाशन कंदवनं
जगजीत महारिपु मोहहरं, रजज्ञानदृगांवर चूर करं ॥१॥

अर्थ - आपकी जय हो ! आप [केवल] केवल-ज्ञान रुपी [भानु] सूर्य की [कला] किरणों के [सदनं] स्थान है, [भवि] भव्य जीव रुपी [कोक] चकवों, (रात्रि होते ही चकवे चकवी का वियोग हो जाता है सूर्य निकलते ही प्रातः उनका संयोग हो जाता है) और [कंदवनं] कमलों के वन को [विकाशन] प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य के समान हो, [जगजीत] संसार को जीतने वाले, [महारिपु] महान क्षत्रु [मोहहरं] मोहनीयकर्म को हरने वाले हैं, [रज] धूल के समान ज्ञानावरण, [दृगांवर] दर्शनावरण और अंतराय कर्म को [चूर] नष्ट करने वाले हैं ।

गर्भादिक मंगल मंडित हो, दुखदारिद को नित खंडित हो
जग माहि तुम्हीं सतपंडित हो, तुम ही भवभाव- विहंडित हो ॥२॥

अर्थ - गर्भादिक पांच [मंगल] कल्याणकों से आप [मंडित] सुशोभित हैं, दुखों और दरिद्रता को [नित] सदा [खंडित] नाशक हैं, जगत [माहि] में आप ही [सतपंडित] सच्चे विद्वान् हैं, आप ही संसारी भावों (रागद्वेषमिथ्यात्व आदि) के [विहंडित] नाशक हैं ।

हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो

लहि केवलधर्म प्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजतियो ॥३॥

अर्थ - [हरिवंश] इन्द्रों के समूह रूपी [सरोजन] कमलों को प्रकाशित करने के लिए आप [रवि] सूर्य के समान है (आपको देखकर इन्द्रों का समूह प्रसन्न हो जाता है) । आप ही [बलवंत] बलवान्, [महंत] महान और [कवि] सर्वज्ञ है ! केवलज्ञान [लहि] प्राप्त कर आपने धर्म का प्रकाश किया था । [अबलो] आज तक वही मार्ग [राजतियो] सुशोभित हो रहा है ।

पुनि आप तने गुण माहि सही, सुरमग्न रहैं जितने सबही
तिनकी वनिता गुनगावत हैं, लय-ताननिसों मनभावत हैं ॥४॥

अर्थ - [पुनि] और आपके गुणों में अच्छी प्रकार सभी [सुर मग्न] देवता भक्ति भाव से मग्न रहते हैं । उनकी [वनिता] देवियाँ तरह तरह से आपके गुणों का गान करती हैं। भिन्न भिन्न लयों से अपने [माननिसों] मन को [मनभावत] प्रसन्न करती हैं ।

पुनि नाचत रंग उमंग-भरी, तुअ भक्ति विषै पग एम धरी
इननं इननं इननं इननं, सुर लेत तहां तननं तननं ॥५॥

अर्थ - और वे देवांगनाएँ रंग और उमंग से भरी हुई आपकी भक्ति में नाचती हैं, वे अपने झुमरुओं से बंधे पैरों को स्थान स्थान पर चुन चुन कर रखती हैं जिससे इनन-इनन-इनन-इनन आवाज़ आती है और देवता भिन्न-भिन्न वाद्य यंत्रों को बजते हैं ।

घननं घननं घनघंट बजै, दमदं दमदं मिरदंग सजै
गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता ॥६॥

अर्थ - कहीं घंटे के बजने की घननं घननं शब्द की आवाज़ आ रही है, कोई मृदंग बजा रहा है तो दमदं दमदं दमदं की आवाज़ आ रही है, [गगनांगन] आकाश के आंगन के [गर्भगता] गर्भ में [सुगता] सारंगी बज रही है जिससे उसमे से [ततता ततता] तरह तरह के शब्द [अतता] उसमे से [वितता] निकल रहे हैं ।

धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसालजु छाजत है
सननं सननं सननं नभ में, इकरूप अनेक जु धारि भ्रमें ॥७॥

अर्थ - [गति] तबले के बजने से धृगतां-धृगतां ध्वनि आ रही है, [सुरताल] देवों की तालिया [रसाल] सुंदर लग रही है । उनके आकाश में इधर से उधर दौड़ते हुए, छाने से सननं सननं सननं की आवाज़ आ रही है । वे हैं तो एक रूप किन्तु भिन्न-भिन्न रूप धारण कर कार्य करते रहते हैं ।

किन्नर सुर बीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावत हैं
करताल विषै करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥८॥

अर्थ - किन्नर जाति के देव बीन बजा कर आपके उज्ज्वल यश को गा रहे हैं । हाथ की ताली बजने से कोई हाथ की ताली की आवाज़ कर रहा है, देवों के हाथ की तालियाँ विशाल शब्द कर रही हैं ।

इन आदि अनेक उछाह भरी, सुरभक्ति करें प्रभुजी तुमरी
तुमही जग जीवन के पितु हो, तुमही बिनकारनतें हितु हो ॥९॥

अर्थ - इस प्रकार अनेक उत्साह से भरे हुए देवता भगवन आपकी भक्ति कर रहे हैं । हे भगवन आप ही संसार के प्राणियों के पिता हैं, आप ही [बिनकारन] निस्वार्थ संसारी जीवों का कल्याण चाहने वाले हैं ।

तुमही सब विघ्न विनाशन हो, तुमही निज आनंदभासन हो
तुमही चितचिंतितदायक हो, जगमाहि तुम्हीं सब लायक हो ॥१०॥

अर्थ - आप ही सम्स्त विघ्नों का विनाश करने वाले हैं, आप ही [निज आनंदभासन] आत्मा के आनंद लेने वाले हैं आप ही [चितचिंतितदायक] चित में चिंतन करने योग्य हैं । संसार में आप ही सब के लायक हो । आप से आगे कोई नहीं है ।

तुमरे पन मंगल माहि सही, जिय उत्तम पुन्य लियो सबही
हमतो तुमरी शरणागत हैं, तुमरे गुन में मन पागत है ॥११॥

अर्थ - आपके [पन] पांच कल्याणकों से असंख्य जीवों ने उत्तम पुण्य का संचय किया था, हम उनमें शामिल नहीं हो पाये, किन्तु आपकी शरण में आये हैं तथा हमारा मन आपके गुणों में [पागत] उत्साहित/लीन है ।

प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसु कर्म नहीं नसिये

तबलों तुम ध्यान हिये वरतों, तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतो ॥१२॥

अर्थ - भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहा कि आप मेरे हृदय में सदा बसिये, जब तक अष्टकर्मों का नाश नहीं हो जाए, तब तक मैं आपका ध्यान अपने हृदय में धारण रखूँ। तब तक शास्त्रों के चिंतन में मेरा चित्त लगा रहे।

तबलों व्रत चारित चाहतु हों, तबलों शुभभाव सुगाहतु हों
तबलों सतसंगति नित रहो, तबलों मम संजम चित्त गहो ॥१३॥

अर्थ - मैं जब तक संसार में हूँ, तब तक व्रत और चारित्र की भावना चाहता रहूँ, तब तक मैं शुभ भावों को ही ग्रहण करूँ, (अशुभ भावों से बचा रहूँ) तब तक मेरी नित्य सतसंगति रहे, तब तक मेरे चित्त संजम को धारण करने में लगा रहे।

जबलों नहि नाश करौं अरिको, शिव नारि वरौं समता धरिको
यह द्यो तबलों हमको जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी ॥१४॥

अर्थ - जब तक मैं कर्म शत्रु का नाश न कर लूँ और जब तक समता धारण करके मोक्ष स्त्री का वरण न कर लूँ तब तक भगवन हमें ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हमें यह सब (सत्संगति, संजम, व्रत, चारित्र, जिनवाणी की सेवा) आपकी सेवा करने का अवसर अदि दीजिये हमारी इतनी सुन लीजिये।

घत्ता:- श्रीवीर जिनेशा नमित सुरेशा, नाग नरेशा भगति भरा
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वाँछित पावै शर्म वरा ॥

अर्थ - महावीर जिनेन्द्र भगवान् आपको [सुरेशा] इन्द्र, [नाग] धरणेन्द्र, [नरेशा] मध्य लोक के राजा भक्ति भाव से नमस्कार करते हैं। वृन्दावन कवि कहते हैं कि जो आपका ध्यान करते हैं उनके विघ्न नष्ट हो जाते हैं और श्रेष्ठ वाँछित (शर्म वरा) मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री सन्मति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीत
वृन्दावन सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत ॥

अर्थ - भगवान् महावीर के दोनों चरणों को प्रीति/भक्ति पूर्वक पूजता है वह चतुर नर मुक्ति रूपी नवनीत को प्राप्त करता है। अर्थात् उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री महावीर - जिन पूजन

(पं. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(हरिगीतिका)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन-वीर हैं
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान-धारण-धीर हैं ॥
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थकर स्वयं महावीर हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर जिनेन्द्र अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्!

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठः! ठः!

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर जिनेन्द्रा अत्र मम सन्निहितो भव! भव! वषट्!

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है
मल हरन निर्मल करन भागीरथी नीर-समान है ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

लिपटे रहें विषधर तदपि चन्दन विटप निर्विष रहे
त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघन कितने ही करें ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सुख-ज्ञान-दर्शन वीर जिन अक्षत समान अखंड हैं
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमशर-सुभट मारन सूर हैं
पर-गन्ध से विरहित तदपि निज-गन्ध से भरपूर हैं ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीति हो ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

युगपद्- विशद्- सकलार्थ झलके नित्य केवलज्ञान में
त्रैलोक्य- दीपक वीर-जिन दीपक चढ़ाऊँ क्या तुम्हें ॥
संतप्त- मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जो कर्म- ईंधन दहन पावक पुंज पवन समान हैं
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हैं ॥
संतप्त- मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का
सब त्याग समरस- निरत जिनवर सफल जीवन आपका ॥
संतप्त- मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

इस अर्घ्य का क्या मूल्य! अनर्घ्य पद के सामने
उस परम- पद को पा लिया हे! पतितपावन आपने ॥
संतप्त- मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंच-कल्याणक अर्घ्य

(सोरठा छन्द)

सित छटवीं आषाढ़, माँ, त्रिशला के गर्भ में
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूँ प्रभो ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्ल षष्ठ्यं गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभू
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ल त्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दशमी मंगसिर कृष्ण वर्द्धमान दीक्षा धरी
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्ण-दशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित दशमी वैशाख, पायो केवलज्ञान जिन
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम ॥

ॐ ह्रीं वैशाख-शुक्ल-दशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम
पावा तीरथधाम, दीपावली मनायं हम ॥

ॐ ह्रीं कार्तिक-कृष्ण-अमावस्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(दोहा)

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहि रखे असि-तीर
परम अहिसक आचरण, तदपि बने महावीर ॥

पद्धरि छन्द

हे! मोह-महादल-दलन-वीर, दुर्द्धर तप-संयम-धरण धीर
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-पंद ॥
अघहरण-करन मन-हरनहार, सुख-करन हरण-भवदुख अपार
सिद्धार्थ तनय तन रहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव ॥
मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्वेष जीते अशेष
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग ॥
षट्द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष
सर्वज्ञ वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचानें विशेष ॥
वे पहिचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह-रिपु का अभाव

वे प्रगट करें निज-पर-विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक ॥
निज आत्म में ही रहें लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण
उनका हो जाये क्षीण राग, वे भी हो जायें वीतराग ॥
जो हुए आज तक अरीहन्त, सबने अपनाया यही पंथ
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार ॥
जो तुमको नहि जाने जिनेश, वे पायें भव-भव-भ्रमण क्लेश
वे माँगें तुमसे धन समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज ॥
जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीन ॥
प्रभु पुण्यपाप से पार आप, बिन पहिचाने पायें संताप
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार ॥
तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हों जावें परमात्मरूप ॥
उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होयें सिद्ध ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान ॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

अक्षय - तृतीया - पवैयाजी

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

अक्षय-तृतीया पर्व दान का, ऋषभदेव ने दान लिया
नृप श्रेयांस दान-दाता थे, जगती ने यशगान किया ॥
अहो दान की महिमा, तीर्थकर भी लेते हाथ पसार
होते पंचाश्वर्य पुण्य का, भरता है अपूर्व भण्डार ॥

मोक्षमार्ग के महाव्रती को, भावसहित जो देते दान
निजस्वरूप जप वह पाते हैं, निश्चित शाश्वत पदनिर्वाण ॥
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में, पाया शिवपद अविनश्वर ॥
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु! तुम्हें नमन हो बारम्बार
गिरि कैलाश शिखर से तुमने, लिया सिद्धपद मंगलकार ॥
नाथ आपके चरणाम्बुज में, श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ
त्यागधर्म की महिमा पाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ
शुभ वैशाख शुक्ल तृतीया का, दिवस पवित्र महान हुआ
दान धर्म की जय-जय गूँजी, अक्षय पर्व प्रधान हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् अह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कर्मोदय से प्रेरित होकर, विषयों का व्यापार किया
उपादेय को भूल हेय तत्त्वों, से मैंने प्यार किया ॥
जन्म-मरण दुख नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है
चार कषायों की छलना ही, भवसागर दुःख भरती है ॥
भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत-सम चमक अथिरे
पुण्य-क्षीण होते ही अते, महा असाता के दिन फिर ॥
पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शील विनय व्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं

बाह्य क्रियाओ में उलझे तो, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं ॥

कामबाण के नाश हेतु मैं, अदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता

मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता ॥

क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, अदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता

भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता ॥

मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, अदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म फलों का वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है

अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है ॥

कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, अदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता

प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता ॥

महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं अदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ

अक्षय-तृतिया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता

यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता ॥

पद अनर्घ्य की प्राप्ति हेतु मैं, अदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री अदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण

औषधि भोजन अभय अरु, सद शस्त्रों का ज्ञान ॥

पुण्य पर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान
दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान ॥
दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार
दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार ॥
आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक, किये तपस्या-मय उपवास
मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छह मास ॥
मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात
मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात ॥
नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात
ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात ॥
श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार
विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार ॥
पंचाश्वर्य हुए प्रांगण में, हुआ गगन में जय-जयकार
धन्यधन्य श्रेयांस दान का, तीर्थ चलाया मंगलकार ॥
दान-पुण्य की यह परम्परा, हुई जगत में शुभ प्रारम्भ
हो निष्काम भावना सुन्दर, मन में लेश न हो कुछ दम्भ ॥
चार भेद हैं दान धर्म के, औषधि-शास्त्र-अभय-आहार
हम सुपात्र को योग्य दान दे, बनें जगत में परम उदार ॥
धन वैभव तो नाशवान हैं, अतः करें जी भर कर दान
इस जीवन में दान कार्य कर, करें स्वयं अपना कल्याण ॥
अक्षय तृतीया के महत्त्व को, यदि निज में प्रकटायेंगे
निश्चित ऐसा दिन आयेगा, हम अक्षय-फल पायेंगे ॥
हे प्रभु आदिनाथ! मंगलमय, हम को भी ऐसा वर दो
सम्यग्ज्ञान महान सूर्य का, अन्तर में प्रकाश कर दो ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय तृतीया पर्व की, महिमा अपरम्पार
त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

दीपावली - पवैयाजी

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश ॥
मोह नींद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश ॥
क्षमा, मार्दव, अर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ
त्याग, तपस्या, अकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्य हो जाओ ॥
एक धर्म का सार यही है समतामय ही बन जाओ
सब जीवों पर क्षमाभाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ ॥
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार
तीन लोक में गूँज रही है क्षमावाणी की जयजयकार ॥
ज्ञाता-द्रष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दुख का किंचित् लेश ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम ॥
'संते पुव्वणिबद्धं जाणदि' वह अबंध का ज्ञाता है
सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव बंधरहित हो जाता है ॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्ममरण क्षय कर मानूँ
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

सप्त भयों से रहित निशंकित निजस्वभाव में सम्यग्दृष्टि
मिथ्यात्वादिक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि ॥
तीन मूढ़ता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं ॥

उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वरूप को पहचानूँ ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता रे
जो संसार बंध का कारण वह कुशील जानता न रे ॥
कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं
वह निकांक्षित सम्यग्दृष्टि भव की वांछा रही नहीं ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रण का कारण है
शुद्धभाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण है ॥
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यग्दृष्टि वही ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है ॥
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि सदा उसकी ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

रागद्वेष मोहादिक आस्रव ज्ञानी को होते न कभी
ज्ञाताद्रष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी ॥
शुद्धात्म की भक्ति सहित जो पर भावों से नहीं जुड़ा
उपगूहन का अधिकारी है सम्यग्दृष्टि महान बड़ा ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म बन्ध के चारों कारण मिथ्या अविरति योग कषाय
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय ॥
जो उन्मार्ग छोड़कर निज को निज में सुस्थापित करता
स्थितिकरण युक्त होता वह सम्यग्दृष्टि स्वहित करता ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मागाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यपापमय सभी शुभाशुभ योगों से रहता वह दूर
सर्व संग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञानमयी सुख पूर ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ-वत्सल भाव
वात्सल्य का धारी सम्यग्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मागाय मोक्षफलप्राप्तयेफलं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानविहीन कभी भी पलभर ज्ञानस्वरूप नहीं होता
बिना ज्ञान के ग्रहण किए कर्मों से मुक्त नहीं होता ॥
विद्यारूपी रथ पर चढ़ जो ज्ञानरूप रथ चलवाता
वह जिन-शासन की प्रभावना करता शिवपथ दर्शाता ॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मागाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

उत्तम क्षमा स्वधर्म को, वन्दन करूँ त्रिकाल
नाश दोष पच्चीस कर, काटूँ भव जंजाल ॥

सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रत पूर्ण
इनके सम्यक् पालन से हो जाते हैं वसुकर्म विचूर्ण ॥
भाद्र मास में सोलहकारण तीस दिवस तक होते हैं
शुक्ल पक्ष में दशलक्षण पंचम से दस दिन होते हैं ॥
पुष्पांजलि दिन पाँच पंचमी से नवमी तक होते हैं
पावन रत्नत्रयव्रत अन्तिम तीन दिवस के होते हैं ॥
आश्विन कृष्ण एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है
उत्तमक्षमा धार उर श्रावक मोक्षमार्ग को जोता है ॥
भाद्र मास अरु माघ मास अरु चैत्र मास में आते हैं
तीन बार आ पर्वराज जिनवर संदेश सुनाते हैं ॥
'जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं यह तो है व्यवहार कथन
है अबद्ध अस्पृष्ट कर्म से निश्चय नय का यही कथन ॥
जीव-देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे

जीव देह तो पृथक्-पृथक् हैं निश्चय नय कह रहा अरे ॥
निश्चय नय का विषय छोड़ व्यवहार माहि करते वर्तन
उनको मोक्ष नहीं हो सकता और न ही सम्यग्दर्शन ॥
'दोण्हवि णयाण भणियं जाणई' जो पक्षातिक्रान्त होता
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकलकर्म मल को खोता ॥
ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोड़कर जब अज्ञान रूप होता
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता ॥
'जह विस भुव भुज्जंतो वेज्जो' मरण नहीं पा सकता है
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है ॥
मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्षमार्ग है कभी नहीं
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्षमार्ग है सही-सही ॥
मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगों में जो ममता करता है
मोक्षमार्ग तो बहुत दूर भव-अटवी में ही भ्रता है ॥
प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठों प्रकार के विषकुम्भ
इनसे जो विपरीत वही हैं मोक्षमार्ग के अमृतकुम्भ ॥
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नहीं करता
परभावों से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता ॥
कोई कर्म किसी जीव को है सुख-दुख दाता नहीं समर्थ
जीव स्वयं ही अपने सुख-दुख का निर्माता स्वयं समर्थ ॥
क्रोध, मान, माया, लोभादिक नहीं जीव के किंचित् मात्र
रूप, गंध, रस, स्पर्श शब्द भी नहीं जीव के किंचित् मात्र ॥
देह संहनन संस्थान भी नहीं जीव के किंचित् मात्र
राग-द्वेष-मोहादि भाव भी नहीं जीव के किंचित् मात्र ॥
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र
नित्य, ध्रौव्य, चिद्रूप, निरंजन, दर्शनज्ञानमयी चिन्मात्र ॥
वाक् जाल में जो उलझे वह कभी सुलझ ना पायेंगे
निज अनुभव रसपान किये बिन नहीं मोक्ष में जायेंगे ॥
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का स्रोत
अनुभव परमसत्य शिव सुन्दर अनुभव शिव से ओतप्रोत ॥
निज स्वभाव के सन्मुख हो जा, पर से दृष्टि हटा भगवान

पूर्ण सिद्धपर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण ॥
 ज्ञान-चेतना सिंधु स्वयं तू स्वयं अनन्तगुणों का भूप
 त्रिभुवनपति सर्वज्ञ ज्योतिमय चिंतामणि चेतन चिद्रूप ॥
 यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु! मैत्री भाव हृदय धारूँ
 जो विपरीत वृत्तिवाले हैं उन पर मैं समता धारूँ ॥
 धीरे-धीरे पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव संहारूँ
 भव-तन भोगों से विरक्त हो निजस्वभाव को स्वीकारूँ ॥
 दशधर्मों को पढ़ सुनकर अन्तर में आये परिवर्तन
 व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन ॥
 राग-द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ
 जो संकल्प-विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ ॥
 अणु भर भी यदि राग रहेगा नहीं मोक्ष पद पाऊँगा
 तीन लोक में काल अनंता राग लिये भरमाऊँगा ॥
 राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा
 शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वयं सिद्ध पद पाऊँगा ॥
 पर्यूषण में दूषण त्यागूँ बाह्य क्रिया में रमे न मन
 शिव पथ का अनुसरण करूँ मैं बन के नाथ सिद्ध नन्दन ॥
 जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मैं व्यवहार धर्म पालूँ
 निज शुद्धात्म पर करुणा कर निश्चय धर्म सहज पालूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोक्ष-मार्ग दर्शा रहा, क्षमावाणी का पर्व
 क्षमाभाव धारण करो, राग-द्वेष हर सर्व ॥
 (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

वीरशासन - जयन्ती - पवैयाजी

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ
 वर्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ॥
 पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ
 जगमग जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुजजीवन कर लूँ ॥

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ ॥
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ
परभावों का राग तोड़कर, निजस्वभाव में मैं अड़ लूँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्तश्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्तश्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्तश्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्
सन्निधि करणं

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निजस्वभाव मय जल भर लूँ
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूँ ॥
दीपावलि के पुण्य दिवस पर, वर्धमान पूजन कर लूँ
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं
निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ
चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं
निर्वपामीति स्वाहा

अजर अमर अक्षय अविकल, अनुपम अक्षतपद उर धर लूँ
भवसागर तर मुक्ति वधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ
काम-बाण की व्यथा नाश कर मैं निष्काम रूप धर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध नैवेद्य भाव उर में धर लूँ
चिर-अतृप्ति का रोग नाशकर, सहज तृप्त निज पद वर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं

निर्वपामीति स्वाहा

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतिरु कर लूँ
मिथ्या-भ्रतममोह नाशकर, निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णमावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं
निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यभाव की धूप जलाकर, घाति-अघाति कर्म हर लूँ
क्रोधमान-माया-लोभादि, मोह-द्रोह सब क्षय कर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णमावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति
स्वाहा

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्धगति, पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णमावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति
स्वाहा

गुण अनन्त प्रकटाऊँ अपने, निज अनर्घ्य पद को वर लूँ
शुद्धस्वभावी ज्ञान-प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ ॥दीपा॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णमावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा

शुभ आषाढ शुक्ल षष्ठी को, पुष्पोत्तर तज प्रभु आये
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये ॥
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुण्डलपुर में आनन्द हुआ
वर्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुख-द्वंद्व हुआ ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई
नृप सिद्धार्थराज हर्षये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई ॥
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक
नृत्य वाद्य मंगल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मगसिर कृष्ण दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार
लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्यधन्य प्रभु जय-जय कार ॥
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण
वन में जाकर दीक्षा धारी, निज में लीन हुए भगवान ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान
कर बैसाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान ॥
सर्व द्रव्यगुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान
वर्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्धमान प्रभु मुक्त हुए
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति-रमा से युक्त हुए ॥
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा, कर अघातिया का अवसान
शेष प्रकृति पच्चासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी
इन्द्र-सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी ॥
केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार ॥
पावापुर उद्यान पधारे, योगनिरोध किया साकार
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार ॥
सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार
जल-थल-नभ में देवों द्वारा गूँज उठी प्रभु की जयकार ॥
इन्द्रादिक सुर हर्षित आये, मन में धारे मोद अपार
महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मंगलकार ॥
अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया ॥
तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर

मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर ॥
 अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया
 सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया ॥
 कार्तिक कृष्ण अमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था
 उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था ॥
 रत्न-ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मंगल गाये
 रत्न-दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये ॥
 सब ने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ
 वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ ॥
 प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी
 क्षपकश्रेणि चढ़ शुक्लध्यान से हुए देव अन्तर्यामी ॥
 इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्य केवलज्ञान हुआ
 केवलज्ञान लक्ष्मी पाई, पद सर्वज्ञ महान हुआ ॥
 देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न-ज्योति का किया प्रकाश
 हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास ॥
 प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अति पावन
 परम पूज्य निर्वाणभूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन ॥
 अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है
 महावीर निर्वाण महोत्सव, धू मचाता आत्मा है ॥
 हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी
 भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थकर, जिनराज विश्वनामी ॥
 मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले
 भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले ॥
 भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने
 जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुख उतने ॥
 अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पाई है
 भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आई है ॥
 अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ
 दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मंगल गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

क्षमावाणी - पवैयाजी

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी ॥
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी ॥
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय-जयकार हुआ
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर-घर मंगलाचार हुआ ॥
श्री मुनि चरणकमल में वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन
भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि
करणं

जन्म-मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण
राग-द्वेष परिणति अभाव कर निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव सन्ताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण
देह भोग भव से विरक्त हो निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षयपद अखंड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण
हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण
विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपज्योति करता अर्पण
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ति प्राप्ति हित उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण
मैं सम्यक्चरित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा

शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

वात्सल्य के अंग की, महिमा अपरम्पार
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की, गूँजी जय-जयकार ॥

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मंत्री थे चार

बलि, प्रह्लाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार ॥

जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षाया ॥
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निदा की
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की ॥

किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये
वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हारे, जीत नहीं पाये ॥
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये
खड़ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये ॥
प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन
देश-निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण ॥

चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर ॥
मुँह-माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर ॥
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये ॥
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया
भीषण अग्नि जलाई चारों ओर द्वेष से कार्य किया ॥
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए ॥
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोंग विचित्र
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र ॥

पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर ॥
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये ॥
बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला ॥
हँसकर मुनि ने एक पाँव में ही सारी पृथ्वी नापी

पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी ॥
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रख
क्षमा-क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रख ॥
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियों की रक्षा की
जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी ॥
नवधा भक्तिपूर्वक सबने मुनियों को आहार दिया
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया ॥
रक्षासूत्र बाँधकर तब जन-जन ने मंगलाचार किये
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये ॥
समक्ति के वात्सल्य अंग की महिमा प्रकटी इस जग में
रक्षा-बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग में ॥
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा दिन था रक्षासूत्र बाँधा कर में
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में ॥
प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया
अष्ट कर्म बन्धन को हरकर इस भव से ही मोक्ष लिया ॥
सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार
स्वर्गमोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार ॥
धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ
रहे शुद्ध आचरण सदा ही धर्ममार्ग अनुकूल चलूँ ॥
आत्मज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज-पर को मैं पहिचानूँ
समक्ति के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ ॥
तभी सार्थक जीवन होगा सार्थक होगी यह नर देह
अन्तर घट में जब बरसेगा पावन परम ज्ञान रस मेह ॥
पर से मोह नहीं होगा, होगा निज आत्म से अति नेह
तब पायेंगे अखंड अविनाशी निजसुखमय शिवगेह ॥
रक्षा-बंधन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान
रक्षा-बंधन पर्व ज्ञान का रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥
रक्षा-बंधन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान
रक्षा-बंधन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन

मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

रक्षा बन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार
मन-वचन जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

रक्षाबन्धन - पवैयाजी

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थकर नामी ॥
श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्वपर प्रकाशक गुणधामी
सकल लोक के ज्ञाता-दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी ॥
महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्ण एकम
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम ॥
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण में मंगलकार
खिरी दिव्यध्वनि शासन-वीर जयन्ती-पर्व हुआ साकार ॥
प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव
सम्यग्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग-द्वेष का करूँ अभाव ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता
ध्यानहीन मुनि निज अत्म का त्यों अनुभवन नहीं करता ॥
शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं ॥
शासन वीर जयन्ती पर चंदन अर्पित कर ध्यान करूँ ॥खिरी॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्यागूँ मैं निर्ग्रन्थ बनूँ
जीवन मरण मित्र अरि सुख दुख लाभ हानि में साम्य बनूँ ॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर अक्षत भेंट स्वध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान् ॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेंट पुष्प निज ध्यान करूँ
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ ब्रह्म स्वरूप
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मैं परम अनूप ॥
शासन वीर जयन्ती पर नैवेद्य चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्वपर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निजमूर्ति अमूर्ति महान
चिदानन्द टंकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता भगवान् ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं दीप चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक् आत्मा ज्ञान प्रवीण ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं धूप चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम
भेदज्ञान की महाशक्ति से पाऊँगा अनन्त विश्राम ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं सुफल चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

मात्र वासनाजन्य कल्पना है परद्रव्यों में सुखबुद्धि
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पाई किंचित् नहीं विशुद्धि ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं अर्घ्य चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

विपुलाचल के गगन को, वन्दूँ बारम्बार
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि, जहाँ हुई साकार ॥१॥

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार
परिषह उपसर्गों को जय कर देश-देश में किया विहार ॥
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरितट आये
क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्ल ध्यान से कर्म घातिया विनसाये ॥
स्वपर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ
इन्द्रादिक को समवशरण रच मन में हर्ष महान हुआ ॥
बारह सभा जुड़ीं अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला
जनमानस को प्रभु की दिव्यध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला ॥
छ्यसठ दिन तक रहे, मौन प्रभु दिव्यध्वनि का मिला न योग
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त-नैमित्तिक संयोग ॥
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया ॥
बड़ी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वह लाया
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया ॥
तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी
रच डाली अन्तरर्मुहूर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी ॥
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार
सब जीवों ने सुनी दिव्यध्वनि अपने उपादान अनुसार ॥
विपुलाचल पर समवशरण का हुआ आज के दिन विस्तार
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूँजा नभ में जय-जयकार ॥
जन-जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार

जियो और जीने दो का जीवन संदेश हुआ साकार ॥
 धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार
 ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार ॥
 घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष
 जीव मात्र को निज-सम समझो यही वीर का था उपदेश ॥
 इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूँथी जिनवाणी
 इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी ॥
 मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का वह चला प्रवाह
 पाप ताप संताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह ॥
 प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार
 निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार ॥
 तीन लोक षट् द्रव्यमयी है सात तत्त्व की श्रद्धा सार
 नव पदार्थ छह लेश्य जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार ॥
 समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार
 परम शुद्ध निज आत्मतत्त्व आश्रय से हो जाओ भव पार ॥
 उस वाणी को मेरा वंदन उसकी महिमा अपरम्पार
 सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय-जयकार ॥
 वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार
 काललब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोड़ा संसार ॥

ॐ ह्रीं श्रीं सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दिव्यध्वनि प्रभु वीर की देती सौख्य अपार
 आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार ॥
 (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्रुतपंचमी - पवैयाजी

स्याद्वादमय द्वादशांगयुत माँ जिनवाणी कल्याणी
 जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी ॥
 जय जय जय हितकारी शिवसुखकारी माता जय जय जय
 कृपा तुम्हारी से ही होता भेदज्ञान का सूर्य उदय ॥
 श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान

भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट्खण्डगम रचा महान ॥
अंकलेश्वर में ग्रंथराज यह पूर्ण हुआ था आज के दिन
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन ॥
ज्येष्ठशुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जयजयकार हुआ
श्रुतपंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ
साम्यभाव पीयूष पान कर जन्मजरामय दुख हर लूँ ॥
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ
षट्खण्डगम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ
भव दावानल के ज्वालामय अघसंताप ताप हर लूँ ॥श्रुत॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ ॥श्रुत॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित कर लूँ
महाशील गुण के प्रताप से मैं कंदर्पदर्प हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त कर लूँ
अमल अतीन्द्रिय निजस्वभाव से दुखमय क्षुधाव्याधि हर लूँ ॥श्रुत॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्धस्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं कर लूँ
मोहतिमिर अज्ञान नाश कर निज कैवल्य ज्योति वर लूँ ॥श्रुत॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय अज्ञानांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भर लूँ
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ ॥श्रुत॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ
अजर अमर अविकल अविनाशी पदनिर्वाण प्राप्त कर लूँ ॥श्रुत॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय महा मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव दिव्य अर्घ्य ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ
भव-समुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ्य पद मैं वर लूँ
श्रुत पंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ
षट्खण्डगम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का
गूँजा जय-जयकार जगत में जिनश्रुत के अवतार का ॥टेक॥
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा ॥
हुए केवली अरु श्रुतकेवलि ज्ञान अमर फलता रहा
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञानदीप जलता रहा ॥
भव्यों में अनुराग जगाता मुक्तिवधू के प्यार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥१॥
गुरु-परम्परा से जिनवाणी निर्झर-सी झरती रही
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही ॥
किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरणशक्ति हरती रही
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही ॥
द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥२॥

शिष्य भूतबलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की
 जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत-विद्या विमल प्रदान की ॥
 ताड़ पत्र पर हुई अवतरित वाणी जनकल्याण की
 षट्खण्डगम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की ॥
 ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुर-नर मंगलाचार का
 श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥३॥
 धन्य भूतबली पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की
 लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की ॥
 देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की
 धन्यधन्य जिनवाणी माता निज-पर भेद विचार की ॥
 ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का
 श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥४॥
 धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक
 जय धवला जिनसेन वीरकृत उत्तम साठ हजार श्लोक ॥
 महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक
 विजयधवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक ॥
 षट्खण्डगम टीकाएँ पढ़ मन होता भव पार का
 श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥५॥
 फिर तो ग्रन्थ हजारों लिखे ऋषि-मुनियों ने ज्ञानप्रधान
 चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान ॥
 पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान
 एक्सेरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान ॥
 यह परिणाम नापता है वह बाह्य चरित्र विचार का
 श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥६॥
 जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें
 सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद-ज्ञान निधि को पायें ॥
 रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें
 मोक्षमार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें ॥
 धन्यधन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का
 श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥७॥

गूँजा जय-जय नाद जगत में जिनश्रुत जय-जयकार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डगमाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रुतपंचमी सुपर्व पर, करो तत्त्व का ज्ञान
आत्मतत्त्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

आचार्यप्रवरश्री कुंदकुंदस्वामी पूजन

(कवियत्री अरुणा जैन 'भारती' कृत)

(नरेंद्र छंद)

मूलसंघ को दृढ़तापूर्वक, किया जिन्होंने रक्षित है
कुंदकुंद आचार्य गुरु वे, जिनशासन में वन्दित हैं ॥
काल-चतुर्थ के अंतिम-मंगल, महावीर-गौतम गणधर
पंचम में प्रथम महामंगल, श्री कुंदकुंद स्वामी गुरुवर ॥
उन महागुरु के चरणों में, अपना शीश झुकाता हूँ
आह्वानन करके त्रियोग से, निज-मन में पधराता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिन् ! अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्! (आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठः! ठः! (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्

अष्टक

भूलकर निजभाव को, भव-भव किया मैंने भ्रमण
है समर्पित जल चरण में, मिटे अब जामन-मरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामिति स्वाहा

संतप्त हूँ भव-ताप से, तन-मन सहे दुःसह जलन

मिले शीतलता प्रभो! अब, दुःख हों सारे शमन ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

ले अखंडित शुभ्र-तंदुल, पूजता हूँ तुम चरण
मिले मेरा पद मुझे अब, इसलिए आया शरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मिले शील-स्वभाव मेरा, नष्ट हो शत्रु-मदन
मिटें मन की वासनायें, पुष्प हैं अर्पित चरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन
मुक्ति मिल जाए मुझे भी इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

यह भूख की ज्वाला प्रभो! बढ़ती रही हर एक क्षण
नैवेद्य अर्पित कर रहा, हो क्षुधा-व्याधि का हरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह-ममता से सदा, मिथ्यात्व में होता रमण
मार्ग सम्यक् अब मिले, यह दीप है अर्पण चरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट कर्म-प्रकृतियों में, ही उलझता है ये मन

ऐसा हो पुरुषार्थ अब, हो जाए कर्मादि-दहन ॥

पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन

मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मोक्षफल पाने को हो, रत्नत्रय की अब लगन

आत्मा बलवान हो, फल से अतः करता यजन ॥

पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन

मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्घ्य मनहारी बना, अष्टांग से करता नमन

पद-अनर्घ्य की प्राप्ति को अब, हो सदा स्वातन्त्र्यमरण ॥

पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन

मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(जोगीरासा छन्द)

साक्षात् सीमन्धर-वाणी, सुनी जिन्होंने क्षेत्र-विदेह

योगिराज सम्राट् स्वयं वे, ऋद्धिधारी गए सदेह ॥

सरस्वती के वरदपुत्र वे, उनकी प्रतिभा अद्भुत थी

सीमन्धर-दर्शन में उनकी, आत्मशक्ति ही सक्षम थी ॥

चौरासी पाहुड़ लिखकर के, जिन-श्रुत का भंडार भरा

ऐसे ज्ञानी-ध्यानी मुनि ने, इस जग का अज्ञान हरा ॥

श्री कुंदकुंद आचार्य यदि, हमको सुज्ञान नहीं देते

कैसे होता ज्ञान निजातम्, हम भी अज्ञानी रहते ॥

बहुत बड़ा उपकार किया जो, परम्परा-श्रुत रही अचल

वर्ना घोर-तिमिर मोह में ही, रहते जग में जीव सकल ॥

'समयसार' में परमात्म, बनने का साधन-सार भरा
 'पंचास्तिकाय' में श्री गुरुवर ने, द्रव्यों का निर्देश करा ॥
 'प्रवचनसार' रचा स्वामी ने, भेदज्ञान बतलाने को
 'मूलाचार' लिखा मुनि-हित, आचार-मार्ग दर्शाने को ॥
 'नियमसार' अरु 'रयणसार' में, आत्मज्ञान के रत्न महान
 सिंह-गर्जना से गुरुवर की, हुआ प्राणियों का कल्याण ॥
 हैं उपलब्ध अष्टपाहुड़ ही, लेकिन वे भी हैं अनमोल
 ताड़पत्र पर हस्तलिखित हैं, कौन चुका सकता है मोल ॥
 भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवलि, क्रमशः उनके शिष्य हुए
 शास्त्रदान और माँ की लोरी, से ही स्वाश्रित मुनि हुए ॥
 वीर समान ही पाँच नाम हैं, इन महिमाशाली गुरु के
 कुंदकुंद वक्रग्रीव गृद्धपिच्छ एलाचार्य पद्मनन्दि ये ॥
 ऐसे देव-स्वरूपी साधु, यदा कदा ही होते हैं
 जिनके पथ पर चलकर, लाखों जीव मुक्त हो जाते हैं॥
 उन महान गुरु के चरणों में, श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं
 गुरु-आज्ञा से पूजा रचकर, 'अरुणा' मन में हर्षित है ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामिने जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

आचार्य कुंदकुंद गुरुवर का, जीवन सार महान्
 जो भी यह पूजा पढ़ें उनका हो कल्याण ॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

महाअर्घ्य

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों
 आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों ॥
 अरहन्त भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रची गनी
 पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी ॥
 सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा

जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहि कदा ॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजुँ
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजुँ ॥
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजुँ सदा
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजुँ, बीस क्षेत्र विदेह के
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिव गेह के ॥

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय
सर्व पूज्य पद पूजहुँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय,
दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्येभ्य, त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य
चैत्यालयेभ्यो पंचमेरु अशीतिचैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वर द्वीपस्थद्विपंचाशजिनालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर,
गिरनारगिरि, कैलाशगिरि, चम्पापुर, पावापुर-अदिसिद्धक्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्र स्थित सीमंधरादि
विद्यमान विंशति तीर्थकरेभ्यो, ऋषभादि चतुर्विंशति-तीर्थकरेभ्यो, भगवज्जिन सहस्राष्ट्र नामेभ्यश्च अनर्घ्यपद
प्राप्तये महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शांति - पाठ

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी, शीलगुणव्रत संयमधारी
लखन एक सौ आठ विराजे, निरखत नयन कमल दल लाजे ॥

अर्थ : शांतिनाथ का मुख चंद्रमा के समान है, वे शील, गुणों, व्रतों और संयमधारी हैं । आपका शरीर १०८ लक्षणों से सुशोभित हैं, आपके नयनों को देखते ही कमलों का दल भी लज्जित होता है अर्थात् आपके नेत्र कमल से भी अधिक सुंदर हैं ।

पंचम चक्रवर्ती पदधारी, सोलम तीर्थकर सुखकारी
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमो शांतिहित शांति विधायक ॥

अर्थ : पंचम चक्रवर्ती पद के धारक एवं सोलहवे तीर्थकर के सुख करने वाले थे, जिन के नायक इंद्र और राजा आपकी पूजा शान्ति के लिए करते थे, शांतिनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुंदुभि असन वाणी सरसा
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥

अर्थ : भगवान के आठ प्रातिहार्य - **अशोक वृक्ष** - भगवान् समवशरण में उपस्थित समस्त जीवों को शोक रहित होने का प्रतीक, अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान होते हैं । **पुष्पवर्षा** - पुष्पों की वर्षा देवों द्वारा होती है । **दुंदुभि** - देवों द्वारा बाजे बजाये जाते हैं । **सिंहासन** - भगवान् समवशरण में सिंहासन के ऊपर रखे कमल से चार अंगुल ऊपर अंतरिक्ष में विराजमान होते हैं । **दिव्य ध्वनि** - आत्मा को दिव्य ज्ञान द्वारा आनंदित करने वाली दिव्य ध्वनि का खिरना । **तीन-छत्र** - भगवान् के त्रिलोक के स्वामी के उद्घोषक, उनके सिर के ऊपर तीन छत्र होते हैं, सबसे ऊपर छोटा, सबसे नीचे सबसे बड़ा और बीच में मंझला । **चमर** - देवताओं / इन्द्रों द्वारा ६४ चमर भगवान् के ऊपर डोरे जाते हैं । **भामंडल** - भगवान् की का और, जिसमें समवशरण में

उपस्थित प्रत्येक भव्यजीव को अपने अपने सात भव - तीन भूत, एक वर्तमान और तीन भविष्यत स्पष्ट दिखते हैं ।

शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजों सिरनाई
परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ें जिन्हें पुनि चार संघ को ॥

अर्थ : हे शांतिनाथ जिनेश! आप शांति और सुख प्रदान करने वाले हैं, तीनोंलोकों में पूज्य हैं, मैं मस्तक झुका कर आपकी पूजा करता हूँ । भगवन हम सब को जो ये शांति पाठ पढ़ रहे हैं और चतुरसंघ; - मुनि, आर्यिक, श्रावक, श्राविका को परम शान्ति प्रदान कीजिये ।

पूजें जिन्हें मुकुटहार किरीट लाके, इन्द्रादिदेव अरु पूज्यपदाब्ज जाके
सो शांतिनाथ वर वंश-जगत्प्रदीप मेरे लिए करहु शांति सदा अनूप ॥

अर्थ : मुकुट, हार, रत्नों आदि के धारक इन्द्रादि देव, जिनके कमल चरणों की पूजा करते हैं, ऐसे शांतिनाथ भगवान् जो श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए, संसार को दीपक के समान प्रकाशित करने वाले दीपक के समान, मेरे को अनुपम शांति सदा प्रदान करें ।

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों को यतिनायकों को
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजे सुखी हे जिन शांति को दे ॥

अर्थ : हे शांतिनाथ जिनेन्द्र भगवन आप सभी पूजा करने वाले, हमारे रक्षकों, मुनियों और आचार्यों को, राजा, प्रजा और राष्ट्र, देश को शांति प्रदान कर सुखी कीजिये ।

होवे सारी प्रजा को सुख, बलपुत हो धर्मधारी नरेशा
होवे वरषा समय पे, तिलभर न रहे व्याधियों का अन्देशा ॥
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल मारी
सारे ही देश धारै, जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥

अर्थ : हे भगवन समस्त प्रजा सुखी, राजा धर्मधारी और बलवान समुचित वर्षा समय पर हीनाधिक नहीं, रंचमात्र भी रोगों का अंदेशा नहीं, चोरी नहीं हो और आग नहीं लगे, सारे में अच्छा समय वरते (रहे), अकाल कभी नहीं पड़े, हैजा आदि भी नहीं फैले, सारे देश अर्थात् विश्व सदा सुखकारी जैन धर्म को धारण करें ।

घाति कर्म जिन नाश करे, पायो केवलराज
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

अर्थ : ऋषभादि भगवान् जिन्होंने घातिया कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे समस्त जगत को शांति प्रदान करें ।

(तीन बार शांति धारा देवें)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगति का
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाँकूँ सभी का ॥
बोलूँ प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊँ
तौलौ सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौलौ न पाऊँ ॥

अर्थ : भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहा है कि, शास्त्रों को पढ़ कर लोग सुखी हो । सत्संगती का सब को लाभ हो, अच्छे आचरणों वालों की प्रशंसा करे, सभी के दोषों को ढाँकूँ, जब भी बोलूँ हितकारी प्यारे वचन बोलूँ, आपकी वीतराग मुद्रा का निरंतर चिंतन करूँ । मैं तब तक आपके चरणों की सेवा करता रहूँ जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाए ।

तब पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में
तबलौं लीन रहौ प्रभु, जबलौ पाया न मुक्ति पद मैंने ॥

अर्थ : प्रभु, आपके चरण मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके पवित्र चरणों में तब तक लीन रहे जब तक मुझे मुक्ति प्राप्त न हो जाए ।

अक्षर पद मात्रा से दूषित जो कछु कहा गया मुझसे
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुःख से ॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तब चरण शरण बलिहारी
मरणसमाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी ॥

अर्थ : प्रभु, मैंने अभिषेक पूजन और शांति पाठ किया है, इनमे मेरे से जो अक्षर, पद और मात्रा में दूषित कहा गया हो उन सब दोषों के लिए मुझे क्षमा कीजिये तथा करुणा कर संसार के दुखों से छुड़ा दीजिये । हे संसार के बंधु जिनेश्वर मैं आपके चरणों की शरण में अपना सब कुछ न्यौछावर, समर्पित करता हूँ, आपके चरणों की शरण के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए । भगवन मेरी अत्यंत कठिन समाधि मरण हो मेरे कर्मों का क्षय हो, सुखकारी रत्न त्रय की प्राप्ति हो ।

(पुष्पांजलि क्षेपण)

(यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

शांति - पाठ - भाषा

(जुगल किशोर)

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करें
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करें ॥
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी
हम भक्तिवश तुम चरण आगै, जोड़ लीने हाथजी ॥१॥

दुःख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही ॥
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूँ कहा
मुझ आप-सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा ॥२॥

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आत्मापियो
तिस दाहतैं अकूलित चिरतैं, शान्तिथल कहूँ ना लियो ॥
तुम मिले शान्तिस्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपती
वसु कर्म मेरे शान्त कर दो, शान्तिमय पंचमगती ॥३॥

जबलौं नहीं शिव लहूँ, तबलौं देह यह नर पावना
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत अभ्यास आत्म भावना ॥
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रुलत जगजाल में

अब शरण आयो नाथ युग कर, जोर नावत भाल मैं ॥४॥

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहि अंत ॥५॥

विसर्जन - पाठ

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय ॥

पूजन विधि जानूँ नहीं, नहि जानूँ आह्वान
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान ॥

मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥

तुम चरणण ढिग आयके, मैं पूजूं अतिचाव
आवागमन रहित करो, रमूं सदा निज भाव ॥

स्तुति - मैं तुम चरण

(चौपाई छन्द)

मैं तुम चरण-कमल गुणगाय, बहुविधि-भक्ति करूँ मनलाय
जनम-जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१॥

कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन-मरन मिटावो मोय
बार-बार मैं विनती करूँ, तुम सेयां भवसागर तरूँ ॥२॥

नाम लेत सब दुःख मिट जाय, तुम दर्शन देख्यो प्रभु अथ
तुम हो प्रभु देवनि के देव, मैं तो करूँ चरण की सेव ॥३॥

जिन-पूजा तें सब सुख होय, जिन-पूजा-सम अवर न कोय
जिन-पूजा तें स्वर्गविमान, अनुक्रम तें पावें निर्वाण ॥४॥

मैं आयो पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज
पूजा करके नवाऊँ शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥५॥

(दोहा छन्द)

सुख देना दुःख मेटना, यही तुम्हारी बान
मो गरीब की वीनती, सुन लीजो भगवान ॥१॥

दर्शन करते देव के, आदि मध्य अवसान
सुरगनि के सुख भोगकर, पाऊँ मोक्ष निधान ॥२॥

जैसी महिमा तुम-विषै, और धरे नहि कोय
जो सूरज में ज्योति है, नहि तारागण सोय ॥३॥

नाथ तिहारे नाम तें, अघ छिनमाँहि पलाय
ज्यों दिनकर-परकाश तें, अंधकार विनशाय ॥४॥

बहुत प्रशंसा क्या करूँ, मैं प्रभु बहुत अजान
पूजाविधि जानूँ नहीं, शरन राखो भगवान् ॥५॥

भगवान - महावीर - आरती

ऊँ जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो ॥

सिद्धारथ घर जन्मे, वैभव था भारी
बाल ब्रह्मचारी व्रतपाल्यौ तपधारी ॥१॥

आत्म ज्ञान विरागी, सम दृष्टि धारी
माया मोह विनाशक, ज्ञान ज्योति जारी ॥२॥

जग में पाठअहिसा, आपहि विस्तार्यो
हिंसा पाप मिटाकर, सुधर्म परिचार्यो ॥३॥

इह विधि चाँदनपुर में, अतिशय दरशायो
ग्वाल मनोरथ पुर्यो दूधगाय पायो ॥४॥

अमर चन्द को सपना, तुमने प्रभु दीना
मन्दिर तीन शिखर का निर्मित है कीना ॥५॥

जयपुर नृप भीतेरे, अतिशय के सेवी
एक ग्राम तिन दीनों, सेवा हित यह भी ॥६॥

जो कोई तेरे दर पर, इच्छ कर आवे
होय मनोरथ पूरण, संकट मिट जावे ॥७॥

निशि दिन प्रभु मन्दिर में, जगमग ज्योति जैरे
हम सब चरणों में, आनन्द मोद भैरे ॥८॥

पंच - परमेष्ठी - आरती

यह विधि मंगल आरती कीजे, पंच परम पद भजसुख लीजे

पहली आरती श्री जिनराजा, भव दधि पार उतार जिहाजा
यह विधि मंगल आरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

दूसरी आरती सिद्धन केरी, सुमरण करत मिटे भव फेरी

यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

तीजी अरती सूर मुनिदा, जनम मरन दुःख दूर करिदा
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

चौथी अरती श्री उवझाया, दर्शन देखत पाप पलाया
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

पांचवी अरती साधू तिहारी, कुमति विनाशक शिव अधिकारी
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

छट्टी अरती श्री बाहुबली स्वामी, करी तपस्या हुए मोक्ष गामी
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

सातवीं अरती श्री जिनवाणी, ज्ञानत सुरग मुक्ति सुखदानी
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

अरती करूं सम्मेद शिखर की, कोटि मुनि हुए मोक्ष गामी जी
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परमपद भज सुख लीजे

जो यह अरती करे करावे, सौ नर-नारी अमर पद पावें
यहविधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

सौने का दीप कपूर की बाती, जगमग ज्योति जले सारी राती
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

संध्या कर के अरती कीजे, अपनों जनम सफल कर लीजे
यह विधि मंगल अरती कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे

भगवान- अदिनाथ- चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करू प्रणाम
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम ॥१॥

सर्व साधु और सरस्वती जिन मन्दिर सुखकार
अदिनाथ भगवान को मन मन्दिर में धार ॥२॥

जै जै अदिनाथ जिन स्वामी, तीनकाल तिहूं जग में नामी
वेष दिगम्बर धार रहे हो, कर्मों को तुम मार रहे हो ॥३॥

हो सर्वज्ञ बात सब जानो सारी दुनियां को पहचानो
नगर अयोध्या जो कहलाये, राजा नाभिराज बतलाये ॥४॥

मरुदेवी माता के उदर से, चैत वदी नवमी को जन्मे
तुमने जग को ज्ञान सिखाया, कर्मभूमी का बीज उपाया ॥५॥

कल्पवृक्ष जब लगे बिछरने, जनता आई दुखड़ा कहने
सब का संशय तभी भगाया, सूर्य चन्द्र का ज्ञान कराया ॥६॥

खेती करना भी सिखलाया, न्याय दण्ड आदिक समझाया
तुमने राज किया नीति का, सबक आपसे जग ने सीखा ॥७॥

पुत्र आपका भरत बताया, चक्रवर्ती जग में कहलाया
बाहुबली जो पुत्र तुम्हारे, सब से पहले मोक्ष सिधारे ॥८॥

सुता आपकी दो बतलाई, ब्राह्मी और सुन्दरी कहलाई
उनको भी विद्या सिखलाई, अक्षर और गिनती बतलाई ॥९॥

एक दिन राजसभा के अन्दर, एक अप्सरा नाच रही थी
अपु उसकी बहुत अल्प थी, इसीलिए अगो नहीं नाच रही थी ॥१०॥

विलय हो गया उसका सत्वर, झट आया वैराग्य उमड़कर
बेटों को झट पास बुलाया, राज पाट सब में बंटवाया ॥११॥

छोड सभी झंझट संसारी, वन जाने की करी तैयारी
राव (राजा) हजारों साथ सिधाए, राजपाट तज वन को धाये ॥१२॥

लेकिन जब तुमने तप किना, सबने अपना रस्ता लीना
वेष दिगम्बर तजकर सबने, छाल आदि के कपड़े पहने ॥१३॥

भूख प्यास से जब घबराये, फल आदिक खा भूख मिटाये
तीन सौ त्रेसठ धर्म फैलाये, जो अब दुनियां में दिखलाये ॥१४॥

छैः महीने तक ध्यान लगाये, फिर भोजन करने को धाये
भोजन विधि जाने नहि कोय, कैसे प्रभु का भोजन होय ॥१५॥

इसी तरह बस चलते चलते, छः महीने भोजन बिन बीते
नगर हस्तिनापुर में आये, राजा सोम श्रेयांस बताए ॥१६॥

याद तभी पिछला भव आया, तुमको फौरन ही पड़धाया
रस गन्ने का तुमने पाया, दुनिया को उपदेश सुनाया ॥१७॥

तप कर केवल ज्ञान पाया, मोक्ष गए सब जग हर्षाया
अतिशय युक्त तुम्हारा मन्दिर, चांदखेड़ी भंवरे के अन्दर ॥१८॥

उसका यह अतिशय बतलाया, कष्ट क्लेश का होय सफाया
मानतुंग पर दया दिखाई, जंजीरें सब काट गिराई ॥१९॥

राजसभा में मान बढ़ाया, जैन धर्म जग में फैलाया
मुझ पर भी महिमा दिखलाओ, कष्ट भक्त का दूर भगाओ ॥२०॥

(सोरठा)

नित चालीस ही बार, पाठ करे चालीस दिन
खेवे धूप अपार, चांदखेड़ी में आय के ॥

होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो
जिनके नहीं सन्तान, नाम वंश जग में चले ॥

भगवान् महावीर चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करू प्रणाम
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम ॥१॥

सर्व साधू और सरस्वती, जिनमन्दिर सुखकार
महावीर भगवान् को मन मंदिर में धार ॥२॥

जय महावीर दयालु स्वामी, वीर प्रभु तुम जग में नामी
वर्धमान हैं नाम तुम्हारा, लगे हृदय को प्यारा प्यारा ॥३॥

शांत छवि मन मोहिनी मूरत, शांत हंसिली सोहिनी सूरत
तुमने वेश दिगंबर धारा, करम शत्रु भी तुमसे हारा ॥४॥

क्रोध मान वा लोभ भगाया माया ने तुमसे डर खाया
तू सर्वज्ञ सर्व का ज्ञाता, तुझको दुनिया से क्या नाता ॥५॥

तुझमे नहीं राग वा द्वेष, वीतराग तू हित उपदेश
तेरा नाम जगत में सच्चा, जिसको जाने बच्चा बच्चा ॥६॥

भुत प्रेत तुमसे भय खावे, व्यंतर राक्षस सब भाग जावें
महा व्याधि मारी न सतावे, अतिविकराल काल डर खावे ॥७॥

काला नाग होय फन धारी, या हो शेर भयंकर भारी
ना ही कोई बचाने वाला, स्वामी तुम ही करो प्रतिपाला ॥८॥

अग्नि दावानल सुलग रही हो, तेज हवा से भड़क रही हो
नाम तुम्हारा सब दुख खोवे, अग एकदम ठंडी होवे ॥९॥

हिसामय था भारत सारा, तब तुमने लीना अवतारा
जन्म लिया कुंडलपुर नगरी, हुई सुखी तब जनता सगरी ॥१०॥

सिद्धार्थ जी पिता तुम्हारे, त्रिशाला की आँखों के तारे
छोड़ के सब झंझट संसारी, स्वामी हुए बाल ब्रम्हाचारी ॥११॥

पंचम काल महा दुखदायी, चांदनपुर महिमा दिखलाई
टीले में अतिशय दिखलाया, एक गाय का दुध झराया ॥१२॥

सोच हुआ मन में ग्वाले के, पहुंचा एक फावड़ा लेके
सारा टीला खोद गिराया, तब तुमने दर्शन दिखलाया ॥१३॥

जोधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा जब तेरा
ठंडा हुआ तोप का गोला, तब सब ने जयकारा बोला ॥१४॥

मंत्री ने मंदिर बनवाया, राजा ने भी दरब लगाया
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुमको लाने की ठहराई ॥१५॥

तुमने तोड़ी बीसों गाड़ी, पहिया खिसका नहीं अगाड़ी
ग्वाले ने जब हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया ॥१६॥

पहले दिन बैसाख वदी के, रथ जाता है तीर नदी के
मीना गुजर सब ही आते, नाच कूद सब चित उमगाते ॥१७॥

स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढ़ाया
हाथ लगे ग्वाले का तब ही, स्वामी रथ चलता हैं तब ही ॥१८॥

मेरी हैं टूटी सी नैया, तुम बिन स्वामी कोई ना खिवैया
मुझ पर स्वामी ज़रा कृपा कर, मैं हु प्रभु तुम्हारा चाकर ॥१९॥

तुमसे मैं प्रभु कुछ नहीं चाहू, जनम जनम तव दर्शन चाहू
चालिसे को चन्द्र बनावे, वीर प्रभु को शीश नमावे ॥२०॥

नित ही चालीस बार, पाठ करे चालीस
खेय धुप अपार, वर्धमान जिन सामने ॥

होय कुबेर समान, जन्म दरिद्र होय जो
जिसके नहीं संतान, नाम वंश जग में चले ॥

देव - स्तुति- भूधरदासजी

(पं. भूधरदासजी कृत)

अहो जगत गुरु देव, सुनिये अरज हमारी ।
तु प्रभु दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी ॥१॥

इस भव-वन के माहिं, काल अनादि गमायो
भ्रम्यो चहूँ गति माहिं, सुख नहीं दुख बहु पायो ॥२॥

कर्म महारिपु जोर, एक न कान करै जी
मन माने दुख देहिं, काहूँसों नाहिं डरै जी ॥३॥

कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै
सुर-नर-पशु-गति माहिं, बहुविध नाच नचावै ॥४॥

प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माहिं बुरोजी
जो दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरोजी ॥५॥

एक जनम की बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी
तु अनंत परजाय, जानत अंतरजामी ॥६॥

मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे
कियो बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे ॥७॥

ज्ञान महानिधि लूट, रंक निबल करि डारो
इनही तु मुझ माहिं, हे जिन! अंतर डारो ॥८॥

पाप-पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी
तन कारागृह माहि, मोहि दियो दुख भारी ॥९॥

इनको नेक बिगाड़, मैं कछु नाहि कियो जी
बिन कारन जगवंद्य! बहुविध बैर लियो जी ॥१०॥

अब आयो तुम पास, सुनि जिन! सुजस तिहारौ
नीति निपुन महाराज, कीजै न्याय हमारौ ॥११॥

दुष्टन देहु निकार, साधुन कौं रखि लीजै
विनवै 'भूधरदास, हे प्रभु! ढील न कीजै ॥१२॥

जिनवाणी-स्तुति

मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकासवे को,
आपा-पर भासवे को, भानु-सी बखानी है ।
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भानवे को,
स्वपर पिछानवे को, परम प्रमानी है ॥

अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को,
काहूँ न सतायवे को, भव्य उर आनी है ।
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को,
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है ॥

हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन,
जो तेरी शरणा गहै, सो पावे सुख चैन ।
जा वाणी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक,
सो वाणी मस्तक नवों, सदा देत हों ढोक ॥

मेरी-भावना

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया,
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥1॥

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं
निज-पर के हित साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं,
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख-समूह को हरते हैं ॥2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे,
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥3॥

अहंकार का भाव न रखूँ नहीं किसी पर क्रोध करूँ
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्याभाव धरूँ,
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ ॥4॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणा स्रोत बहे,
दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे
साम्यभाव रखूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ॥5॥

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे,
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे

गुण-ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे ॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरे कभी न पद डिगने पावे ॥7॥

होकर सुख में मग्न न फूलें दुख में कभी न घबरावें
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक-अटवी से नहीं भय खावें
रहे अडोल-अकंप निरंतर, यह मन, दृढ़तर बन जावे
इष्टवियोग अनिष्टयोग में सहनशीलता दिखलावे ॥8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावें
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग नित्य नए मंगल गावें
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावें
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म फल सब पावें ॥9॥

ईति-भीति व्यापे नहीं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांति से जिया करे
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे ॥10॥

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहीं कोई मुख से कहा करे
बनकर सब युगवीर हृदय से देशोन्नति-रत रहा करें
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करें ॥11॥

बारह भावना जयचंदजी

(पं. जयचन्दजी छाबड़ा कृत)

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गौन ॥१॥

शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय
मोह-उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय ॥२॥

पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥३॥

परमारथ तैं आत्मा, एक रूप ही जोय
कर्म निमित्त विकल्प घने, तिन नासे शिव होय ॥४॥

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय
ऐसैं चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥५॥

निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह ॥६॥

आतम केवल ज्ञानमय निश्चय-दृष्टि निहार
सब विभाव परिणाममय आस्रवभाव विडार ॥७॥

निजस्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि ॥८॥

संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाँय
निजस्वरूप को पाय कर, लोक शिखर जब थाय ॥९॥

लोक स्वरूप विचारिकें, आतम रूप निहारि
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥

बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहि
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहि ॥११॥

दर्श-ज्ञानमय चेतना, आत्म धर्म बखानि
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ॥१२॥

बारह भावना भूधरदासजी

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार ॥१॥

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार ॥२॥

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥३॥

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय
युँ कबहुँ इस जीव को साथी सगा ना कोय ॥४॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय
घर सम्पत्ति पर प्रकटये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥

दीपै चाम चादर मढी, हाड पिजरा देह
भीतर या सम जगत् में, और नहीं घिन गेह ॥६॥

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमे सदा
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लुटे सुध नही ॥७॥

सद्गुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमे
तब कुछ बने उपाय, कर्म चोर आवत रुके ॥८॥

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥९॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान
तामे जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान ॥१०॥

धन कन कंचन राज सुख सबहि सुलभकर जान
दुर्लभ है संसार मे एक जथारथ ज्ञान ॥११॥

जाँचे सुर तरु देय सुख चिंतत चिंता रैन
बिन जाँचे बिन चिंतये धर्म सकल सुख देन ॥१२॥

बारह भावना मंगतरायजी

वंदूं श्री अरहंत पदवीतराग विज्ञान
वरनूं बारह भावना, जग जीवन-हित जान ॥१॥

कहां गये चक्री जिन जीता, भरत खंड सारा
कहां गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा
कहां कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी
कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी ॥२॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रण में
गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगी तन में
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को
हो दयाल उपदेश करैं गुरु बारह भावन को ॥३॥

१. अथिर भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु फिर फिर कर आवै
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावै
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहीं हटता
स्वास चलत यों घटे काठ ज्यों, अरे सों कटता ॥४॥
ओस-बूंद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्राणी
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपति सारी
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी ॥५॥

२. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को घेरा भव वन में
नहीं बचावन-हारा कोई यों समझो मन में
मंत्र यंत्र सेना धन सम्पति, राज पाट छूटे
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लुटे ॥६॥
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँहीं उमर खोई ॥७॥

३. संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोग से, सदा दुखी रहता
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता
छेदन भेदन नरक पशू गति, बध बंधन सहना
राग-उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना ॥८॥
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्रि, क्या इसमें लाली

कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली
मानुष-जन्म अनेक विपत्तिमय, कहीं न सुख देखा
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभ को मेटो लेखा ॥९॥

४. एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी
कमला चलत न पैड जाय, मरघट तक परिवारा
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा ॥१०॥
ज्यों मेले में पंथीजन मिल, नेह फिरैं धरते
ज्यों तरवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक थक हारै
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै ॥११॥

५. भिन्न भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में मिथ्या जल चमकै
मृग-चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक थक कै
जल नहीं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता ॥१२॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी
मिले-अनादि यतनतैं बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यम सों चरना ॥१३॥

६. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली
निश दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी

मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी ॥१४॥
काना पौंडा पडा हाथ यह चूसै तो रोवै
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषे बोंवै
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी ॥१५॥

७. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को ॥१६॥
पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो
पंचरु बीस कषाय मिले सब सत्तावन मानो
मोहभाव की ममता टारै, पर परनत खोते
करै मोक्ष का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते ॥१७॥

८. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहीं मन लाता
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को
दश विध धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को ॥१८॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते
सुपन दशा से जागो चेतन, कहां पड़े सोते
भाव शुभाशुभ रहित, शुद्ध भावन संवर पावै
डांट लगत यह नाव पड़ी, मझधार पार जावै ॥१९॥

९. निर्जरा भावना

ज्यों संवर जल रुका सूखता, तपन पडे भारी
संवर रोकै कर्म निर्जरा, वै सोखनहारी
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषे माली ॥२०॥
पहली सबके होय नहीं, कुछ सैरै काम तेरा
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा
संवर सहित करो तप प्राणी, मिलै मुक्त रानी
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥२१॥

१०. लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहि थिर, निराधार जानो
पुरुषरूप कर कटी भये षट द्रव्यनसों मानों
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है
जीवरूप पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है ॥२२॥
पाप पुन्यसों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता
अपनी करनी आप भैरै शिर, औरन के धरता
मोहकर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा
निज पद में थिर होय, लोक के, शीश करो वासा ॥२३॥

११. बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी
नरकाया को सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्राणी
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना ॥२४॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै ॥२५॥

१२. धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः', ही सच्चा जानो
जो पर को दुःख दे सुख माने, उसे पतित मानो
राग-द्वेष-मद-मोह घटा, आत्म-रुचि प्रकटावे
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे ॥२६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिना, श्रीजिन की वानी
सप्त तत्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना
'मंगत' इसी जतनतै इक दिन, भावसागर तरना ॥२७॥

महावीर वंदना (हुकमचंदजी कृत)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं ॥

जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थकर स्वयं महावीर हैं ॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आत्म ध्यान में
जिनके विराट विशाल निर्मल, अचल केवल ज्ञान में ॥

युगपद विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में ॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावें पार है ॥

बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है
उन सर्वदर्शी सन्मति को, वंदना शत बार है ॥

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है ॥

जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है
कर्ता न धर्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है ॥

आत्म बने परमात्मा, हो शांति सारे देश में
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के संदेश में ॥

समाधिमरणभाषा (द्यानतरायजीकृत)

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है
मैं कब पाऊँ निश दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है ॥
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहि जाने
त्याग बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१॥

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै
बनिज करै पर द्रव्य हरै नहि छहों कर्म इमि साधै ॥
पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुं दानी
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥२॥

जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तनकी ममता टारै
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै ॥
आग लगै अरु नाव डुबै जब धर्म विघन तब आवै
चार प्रकार आहार त्यागिके मंत्र सु-मन में ध्यावे ॥३॥

रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारै
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को टारै ॥
जो न बने तो घर में रहकरि सबसों होय निराला
मात पिता सुत तियको सौंपे निज परिग्रह इति काला ॥४॥

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिके मनकी शल्य हनेई ॥
शत्रुनसों मिल निज कर जोरैं मैं बहु कीनी बुराई
तुमसे प्रीतम को दुख दीने क्षमा करो सो भाई ॥५॥

धन धरती जो मुखसों मांगै सो सब दे संतोषै
छहों कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै ॥
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पै लै
दूधाधारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेलै ॥६॥

छाछ त्यागिके पानी राखै पानी तजि संथारा
भूमि मांहि थिर आसन मांडै साधमीं ढिग प्यारा ॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये ॥७॥

चार अराधन मनमें ध्यावै बारह भावन भावै
दशलक्षण मुनि-धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावै ॥
पैतीस सोलह षट पन चारों दुइ इक वरन विचारै
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञानमयी तू सारै ॥८॥

अजर अमर निज गुणसों पूरै परमानंद सुभावै
आनंदकंद चिदानंद साहब तीन जगतपति ध्यावै ॥
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखै
अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै ॥९॥

हाड़ माँस सब सूख जाय जब धर्मलीन तन त्यागै
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्गमें सेज उठै ज्यों जागै ॥
तहाँ तैं अवै शिवपद पावै विलसै सुख अनन्तो
'द्यानत यह गति होय हमारी जैन धर्म जयवन्तो ॥१०॥

समाधिभावना

दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ,
देहांत के समय में, तुमको न भूल जाऊँ ॥टेक॥

शत्रु अगर कोई हो, संतुष्ट उनको कर दूँ,
समता का भाव धर कर, सबसे क्षमा कराऊँ ॥१॥

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर,
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ ॥२॥

जागें नहीं कषाएँ, नहीं वेदना सतावे,
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ ॥३॥

आत्म स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ,
अरहंत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ ॥४॥

धरमात्मा निकट हों, चर्चा धरम सुनावें,
वे सावधान रखें, गाफिल न होने पाऊँ ॥५॥

जीने की हो न वाँछा, मरने की हो न इच्छा,
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ ॥६॥

भोगे जो भोग पहिले, उनका न होवे सुमिरन,
मैं राज्य संपदा या, पद इंद्र का न चाहूँ ॥७॥

रत्नत्रय का पालन, हो अंत में समाधि
'शिवराम प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ ॥८॥

समाधिमरणभाषासूरचंदजी

पं सूरचंदजी कृत

बन्दौं श्री अरिहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माँहीं
अन्त समय में यह वर मागूँ, सो दीजै जगराई ॥१॥

भवभव में तनधार नये मैं, भवभव शुभ संग पायो
भवभव में नृपरिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो ॥
भवभव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों
भवभव में मैं भयो नपुंसक, आत्म गुण नहि चीनों ॥२॥

भवभव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे
भवभव में गति नरकतनी धर, दुख पायो विधि योगे ॥
भवभव में तिर्यच योनि धर, पायो दुख अति भारी
भवभव में साधर्मिजन को, संग मिल्यो हितकारी ॥३॥

भवभव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो
भवभव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भवभव में, सम्यक् गुण नहि पायो
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो
एक बार हूँ सम्यक् युत मैं, निज आत्म नहि चीनो ॥

जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योति स्वरूप सदाई ॥५॥

विषय कषायनि के वश होकर, देह आपनो जान्यो
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आत्म नाहि पिछान्यो ॥
यो कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो
सम्यक्दर्शनज्ञानचरन ये, हिरदे में नहि लायो ॥६॥

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों
रोग जनित पीड़ा मत हूवो, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजै ॥७॥

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै
चर्मलपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्ट पावै ॥
अतिदुर्गन्ध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै
देह विनाशी, यह अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै ॥८॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आत्म! यातैं प्रीति न कीजै
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै ॥
मृत्यु भये से हानि कौन है, याको भय मत लावो
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥९॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँहीं
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ॥१०॥

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥

राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई
अन्त समय में समता धारो, परभव पंथ सहाई ॥११॥

कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै
तन पिंजरे में बंद कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै ॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढ़े ॥१२॥

नाना वस्त्राभूषण मैने, इस तन को पहिराये
गन्धसुगन्धित अतर लगाये, षटरस अशन कराये ॥
रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥१३॥

मृत्युराज को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ
जामैं सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहि सु या जगमाँहीं
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पत्ति तेती ॥१५॥

चौ-आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो ॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहि दाता, तीनों लोक मँझारे
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥

इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥

पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहीं आवै
तापर भी ममता नहीं छोड़ै, समता उर नहीं लावे ॥१७॥

मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्यो पर्यो बिललावै ॥
पुद्गल के परमाणु मिलकैं, पिण्डरूप तन भासी
या है मूरत में अमूरती, ज्ञान जोति गुण खासी ॥१८॥

रोग शोक आदि जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तन सों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है
खानपान दे याको पोष्यो अब समभाव ठन्यो है ॥१९॥

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिनु, यह तन अपनो जान्यो
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नहीं पिछान्यो ॥
तन विनाश तें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई
कुटुम आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ॥२०॥

अब निज भेद जथारथ समझ्यो मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी ॥
इष्टनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल लागे
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागे ॥२१॥

बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो
शस्त्र घाततैंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बार अनन्त ही अग्नि माँहि जर, मूवो सुमति न लायो
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई
मृत्युराज को भय नहीं मानों, देवै तन सुखदाई ॥

यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै
जप-तप बिन इस जग के माँहीं, कोई भी ना सीजै ॥२३॥

स्वर्ग सम्पदा तप सों पावै, तप सों कर्म नसावै
तप ही सों शिवकामिनि पति है, यासों तप चित लावै ॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहि सहाई
मात-पिता सुत बाँधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥२४॥

मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है ॥
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजै
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै ॥२५॥

जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो ॥
परभव में जो संग चलै तुझ, तिन सों प्रीत सु कीजै
पञ्च पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै ॥२६॥

दशलक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो
षोडशकारण को नित चिन्तो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो ॥२७॥

अन्त समय में यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहि अधिकारि ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके
जा सेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके ॥२८॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ-आराधन भाई
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं ॥

आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै
भाव सहित वन्दौ मैं तासों, दुर्गति होय न ताकै ॥
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यानहिये विच लावै ॥३०॥

धन्यधन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत पाँव भख्यो दुखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥

धन्यधन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहि, आत्म सों हित लायो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगनि बहु धारी
शीश जले जिम लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३॥

सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी
छिन्नभिन्न तन तासों हूवो, तब चिंतो गुण आपी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३४॥

श्रेणिक सुत गंगा में डूबो, तब जिननाम चितारो
धर सल्लेखना परिग्रह छोड्यो शुद्ध भाव उर धारयो

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३५॥

समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई
ता दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३६॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो
न में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहि मानो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३७॥

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३८॥

श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥

वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धरो मन लाई
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥

अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई
शत्रु चण्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४१॥

विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी
शुभ भावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२॥

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घातो
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३॥

दण्डक नामा मुनि की देही बाणन कर अरि भेदी
तापर नेक डिगे नहि वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४॥

अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरब कर्म विचारे
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५॥

चाणक मुनि गोगृह के माँहीं, मूँद अग्नि परजालो
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हालो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥

सात शतक मुनिवर दुख पायो, हस्तिनापुर में जानो
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहि मानो

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥

लोहमयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तौ भी नाहि चिगाये
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी
वे ही हमको हों सुखदाता, हरि हैं टेव प्रमादी ॥
सम्यग्दर्शनज्ञानचरन-तप, ये आराधन चारों
ये ही मोको सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥

यों समाधि उर माँहीं लावो, अपनो हित जो चाहो
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै ॥५०॥

मात-पितादिक सर्व कुटुम मिल, नीके शकुन बनावै
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे
जब परगति को करत पयानो, तब नहि सोचो प्यारे ॥५१॥

सर्वकुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावैं सारे
ये अपशकुन करैं सुन तोकौं, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्म ध्यान उर आनो
चारों आराधन आराधो मोह तनो दुख हानो ॥५२॥

है निःशल्य तजो सब दुविधा, आत्मराम सुध्यावो
जब परगति को करहु पयानो, परमतत्त्व उर लावो ॥

मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥५३॥

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिमान
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द्र शिवथान ॥५४॥
पञ्च उभय नव एक नभ, संवत् सो सुखदाय
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥ ५५॥

दर्शनस्तुतिदौलतरामजी

(पं. दौलतरामजी कृत)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन ॥

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार ॥१॥

जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय ॥२॥

तुम गुण चिंतत निज-पर विवेक, -प्रकटै विघटैं आपद अनेक
तुम जगभूषण दूषण-विमुक्त, सब महिमा-युक्त विकल्प-मुक्त ॥३॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप
शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अक्षीण ॥४॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धि-रमा धरंत ॥५॥

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहि जैहैं सदीव
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि ॥६॥

यह लखि निजदुखाद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज ।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥७॥

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्यपाप
निज को पर का करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥

अकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार ॥९॥

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्यो अनंत बार ॥१०॥

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद ॥११॥

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ
तुम गुणगण को नहि छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव ॥१२॥

आत्म के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन ॥१३॥

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥१४॥

शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ॥१५॥

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय, नहि तुम बिन निज सुखदाय होय
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज ॥१६॥

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहि पार
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार ॥

आराधनमाठ

(पं. दानतरायजीकृत)

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं ॥
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ॥१॥

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदितैं पातक नसैं ॥
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चम्पापुर पावापुरी
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्र जुरी ॥२॥

नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरोँ ॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा ॥३॥

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूँ भाव सों
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हरख उछाव सों ॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों ॥४॥

मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों ॥
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ ॥५॥

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं ॥
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना ॥६॥

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, और आरंभ परिहरौं ॥
इस दुखद पंचमकाल माहीं, सुल श्रावक मैं लह्यौ
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ ॥७॥

आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी
तु कृपानाथ अनाथ 'द्यानत दया करना न्याय जी ॥
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये
करि सुगति गमन समाधिमरन्, सुभक्ति चरनन दीजिये ॥८॥

आलोचनापाठ

(जौहरीलालजी कृत)

:दोहा

वंदो पांचो परमगुरु, चौबिसों जिनराज
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ॥१॥

:सखी छन्द:

सुनिए जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी
तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरण लही जिनराजा ॥२॥

इक बे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा
तिनकी नहि करुणा धारी, निरदर्ई हो घात विचारी ॥३॥

समरम्भ समारंभ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके ॥४॥

शत आठ जु इमि भेदनतै, अघ कीने परिछेदन तै
तिनकी कंहु कोलो कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥

विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के
वश होय घोर अघ कीने, वचतै नहि जाय कहीने ॥६॥

कुगुरूनकी सेवा किनी, केवल अदया करि भीनी
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँ गति मधि दोष उपायो ॥७॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सो द्रग जोरी
आरम्भ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥

सपरस रसना घानन को, द्रग कान विषय सेवन को
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥

फल पञ्च उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये
नहि अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुखकारे ॥१०॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यो त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनन्तानुबन्धी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश गुनिये ॥१२॥

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग
पनबीस जू भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई
फिर जागी विषय वन धायो, नाना विध विष फल खायो ॥१४॥

आहार विहार निहार, इनमे नहि जतन विचारा
बिन देखि धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो
कछु सुधि बुधि नाहि रही है, मिथ्यामति छाय गई हैं ॥१६॥

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी
भिन भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषै सब पड़ये ॥१७॥

हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहि लीनी ॥१८॥

प्रथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥१९॥

हा हा ! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी
तामधि जीवन के खंदा, हम खाए धरी आनंदा ॥२०॥

हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अग्नि जलाई
तामध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईधन बिन सोधि जलायो
झाड़ू ले जागाँ बुहारी, चींटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी
नहि जल थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहु घात करायो
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तातें जु जीव निसराई
तिनका नहि जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५॥

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहि रंच विचारी ॥२६॥

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवंता
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तै कहिय न जाई ॥२७॥

ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो
फल भुंजत जिय दुःख पावै, वचतै कैसे करि गावै ॥२८॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी
हम तो तुम शरण लहि है, जिन तारन विरद सही हैं ॥२९॥

इक गाँवपति जो होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवै
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥

द्रोपदी को चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी ॥३१॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनों विरद सम्हारो
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥

इन्द्रादिक पद नहि चाहूँ, विषयनि में नाहि लुभाऊँ
रागादिक दोष हरिजे, परमात्म निज पद दीजे ॥३३॥

:दोहा

दोष रहित जिनदेव जी, निज पद दीज्यो मोय
सब जीवन के सुख बढ़े, आनन्द मंगल होय ॥
अनुभव माणिक पारखी, जौहरी आप जिनन्द
येही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द ॥

दुखहरन- विनती

(वृन्दवनदासजीकृत)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुम्हारा बना है
मत मेरी बार अबार करो, मोहि देहु विमल कल्याण है ॥टेक॥

त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुम सों कछु बात न छाना है
मेरे उर आरत जो वरतैं, निहचैं सब सो तुम जाना है ॥१॥

अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥२॥

सब ग्रंथनि में निरग्रंथनि ने, निरधार यही गणधार कही
जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही ॥३॥

यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही
क्यों मेरी बारी बिलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥४॥

काहू को भोग मनोग करो, काहू को स्वर्ग विमाना है
काहू को नाग नरेशपती, काहू को ऋद्धि निधाना है ॥५॥

अब मो पर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है
इंसाफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है ॥६॥

खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है

तुम ही समर्थ न न्याय करो, तब बंदे का क्या चारा है ॥७॥

खल घालक पालक बालक का नृपनीति यही जगसारा है
तुम नीतिनिपुण त्रैलोक्यपती, तुमही लगी दौर हमारा है ॥८॥

जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमही को माना है
तुमरे ही शासन का स्वामी, हमको शरणा सरधाना है ॥९॥

जिनको तुमरी शरणागत है, तिनसौं जमराज डराना है
यह सुजस तुम्हारे सांचे का, सब गावत वेद पुराना है ॥१०॥

जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है
अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥११॥

पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है
भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है ॥१२॥

चिंतामणि पारस कल्पतरु, सुखदायक ये सरधाना है
तव दासन के सब दास यही, हमरे मन में ठहराना है ॥१३॥

तुम भक्तन को सुर इंदपदी, फिर चक्रपती पद पाना है
क्या बात कहों विस्तार बड़ी, वे पावैं मुक्ति ठिकाना है ॥१४॥

गति चार चुरासी लाख विषैं, चिन्मूरत मेरा भटका है
हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है ॥१५॥

जब जोग मिला शिवसाधन का, तब विघन कर्म ने हटका है
तुम विघन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घट का है ॥१६॥

गज-ग्राह-ग्रसित उद्धार किया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है

ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैना का संकट टारा है ॥१७॥

ज्यों सूलीतें सिंहासन औ, बेड़ी को काट बिडारा है
त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥१८॥

ज्यों फाटक टेकत पायं खुला, औ सांप सुमन कर डारा है
ज्यों खड़ग कुसुम का माल किया, बालक का जहर उतारा है ॥१९॥

ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लक्ष्मी सुख विस्तारा है
त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥२०॥

यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है
चिन्मूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है ॥२१॥

तद्यपि भक्तन की भीरि हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है
यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावै पार सयाना है ॥२२॥

दुखखंडन श्रीसुखमंडन का, तुमरा प्रण परम प्रमाना है
वरदान दया जस कीरत का, तिहुंलोक धुजा फहराना है ॥२३॥

कमलाधरजी कमलाकरजी करिये कमला अमलाना है
अब मेरि विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है ॥२४॥

हो दीनानाथ अनाथ हितू, जन दीन अनाथ पुकारी है
उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥२५॥

ज्यों आप और भवि जीवन की, तत्काल विथा निरवारी है
त्यों 'वृंदावन यह अर्ज करै, प्रभु आज हमारी बारी है ॥२६॥

अमूल्य- तत्त्व - विचार

(युगलजी कृत)

बहु पुण्यपुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला ॥१॥

सुखप्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है
तू क्यों भयंकर भावमरण, प्रवाह में चकचूर है ॥२॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिए
परिवार और कुटुंब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिए ॥३॥

संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है ॥४॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, लो जहाँ भी प्राप्त हो
यह दिव्य अंतस्तत्त्व जिससे, बंधनों से मुक्त हो ॥५॥

पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात जिसके दुःख भरा ॥६॥

मैं कौन हूँ आया कहाँ से! और मेरा रूप क्या?
संबंध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ॥७॥

इसका विचार विवेक पूर्वक, शांत होकर कीजिए
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धांत का रस पीजिए ॥८॥

किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है ॥९॥

तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए

सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिए ॥१०॥

बाईस- परीषह ((आ ज्ञानमती कृत))

देवशास्त्र गुरु को नमू नमू जोड़ के हाथ
द्वाविंशति परिषह लिखूं लखूं स्वात्म सुखनाथ ॥
आप आप में नित बसूं मिटे सकल परिताप
निज आत्म वैभव भजूं संजू आपको आप ॥

अग्नि शिखा सम क्षुदा वेदना, मुनिजन वन में सहते हैं
बेला तेला पक्ष मास का, अनशन कर तप तपते हैं
नरक पशुगति क्षुदा वेदना, का नित चिन्तन करते हैं
इस विधि आत्म चिंतनकर नित, क्षुदा परिषह सहते हैं ॥१॥

ग्रीष्मकाल में तन तपने से, प्यास सताती यतियों को
तपा तपा तन कर्म खिपाते, चहुंगति पीर मिटाने को ॥
प्यास पीर को चीर चीरकर, शांति नीर को पीते हैं
इस विधि मुनिजन प्यास परिषह, ग्रीष्म ऋतु में सहते हैं ॥२॥

कप कप कप कपती रहती, शीत पवन से देह सदा
तथापि आत्म चिंतन में वे, कहते मम यह काय जुदा ॥
शीतकाल में सरिता तट पर, ऋषिगण ध्यान लगाते हैं
कर्मिधन को जला जलाकर, शीत परिषह सहते हैं ॥३॥

तप्त धरातन अन्तरतल में, धग धग धग धग करती है
उपर नीचे आगे पीछे, दिशि में तप तप तपता है ॥
तप्तशिला पर बैठे साधुजन्, तथापि तपरत रहते हैं
निर्जन वन में अहो निरंतर, उष्ण परिषह सहते हैं ॥४॥

दंश मक्षिका की परिषह को, मुनिजन वन में सहते हैं
रात समय में खड़े-खड़े वे, आत्म चिंतवन करते हैं ॥
डांस मक्खियां मुनि तन पर जब, कारखून को पीते हैं
नहीं उड़ाकर उन जीवों पर, समता रख नित सहते हैं ॥५॥

नग्न तन पर कीड़े निश दिन, चढ़कर डसते रहते हैं
दुष्ट लोग भी नग्न मुनिश्वर, समता धर नित सहते हैं ॥
इन सबको वे नग्न देखकर, खिलखिलकर हंसते रहते हैं
निर्विकार बन निरालम्ब मुनि, नग्न परिषह सहते हैं ॥६॥

तन रति तजकर तपरत होकर, मुनि जब वन में रहते हैं
क्रूर प्राणिजन सदा मुनि के, निकट उपस्थित रहते हैं ॥
तथापि आगमरूपी अमृत, पी मुनि ध्यान लगाते हैं
अमृत पीकर निर्भय होकर, अरति परिषह सहते हैं ॥७॥

काम वाण से उद्रेकित, यौवन वती वनिता आती है
निर्जन वन में देख मुनि को, मधुर स्वरों में गाती है ॥
तथापि अविचल निर्विकार मुनि, वनिता परिषह सहते हैं
आत्म ब्रह्म में दृढतर रह मुनि, कर्म निर्जरा करते हैं ॥८॥

कंकर पत्थर चुभकर पथ में, घाव बना कर पगतल में
कमलपत्र सम कोमल पग से, खून बह रहा जंगल में ॥
तथापि मुनिजन मुक्तिरमा से, रति रख चलते रहते हैं
मुमुक्षु बनकर मोक्षमार्ग में, चर्या परिषह सहते हैं ॥९॥

गिरि गुफा या कानन में जब, कठिनासन पर ऋषि रहते
कई उपद्रव होने पर भी, आसन विचलित नहि करते ॥
अचलासन पर अपने मन को, स्थापित अपने में करते
मुक्तिरमा पाने को मुनि, निषध्या परिषह को सहते ॥१०॥

ध्यान परिश्रम शम करने यति, दो घड़ी निशि में सोते हैं
तथापि मन को वश रख निद्रा, एक करवट से लेते हैं ॥
तदा मुनि पर महा उपद्रव, वन पशु करते रहते हैं
तथापि करवट अविचल रखकर, शय्या परिषह सहते हैं ॥११॥

अज्ञानी जन गाली देकर, पागल कह कर हँसते हैं
वचन तिरस्कार कह फिर नंगा, लुच्चा कहते रहते हैं ॥
दुष्टों से मुनि गाली सुनकर, जरा भी क्लेश नहीं करते
समता सागर बन मुनि इस, आक्रोश परिषह को सहते ॥१२॥

सघन वनों में व शहरों में, जब मुनि विहार करते हैं
दुष्ट जनों के वध बन्धन, ताड़न भी पथ सहते हैं ॥
प्राण हरण करने वाले उस, वध परिषह को सहते हैं
क्षमता रख मुनि मौन धार कर, कर्म निर्जरा करते हैं ॥१३॥

अहो कलेवर सूख गया है, रोग भयानक होने से
तथापि मुनिवर अनशन करते, भय नहीं रखते कर्मों से ॥
ऐसे मुनिवर पुर में आ जब, अहो पारणा करते हैं
औषधि जल तक नहीं याचना, करते परिषह सहते हैं ॥१४॥

पक्ष मास का अनशन कर मुनि, गमन नगर में जब करते
अन्नादिक का लाभ नहीं होने, पर तब वापिस आते ॥
उस दिन उदराग्नि की पीड़ा, क्षण-क्षण पल-पल में सहते
अहोसाधना पथ पर इस विध, अलाभ परिषह मुनि सहते ॥१५॥

भस्म भगंदर कुष्ठ रोग के, होने पर भी नहीं डरते
सतत वेदना रहने पर भी, उसका इलाज नहीं करते ॥
जन्म जरा जो महारोग का, निशिदिन इलाज करते हैं
तन रोगों पर समता रख कर, रोग परिषह सहते हैं ॥१६॥

शुष्क पत्र जल कण तन पर, गिरने से खुजली चलती रहती
तथापि मुनिवर नहीं खुजाते, वह तो चलती ही रहती ॥
कण-कण कंकर कंटक चुभते, गमन समय में जंगल में
इस तृण स्पर्श परिषह सह मुनि, कर्म खिपाते पल-पल में ॥१७॥

पाप कर्म मल विनाश करने, मन परिषह मुनि नित सहते
जल जीवों पर दया धारकर, स्नान को हमेशा तजते ॥
श्रुत गंगा में वीतराग जल से, स्नान किया करते
तथापि मुनिवर अर्धजले, शव के सम निशदिन हैं दिखते ॥१८॥

मुनि की स्तुति नमन प्रशंसा, करना यह सुन है सत्कार
आगे रखकर पीछे चलना, पुरस्कार हैं गुण भंडार ॥
परन्तु यदि कोई जग मे, स्तुति या विनयादिक नहीं करते
पुरस्कार सत्कार परिषह को, नित तब मुनि है सहते ॥१९॥

मैं पंडित हूं ज्ञानी हूं मैं, द्वादशांग का पाठी हूँ
इस जग में महाकवि हूँ, सब तत्वों का ज्ञाता हूँ ॥
इस विध बुध मुनि कदापि मन में, वृथा गर्व नहीं करते हैं
निरभिमान हो मोक्षमार्ग में, प्रज्ञा परिषह सहते हैं ॥२०॥

अहो सुनो यह ज्ञानहीन मुनि, वृथा जगत में तप तपता
कठिन तपस्या करने पर भी, श्रुत में विकास नहीं दिखता ॥
इस विध मुनि को मूढमति जन, वचन तिरस्कृत कर कहते
तदा कर्म का पाक समझ, अज्ञान परिषह मुनि सहते ॥२१॥

मैं तप तपता दीर्घकाल से, पर कुछ अतिशय नहीं दिखता
सुरजन अतिशय करते कहना, मात्र कथन ही है दिखता ॥
इस विध दृगधारी मुनि मन में, कलूष भावना ही रखते हैं
पर वांछा को छोड़ अदर्शन, परिषह नित मुनि सहते हैं ॥२२॥

सामायिकपाठआचार्यअमितगति

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

शरीरतः कर्तुमनंतशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टि तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति ॥२॥

दुःखे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे योगे वियोगे भवने वने वा
निराकृताशेषममत्वबुद्धे समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निखाताविव विबिताविव
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनाना हृदि दीपिकाविव ॥४॥

एकेन्द्रियाद्य यदि देव! देहिन्, प्रमादतः संचरता इतस्ततः
क्षताः विभिन्ना मिलिता निपीडितास्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपन्तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं मनोवच्च कायकषायनिर्मितम्
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

अतिक्रमं यद्विमतेव्रयतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्मण
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

क्षतिं मनःशुद्धविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृत्तेर्विलंघनम्
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद् यदि किञ्चनोक्तम्
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः

चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृद्धैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रे
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः
समाधिगम्य परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदंतरालं
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्वितीतः
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गा रागादयो यस्य न संति दोषाः
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्ते, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबंध
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषैः, यो ध्वांतसंघैरिव तिग्मरश्मि
निरंजनं नित्यमनेकमेकं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१७॥

विभासते तत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

विभासते तत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्
शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनंतं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मित

यतो निरस्ताक्षकषायविद्विष, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं न लोकपूजा न च संघमेलनम्
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वमपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

न संति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहं
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥२४॥

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्ध
एकाग्रचित्तं खलु यत्र तत्र स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मल साधिगमस्वभाव
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्धं, तस्यास्ति वि पुत्रकलत्रमित्रै
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कतो हि तिष्ठति शरीरमध्ये ॥२७॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्रुते जन्मवने शरीरी
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकांतारनिपातहेतुम्
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

नजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति कचन
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥३१॥

यैः परमात्माऽमितगतिवद्, सर्वविविक्तो भृशमनवद्
शश्वदधीतो मनसि लभते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, परमात्मानमीक्षते

सामायिक- पाठ - युगलजी

(आचार्यअमितगति कृत - हिंदी पद्य - युगलजी)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥१॥

यह अनन्त बल-शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२॥

सुख-दुख, वैरी-बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहि ममता हो ॥३॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ
वह सुंदर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जायें सद्भावों से ॥६॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥७॥

सत्य-अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥८॥

कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया
पी-पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥९॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया ॥१०॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे
निर्मल जल की सरिता-सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये
परम ध्यान गोचर परमात्म, परम देव मम हृदय रहे ॥१३॥

जो भवदुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥

मुक्तिमार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत
निष्कलंक त्रैलोक्यदर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥

निखिल-विश्व के वशीकरण जो, राग रहे ना द्वेष रहे
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥

देख रहा जो निखिल-विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७॥

कर्मकलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्यप्रकाश
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१८॥

जिसकी दिव्यज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्यप्रकाश
स्वयं ज्ञानमय स्वपर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१९॥

जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ
अदि-अन्त से रहित शान्त शिव, परमशरण मुझको वह आप्त ॥२०॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव
भय-विषाद-चिन्ता नहीं जिसके, परम शरण मुझको वह देव ॥२१॥

तृण, चौकी, शिल-शैल, शिखर नहीं, आत्मसमाधि के आसन
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥२२॥

इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम
हेय सभी है विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥२३॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥२४॥

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास
जग का सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥२५॥

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥२६॥

तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत-तिय-मित्रों से कैसे
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥२७॥

महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥२८॥

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्पजालों को छोड़
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥२९॥

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥३०॥

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥३१॥

निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, 'अमितगति वह देव महान
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥३२॥

(दोहा)
इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमात्म को ध्याते हैं
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं ॥

सामायिक- पाठ - रवीन्द्रजी

(आचार्य अमितगति कृत, हिंदी पद्य रवीन्द्रजी)

मेरा आत्म सब जीवों पर, मैत्री भाव करे
गुणगण मंडित भव्य जनों पर, प्रमुदित भाव रहे ॥
दीन दुखी जीवों पर स्वामी करुणा भाव करे
और विरोधी के ऊपर नित, समता भाव धरे ॥१॥

तुम प्रसाद से हो मुझमें वह, शक्ति नाथ जिससे
अपने शुद्ध अतुल बलशाली, चेतन को तन से ॥
पृथक कर सकूं पूर्णतया मैं, ज्यों योद्धा रण में
खींचे निज तलवार म्यान से, रिपु सन्मुख क्षण में ॥२॥

छोडा है सब में अपनापन, मैंने मन मेरा

बना रहे नित सुख में दुख में, समता का डेरा ॥
शत्रु मित्र में मिलन विरह में, भवन और वन में
चेतन को जाना न पड़े फिर, नित नूतन तन में ॥३॥

अंधकार नाशक दीपक सम, अडिग चरण तेरे
अहो विराजे रहें हमेशा, उर में ही मेरे ॥
हो मुनीश वे घुले हुए से या कीलित जैसे
अथवा खुदे हुए से हों या प्रतिबिंबित जैसे ॥४॥

हो प्रमादवश जहां तहां यदि, मैंने गमन किया
एकेंद्रिय आदिक जीवों को, घायल बना दिया ॥
प्रथक किया या भिडा दिया हो, अथवा दबा दिया
मिथ्या हो दुष्कृत वह मेरा, प्रभुपद शीश किया ॥५॥

चल विरुद्ध शिवपथ के मैंने, जो दुर्मति होके
होके वश में दुष्ट इन्द्रियों, और कषायों के ॥
खंडित की जो चरित शुद्धि वह, दुष्कृत निष्फल हो
मेरा मन भी दुर्भावों को तजकर निर्मल हो ॥६॥

मंत्र शक्ति से वैद्य उतारें, ज्यों अहिविष सारा
त्यों अपनी निंदा गर्हा व, आलोचन द्वारा ॥
मन वच तन से या कषाय से, संचित अघ भारी
भव दुख कारण नष्ट करूं मैं, होकर अविकारी ॥७॥

धर्म क्रिया में मुझे लगा जो, कोई अघकारी
अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार या अनाचार भारी ॥
कुमति प्रमाद निमित्तक उसका, प्रतिक्रमण करता
प्रायश्चित्त बिना पापों को कौन कहाँ धरता ॥८॥

चित्त शुद्धि की विधि की क्षति को, अतिक्रमण कहते

शील बाढ के उल्लंघन को, व्यतिक्रमण कहते ॥
त्यक्त विषय के सेवन को प्रभु अतिचार कहते
विषयासक्तपने को जगमें अनाचार कहते ॥९॥

शास्त्र पठन में मेरे द्वारा, यदि जो कहीं कहीं
प्रमाद से कुछ अर्थ वाक्य पद मात्रा छूट गई ॥
सरस्वती मेरी उस त्रुटि को कृप्या क्षमा करे
और मुझे कैवल्यधाम में माँ अविलम्ब धरे ॥१०॥

वांछित फल गाती चिंतामणि, सदृश मात्र तेरा
वंदन करने वाले मुझको, मिले पता मेरा ॥
बोधि समधि विशुद्ध भावना, आत्म सिद्धि मुझको
मिले और मैं पा जाऊँ माँ मोक्ष महा सुख को ॥११॥

सब मुनिराजों के समूह भी, जिनका ध्यान करें
सुरों नरों के सारे स्वामी, जिन गुणगान करें ॥
वेद पुराण शास्त्र भी जिनके, गीतों के डेरे
वे देवों के देव विराजें, उर में ही मेरे ॥१२॥

जो अनंत द्रग ज्ञान स्वरूपी सुख स्वभाव वाले
भव के सभी विकारों से भी जो रहे निराले ॥
जो समाधि के विषयभूत हैं परमात्म नामी
वे देवों के देव विराजें मम अर में स्वामी ॥१३॥

जो भव दुख का जाल काटकर, उत्तम सुख वरतें
अखिल विश्व के अंतःस्थल का अवलोकन करते ॥
जो निज में लवलीन हुए प्रभू ध्येय योगियों के
वे देवों के देव विराजें मम उर के होके ॥१३॥

मोक्ष मार्ग के जो प्रतिपादक, सब जग उपकारी

जन्म मरण के संकटादि से, रहित निर्विकारी ॥
त्रिलोकदर्शि दिव्यशरीरी, सब कलंक नाशी
वे देवों के देव विराजें मम उर में अविनाशि ॥१४॥

अलिङ्गित हैं जिनके द्वारा, जग के सब प्राणी
वे रागादिक न जिनके, सर्वोत्तम ध्यानी ॥
इन्द्रिय रहित परम ज्ञानी जो, अविचल अविनाशी
वे देवों के देव विराजें मम उर के ही वासी ॥१५॥

जग कल्याणी परिणति से जो, व्यापक गुण राशी
भावी सिद्ध विबुद्ध जिनेश्वर, करूण पाश नाशी ॥
जिसने ध्येय बनाया उसके सकल दोष हारी
वे देवों के देव विराजें मम उर में अविकारी ॥१६॥

कर्म कलंक दोष भी जिनको, कभी न छू पाते
ज्यों रवि के सन्मुख न कभी भी, तम समूह आते ॥
नित्य निरंजन जो अनेक हैं, और एक भी हैं
उन अरहंत देव की मैंने सुखद शरण ली है ॥१७॥

जगत प्रकाशक जिनके रहते सूर्य प्रभाधारी,
किंचित भी ना शोभा पाता जिनवर अविकारी ॥
निज आत्म में हैं जो सुस्थित, ज्ञान प्रभाशाली
उन अरहंत देव की मैंने सुखद शरण पा ली ॥१८॥

जिनका दर्शन पा लेने पर, प्रकट झलक आता
अखिल विश्व से भिन्न आत्मा, जो शाश्वत ज्ञाता
शुद्ध शांत शिवरूप आदि या अंत विहीन बली
उन अरहंत देव की मुझको अनुपम शरण मिली ॥१९॥

जो मद मदन ममत्व शोक भय, चिंता दुख निद्रा

जीत चुके हैं निज पौरुष से, कहती जिनमुद्रा ॥
ज्यों दावानल तरु समूह को शिघ्र जला देता
उन अरहंत देव की मैं भी सुखद शरण लेता ॥२०॥

ना पलाल पाषाण न धरती, हैं संस्तर कोई
ना विधि पूर्वक रचित काठ का पाटा भी कोई ॥
कारण इन्द्रिय वा कषाय रिपु जीते जो ध्यानी
उसका आत्म ही शुचि संस्तर माने सब ज्ञानी ॥२२॥

ना समाधि का साधन संस्तर नहीं लोकपूजा
ना मुनिसंघों का सम्मेलन, या कोई दूजा ॥
इसीलिये हे भद्र सदा तुम, आत्म लीन बनों
तज बाहर की सभी वासना, कुछ ना कहो सुनो ॥२३॥

पर पदार्थ कोई ना मेरे, थे होंगे ना हैं
और कभी उनका त्रिकाल में हो पाऊँगा मैं ॥
ऐसा निर्णय करके पर के, चक्कर को छोड़ो
स्वस्थ रहो नित भद्र मुक्ति से तुम नाता जोड़ो ॥२४॥

तुम अपने में अपना दर्शन करने वाले हो
दर्शन ज्ञानमयी शुद्धात्म पर से न्यारे हो ॥
जहाँ कहीं भी बैठे मुनिवर, अविचल मनधारी
वहीं समाधी लगे उनकी जो, उनको अति प्यारी ॥२५॥

नित एकाकी मेरा आत्म, नित अविनाशी है
निर्मल दर्शन ज्ञान स्वरूपी स्वपर प्रकाशी है ॥
देहादिक या रागादिक जो, कर्म जनित दिखते
क्षण भंगुर हैं वे सब मेरे, कैसे हो सकते ॥२६॥

जहाँ देह से नहीं एकता, तो जीवन साथी

वहाँ मित्र सुत वनिता कैसे हो मेरे साथी ॥
इस काया से ऊपर से यदि चर्म निकल जाए
रोम छिद्र तब कैसे इसके बीच ठहर पाए ॥२७॥

भव वन में संयोगों से यह, संसारी प्राणी
भोग रहा है कष्ट अनेकों कह न सके वाणी ॥
अतः त्याज्य है मन वच तन से वह संयोग सदा
उसको जिसको इष्ट हितैषी मुक्ति विगत विपदा ॥२८॥

भव वन में पडने के कारण, हैं विकल्प सारे
उनका जाल हटाकर पहुँचो शिवपुर के द्वारे ॥
अपने शुद्धात्म का दर्शन तुम करते करते
लीन रहो परमात्म तत्त्व में दुःखों को हरते ॥२९॥

किया गया जो कर्म पूर्व में, स्वयं जीव द्वारा
उसका ही फल मिले शुभाशुभ अन्य नहीं चारा
औरों के कारण यदि प्राणी, सुख दुख को पाता
तो निज कर्म अवश्य ही, निष्फल हो जाता ॥३०॥

अपने अर्जित कर्म बिना इस प्राणी को जग में
कोई अन्य न सुख दुख देता, कहीं किसी डग पे ॥
ऐसा अडिग विचार बनाकर, तुम निज को मोडो
अन्य मुझे सुख दुख देता है ऐसी हठ छोडो ॥३१॥

परमात्म सबसे न्यारे हैं, अतिशय अविकारी
'संत अमितगति से वंदित हैं, शम दम समधारी ॥
जो भी भव्य मनुज प्रभुवर को, नित उर में लाते
वे निश्चित ही उत्तम वैभव मोक्ष महल पाते ॥३२॥

जो ध्याता जगदीश को, लेय पद बत्तीस

सामायिक- पाठ - महाचंद्रजी

१. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुःख भारी,
जन्म मरण नित किये पापको है अधिकारी,
कोटि भवांतर मांहि मिलन दुर्लभ सामायिक,
धन्य आज मैं भयो जोग मिलियो सुखदायक ॥
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब,
ते सब मन वच काय योगकी गुप्ति बिना लभ,
आप समीप हजूरमांहि मैं खडो खडो सब,
दोष कहुं सो सुनो करो नठ दुःख देहि जब ॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावश प्रानी,
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहि आनी,
बिना प्रयोजन एक इन्द्रि बि ति चउ पंचेंद्रिय,
आप प्रसादहि मिटे जो लग्यो मोहि जिय ॥
आपसमे इक ठौर थापि करी जे दुःख दीने,
पेलि दिये पगतलें दाबि करी प्राण हरीने,
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक,
अरज करुं मैं सुनो, दोष मेटो दुःखदायक ॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय,
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय,
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि,
यह पडिकोणो कियो आदि षट्कर्ममांहि विधि ॥

२. प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमाद वश होय विराधे जीव घनेरे,
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे,
सो सब झूठो होहु जगतपतिके परसादै,

जा प्रसादतैं मिले सर्व सुख दुःख न लाधैं ॥
 मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ,
 किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ,
 निद्रू हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं,
 सब विधि धर्म उपाय पाय फिरि पापहि करहूं ॥
 दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी,
 सत्संगि संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी,
 जिन वचनामृत धार समावर्तैं जिनवानी,
 तो हू जीव संहारे धिक् धिक् हम जानी ॥
 इन्द्रियलंपट होय खोय निज ज्ञानजमा सब,
 अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक कै ब,
 गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले,
 ते सब दोष किये निद्रू अब मनवचतोले ॥
 आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे,
 ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे,
 बारबार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता,
 ईर्षादिकतैं भये निदिये जे भयभीता ॥

३. सामायिककर्म

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है,
 सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है,
 आर्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक,
 संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायिक ॥
 पृथिवी जल अर अग्नि वायु चउकाय वनस्पति
 पंचहि थावरमांहि तथा त्रसजीव बसैं जित,
 बे इन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रिय मांहि जीव सब,
 तिनसैं क्षमा कराऊं मुझ पर क्षमा करो अब ॥
 इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण,
 महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहु सम गण,
 जन्म मरन समान जान हम समता कीनी,

सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ॥
मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो,
और सबै मम भिन्न जानि समता रस भीनो,
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह,
मोतैं न्यारे जानि यथार्थ रुप कर्यो गह ॥
मैं अनादि जगजाल मांहि फँसि रुप न जाण्यो
एकेंद्रिय दे आदि जंतु को प्राण हराण्यो
ते अब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी,
भवभव को अपराध क्षमा कीज्यो करी मरजी ॥

४. स्तवन कर्म

नमौं रिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्म को,
संभव भवदुःखहरन करन अभिनंद शर्म को,
सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर,
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥
श्री सुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर,
श्री चंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांति धर,
पुष्पदंत दमि दोषकोष भवि पोष रोष हर,
शीतल शीतल-करन हरन भवताप दोष हर ॥
श्रेयरुप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन,
वासुपूज्य शत पूज्य वासवादिक भवभय हन,
विमल विमलमति देन अंतगत है अनंत जिन,
धर्म शर्म शिवकरन शांति जिन शांति विधायिन ॥
कुंथु कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जालहर,
मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारन प्रचारधर,
मुनिसुव्रत व्रतकरन नमत सुरसंघहि नमि जिन,
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमांहि ज्ञानधन ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्वउपल सम मोक्षरमापति
वर्द्धमान जिन नमौं वमौं भवदुःख कर्मकृत,
या विधि मैं जिनसंघरुप चउवीस संख्य धर,

स्तवं नमूं हूं बारबार वंदूं शिवसुखकर ॥

५. वंदना कर्म

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत
त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं
वंदूं नित प्रति कनकरूपतनु पाप निकंदूं ॥
सिद्धारथ नृपनंद द्वंद दुःख दोष मिटावन
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उद्धारन
कुंडलपुर करि जन्म जगत जिय आनंदकारन
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दुःख-टारन ॥
सप्त हस्त तनु तुंग भंग कृत जन्ममरनभय
बाल ब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय
दे उपदेश उद्धारि तारि भवसिंधु जीवघन
आप बसे शिवमांहिं ताहि वंदौ मनवचतन ॥
जाके वंदन थकी दोष दुःख दूरहि जावे,
जाके वंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवे,
जाके वंदन थकी वंद्य होवैं सुरगनके,
ऐसे वीर जिनेश वंदिहौं क्रमयुग तिनके ॥
सामायिक षट्कर्ममांहिं वंदन यह पंचम,
वंदे वीर जिनेंद्र इन्द्रशतवंद्य वंद्य मम,
जन्म मरण भय हरो करो अघशांति शांतिमय
मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥

६. कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई
काय त्यजनमय होय काय सबको दुखदाई
पुरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं,
जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पापतिमिर मैं ॥
शिरोनती मैं नमूं मस्तक कर धरिकैं,

आवतार्दिक क्रिया करुं मनवच मद हरिकैं,
तीनलोक जिनभवनमांहि जिन हैं जु अकृत्रिम,
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धद्वीप मांहि वंदौं जिम ॥
आठकोडिपरि छप्पन लाख जु सहस सत्याणुं
च्यारि शतक परि असी एक जिनमंदिर जाणुं
व्यंतर ज्योतिष मांहि संख्यरहिते जिनमंदिर,
जिनगृह वंदन करुं हरहु मम पाप संघकर ॥
सामायिक सम नाहि और कोउ वैर मिटायक,
सामायिक सम नाहि और कोउ मैत्रीदायक,
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक,
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुःखहानक ॥
जे भवि आत्मकाज करण उद्यम के धारी,
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी,
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब,
बुध 'महाचंद्र बिलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥

निर्वाण- कांड

(भैया भगवतीदास कृत)

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय
कहुं कांड निर्वाण की भाषा सुगम बनाय ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासु पूज्य चंपापुरनामी
नेमिनाथस्वामी गिरनार, वंदो भाव भगति उरधार ॥1॥

चरम तीर्थकर चरम शरीर, पावापुरी स्वामी महावीर
शिखर सम्मेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वंदौं निशदीस ॥2॥

वरदतराय रूइंद मुनिंद, सायरदत्त आदिगुणवंद

नगरतारवर मुनि उठकोड़ि वंदौ भाव सहित करजोड़ि ॥3॥

श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरू सौ सात
संबु प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय ॥4॥

रामचंद्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुण धीर
पांचकोड़ि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वंदौ निरधार ॥5॥

पांडव तीन द्रविड़ राजान आठकोड़ि मुनि मुक्तिपयान
श्री शत्रुंजय गिरि के सीस, भाव सहित वंदौ निशदीस ॥6॥

जे बलभद्र मुक्ति में गए, आठकोड़ि मुनि औरहु भये
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहूं काल ॥7॥

राम हणू सुग्रीव सुडील, गवगवाख्य नीलमहानील
कोड़ि निण्यान्वे मुक्ति पयान, तुंगीगिरी वंदौ धरिध्यान ॥8॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पांच कोड़ि अरू अर्ध प्रमान
मुक्ति गए सोनागिरि शीश, ते वंदौ त्रिभुवनपति इस ॥9॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गए रेवातट सार
कोड़ि पंच अरू लाख पचास ते वंदौ धरि परम हुलास ॥10॥

रेवा नदी सिद्धवरकूट, पश्चिम दिशा देह जहां छूट
द्वै चक्री दश कामकुमार, उठकोड़ि वंदौ भवपार ॥11॥

बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरिचूल उतंग
इंद्रजीत अरू कुंभ जु कर्ण, ते वंदौ भवसागर तर्ण ॥12॥

सुवरण भद्र आदि मुनि चार, पावागिरिवर शिखर मंझार

चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गयें वंदौं नित तास ॥13॥

फलहोड़ी बड़ग्राम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप
गुरु दत्तादि मुनिसर जहां, मुक्ति गए वंदौं नित तहां ॥14॥

बाली महाबाली मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय
श्री अष्टापद मुक्ति मंझार, ते वंदौं नितसुरत संभार ॥15॥

अचलापुर की दिशा ईसान, जहां मेंढगिरि नाम प्रधान
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चितलाय ॥16॥

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥17॥

जशरथराजा के सुत कहे, देश कलिंग पांच सो लहे
कोटिशिला मुनिकोटि प्रमान, वंदन करूं जौर जुगपान ॥18॥

समवसरण श्री पार्श्वजिनेंद्र, रेसिंदीगिरि नयनानंद
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदौं नित धरम जिहाज ॥19॥

सेठ सुदर्शन पटना जान, मथुरा से जम्बू निर्वाण
चरम केवलि पंचमकाल, ते वंदौं नित दीनदयाल ॥20॥

तीन लोक के तीरथ जहां, नित प्रति वंदन कीजे तहां
मनवचकाय सहित सिरनाय, वंदन करहि भविक गुणगाय ॥21॥

संवत् सतरहसो इकताल, आश्विन सुदी दशमी सुविशाल
'भैया' वंदन करहि त्रिकाल, जय निर्वाण कांड गुणमाल ॥22॥

वैराग्य- भावना- वज्रनाभिचक्रवर्ती

(पं. भूधरदासजी कृत)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं
त्यों चक्री सुख में मगन, धर्म विसारै नाहि ॥

इह विध राज करै नर नायक, भोगै पुण्य विशाला
सुखसागर में मगन निरन्तर, जात न जान्यो काला ॥
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे
देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥१॥

तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा धुति कीनी
साधु समीप विनय कर बैठ्यो चरनन में दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे
राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥२॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी
भक्तन-भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी ॥
इह संसार महा-वन भीतर, भ्रमते ओर न आवै
जामन मरण जरा दव दाझै, जीव महादुःख पावै ॥३॥

कबहुँ जाय नरक थिति भुंजे, छेदन-भेदन भारी
कबहुँ पशु परजाय धरे तहुँ, बध-बन्धन भयकारी ॥
सुरगति में परसम्पत्ति देखे, राग उदय दुःख होई
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहि कोई ॥४॥

कोई इष्ट-वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट-संयोगी
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तन के रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी-सम भाई
किस ही के दुःख बाहिर दीखे, किस ही उर दुचिताई ॥५॥

कोई पुत्र बिना नित झूरे, होय मरै तब रोवै
खोटी संततिसों दुःख उपजै, क्यों प्राणी सुख सौवै ॥
पुण्यउदय जिनके तिनके भी, नाहि सदा सुख साता
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुःख दाता ॥६॥

जो संसार-विषै सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै
काहे को शिव-साधन करते, संजमसों अनुरागै ॥
देह अपावन अथिरे घिनावन, यामें सार न कोई
सागर के जलसों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई ॥७॥

सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है ॥
नव मल द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥८॥

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावे
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है ॥९॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, बैरी हैं जग जीके
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके ॥
वज्र अग्नि विष से विषधर से, ये अधिके दुःखदाई
धर्म रतन के चोर प्रबल अति, दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानें
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानें ॥
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावे
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे ॥११॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे
तो भी तनिक भये नहीं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राज समाज महा अघ कारण, वैर बढ़ावनहारा
वेश्या-सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतयारा ॥१२॥

मोह महारिपु वैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे
तन काराग्रह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये जिय के हितकारी
ये ही सार, असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥१३॥

छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृण-सम त्यागी
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी ॥१४॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे
श्री गुरु चरन धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१५॥

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥

स्वयंभू- स्तोत्र-- आचार्य विद्यासागर

(आचार्य विद्यासागर कृत)

आदिम तीर्थंकर प्रभो ! आदिनाथ मुनिनाथ
आधिव्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ
वृषका होता अर्थ है, दयामयी शुभ धर्म
वृष से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म

दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर को देख
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक
शरण चरण हैं आपके, तारण तरन जिहाज
भव दधि तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

हार-जीत के हो परे, हो अपने में आप
विहार करते अजित हो, यथा नाम गुण छाप
पुण्य पुंज हो पर नहीं, पुण्य फलों में लीन
पर पर पामर भ्रमित हो, पल-पल पर आधीन
जित इन्द्रिय जित मद बने, जित भव विजित कषाय
अजितनाथ को नित नमूं अर्जित दुरित पलाय
कोंपल पल-पल को पाले, वन में ऋतु पति आय
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिन पद पाय ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

भव-भव भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज
संभव जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज
क्षण-क्षण मिटे द्रव्य हैं, पर्यय वश अविराम
चिर से हैं चिर ये रहें, स्वभाव वश अभिराम
परमार्थ का कथन यूँ मंथन किया स्वयमेव
यतिपन पालें यतन से, नियमित यदि हो देव
तुम पद पंकज से प्रभु झर-झर झरी पराग
जब तक शिव सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

गुण का अभिनन्दन करो, करो कर्म की हानि
गुरु कहते गुण गौण हो, किस विधि सुख हो प्राणि
चेतनवश तन शिव बने, शिव बिन तन शव होय
शिव की पूजा बुध करें, जड़ जन शव पर रोय
विषयों को विष बन तजूं बनकर विषयातीत

विषय बना ऋषि ईश को, गाऊं उनका गीत
गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत
अभिनन्दन जिन ! नित नमूं मुनि बन में भवभीत ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री अभिनन्दननाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

बचूँ अहित से हित करूँ, पर न लगा हित हाथ
अहित साथ न छोड़ता, कष्ट सहूँ दिन-रात
बिगड़ी धरती सुधरती, मति से मिलता स्वर्ग
चारों-गतियाँ बिगड़ती, पा अघ मति संसर्ग
सुमतिनाथ प्रभु ! सुमति हो, मम मति है अति मंद
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरंद
तुम जिन मेघ मयूर में, गरजो-बरसो नाथ
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

निरी छटा ले तुम छठे, तीर्थकरों में आप
निवास लक्ष्मी के बने, रहित पाप संताप
हीरा-मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ
तुम सा तम-तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात
शुभ्र सरल तुम बाल तब, कुटिल कृष्ण तब नाग
तब चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग
विराग पद्मप्रभ आपके , दोनों पाद सरग
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय नमो नमः

यथा सुधाकर खुद सुधा, बरसाता बिन स्वार्थ
धर्मामृत बरसा दिया, मिटा जगत का आर्त
दाता देते दान हैं, बदले की ना चाह
चाह-दाह से दूर हो, बड़े-बड़ों की राह
अबंध भाते काटके, वसु विध विधि का बंध
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभुपना, पा पाए आनंद

बांधबांध विधि बंध मैं, अंध बना मति मंद
ऐसा बल दो अंध, को बंधन तोड़ दंढ ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

सहन कहाँ तक अब करूँ, मोह मारता डंक
दे दो इसको शरण ज्यों, माता सुत को अंक
कौन पूजता मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक
आप अंक हैं शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख
चन्द्र कलंकित किन्तु हो, चन्द्रप्रभ अकलंक
वह तो शंकित केतु से शंकर तुम निशंक
रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मन का पंक
जाप जपूँ जिननाम का, बैठ सदा पर्यंक ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमो नमः

सुविधि ! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर,
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर
किस वन की मूली रहा, मैं तुम गगन विशाल
दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार
फिर किस विध निरखून तुम्हें, नयन करूँ विस्फार
नाचूँ गाऊँ ताल दूँ, किस भाषा में ढाल
बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि बाल
बवाल भव का मम मिटे, तुम पद में मम भाल ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री सुविधिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

चिंता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर
अधिगम में गहरे गए, अव्यय सुख के पूर
युगों-युगों से युग बना, विघ्न अघों का गेह
युग द्रष्टा युग में रहें, पर ना अघ से नेह
शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर
शीतल जिन तब मत रहा, शीतल हरता पीर
सुचिर काल से मैं रहा, मोह नींद से सुप्त

मुझे जगाकर कृपा, प्रभो करो परितृप्त ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

राग द्वेष अरु मोह ये, होते कारण तीन
तीन लोक में भ्रमित वह, दीं-हीन अघ लीन
निज क्या पर क्या स्वपर क्या, भला बुरा बिन बोध
जिजीविषा ले खोजता, सुख ढोता तन बोझ
अनेकांत की कांति से, हटा तिमिर एकांत
नितांत हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शांत
निःश्रेयस् सुख धाम हो, हे जिनवर ! श्रेयांस
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लों घाट में श्वाँस ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

औ न दया बिन धर्म ना, कर्म कटे बिन धर्म
धर्म मम तुम समझकर, करलो अपना कर्म
वासुपूज्य जिनदेव ने, देकर यूँ उपदेश
सबको उपकृत कर दिया, शिव मैं किया प्रवेश
वसु-विध मंगल-द्रव्य ले, जिन पूजों सागार
पाप घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजों मुनि लोग
बिन निज शुभ उपयोग कल, शुद्ध ना उपयोग ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमो नमः

काया-कारा में पला, प्रभु तो कारातीत
चिर से धारा में पड़ा, जिनवर धारातीत
कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल
मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भगवान
विमलनाथ ! तुम अमल हो, संबल दो भगवान
ज्ञान छोर तुम मैं रहा, ना समझ की छोर
छोर पकड़कर झट इसे, खींचो अपनी ओर ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

आदि रहित सब द्रव्य हैं, ना हो इनका अंत
गिनती इनकी अंत से, रहित अनंत-अनंत
कर्त्ता इनका पर नहीं, ये न किसी के कर्म
संत बने अरिहंत हो, जाना पदार्थ धर्म
अनंत गुण पा कर दिया, अनंत भव का अंत
'अनंत' सार्थक नाम तब, अनंत जिन जयवंत
अनंत सुख पाने सदा, भव से हो भयवंत
अंतिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरुं स्मरें सब संत ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

जिससे बिछुड़े जुड़ सकें, रुदन रुके मुस्कान
तन गत चेतन दिख सके, वही धर्म सुखखान
विरागता में राग हो, राग नाग विष त्याग
अमृतपान चिर कर सकें, धर्म यही झट जाग
दयाधर्म वर धर्म है, अदया भाव अधर्म
अधर्म तज प्रभु 'धर्म' ने, समझाया पुनि धर्म
धर्मनाथ को नित नमूं, सधे शीघ्र शिव शर्म
धर्ममर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

सकलज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूं नत-शीश
कामदेव हो काम से, रखते कुछ ना काम
काम रहे ना कामना, तभी बने सब काम
बिना कहे कुछ आपने, प्रथम किया कर्त्तव्य
त्रिभुवन पूजित आप्त हो, प्राप्त किया प्राप्तव्य
शांतिनाथ हो शांत कर, सातासाता सांत
केवल केवलज्योतिमय क्लान्ति मिटी सब ध्वान्त ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

ध्यान अग्नि से नष्ट कर, पप्रथम ताप परिताप
कुंथुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने आप
उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार
कुम्भकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार
दीन-दयाल प्रभु रहे, करुणा के अवतार
नाथ-अनाथों के रहे, तार सको तो तार
ऐसी मुझपे हो कृपा, मम मन मुझमे आय
जिस विध पल में लवण है, जल में घुल मिल जाय ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

चक्री हो पर चक्र के, चक्कर में ना आय
मुमुक्षुपन जब जागता, बुभुक्षुपन भग जाय
भोगों का कब अंत है, रोग भोग से होय
शोक रोग में हो अतः, काल योग का रोय
नाम मात्र भी नहीं रखो, नाम काम से काम
ललाम आत्म में करो, विराम आठों याम
नाम धरी 'अर' नाम तव, अतः स्मरूं अविराम
अनाम बन शिव धाम में, काम बनों कृत काम ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

क्षार-क्षार भार है भरा, रहित सार संसार
मोह उदय से लग रहा, सरस सार संसार
बने दिगम्बर प्रभु तभी, अन्तरंग बहिरंग
गहरी-गहरी हो नदी, उठती नहीं तरंग
मोह मल्ल को मारकर, मल्लिनाथ जिनदेव
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षयपद स्वयमेव
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग
किसी वस्तु से राग ना, तुम पद से मम राग ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

निज में यति ही नियति है, ध्येय 'पुरुष पुरुषार्थ

नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ
लौकिक सुख पाने कभी, श्रमण बनो मत भ्रात !
मिले धान्य जब कृषि करे, घास आप मिल जात
मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ
मात्र भावना मम रही, मुनिव्रत पालूँ यथार्थ
मैं भी 'मुनिसुव्रत बनूँ पावन पाय पदार्थ ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

मात्र नग्नता को नहीं, माना प्रभु शिव पंथ
बिना नग्नता भी नहीं, पावो पद अरहंत
प्रथम हते छिलका तभी, लाली हटती भ्रात
पाक कार्य फिर सफल हो, लो तब मुख में भात
अनेकांत का दास हो, अनेकांत की सेव
करूँ गहूँ मैं शीघ्र ही, अनेक गुण स्वयमेव
अनाथ मैं जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ
तव पद में दिन-रात हो, हाथ जोड़ नत माथ ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

राज तजा राजुल तजी, श्याम तजा बलराम
नाम धाम धन मन तजा, ग्राम तजा संग्राम
मुनि बन वन में तप सजा, मन पर लगा लगाम
ललाम परमात्म भजा, निज में किया विराम
नील-गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील
शील डोर मुझ बांध दो, डोर करो मत ढील ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री नेमीनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

रिपुता की सीमा रही, गहन किया उपसर्ग
समता की सीमा यही, ग्रहण किया अपवर्ग

क्या-क्यों किस विध कब कहें, आत्मध्यान की बात
पल में मिटती चिर बसी, मोह-अमा की रात
खास-दास की आस बस, श्वास-श्वास पर वास
पार्श्व ! करो मत दास को, उदासता का दास
ना तो सुर सुख चाहता, शिव सुख की ना चाह
तव धुति सरवर में सदा, होवे मम अवगाह ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः

क्षीर रहो प्रभु नीर मैं, विनती करूँ अखीर
नीर मिला लो क्षीर में, और बना दो क्षीर
अबीर हो, तुम वीर भी, धरते ज्ञान शरीर
सौरभ मुझमें भी भरो, सुरभित करो समीर
नीर-निधि से धीर हो, वीर बने गंभीर
पूर्ण तैरकर पा लिया, भवसागर का तीर
अधीर हो मुझ धीर दो, सहन करूँ सब पीर
चीर-चीर कर चिर लखूँ अंतर की तस्वीर ॥

ओम् ह्रीं अर्हं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमो नमः

स्वयंभू - स्तोत्र - दानतरायजी

(पं. दानतरायजी कृत)

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भवि शिवपद लियो
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान्, बन्दौं आदिनाथ गुणखान ॥

इन्द्र क्षीरसागर-जल लाय, मेरु न्हाये गाय बजाय
मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौं अजित अजित-पदकार ॥

शुक्ल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति-अघाति सकल दुखराशि
लह्यो मुक्तिपद सुख अविकार, बन्दौं सम्भव भव-दुःख तार ॥

माता पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बन्दौ अभिनन्दन मन लाय ॥

सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्वादधुनि धार
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुमतिदेवपद करहुँ प्रनाम ॥

गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय
बरसे रतन पंचदश मास, नमौ पदमप्रभु सुख की रास ॥

इन्द फेनन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुशाल
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौ सुपारसनाथ निहार ॥

सुगुन छियालिस हैं तुम माहि, दोष अठारह कोऊ नाहि
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौ चन्द्रप्रभ राख समीप ॥

द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बन्दौ पुहुपदन्त मन आन ॥

भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय
आप समान सबनि सुख देह, बन्दौ शीतल धर्म-सनेह ॥

समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश
चार संघ आनंद-दातार, नमौ श्रियांस जिनेश्वर सार ॥

रत्नत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल
मुक्तिनार भरता भगवान, वासुपूज्य बन्दौ धर ध्यान ॥

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी-ध्यानी हित-उपदेश
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त, बन्दौ विमलनाथ भगवन्त ॥

अन्तर-बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमौ अनन्त वचन-मन लाय ॥

सात तत्त्व पंचास्तिकाय, नव पदार्थ छह द्रव्य बताय
लोक अलोक सकल परकास, बन्दौ धर्मनाथ अविनाश ॥

पंचम चक्रवर्ती निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ बन्दौ हरषाय ॥

बहु थुति करे हरष नहि होय, निन्दे दोष गहैं नहि कोय
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बन्दौ कुन्थुनाथ शिवभूष ॥

द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, बन्दौ अर-जिनवर-पद दोय ॥

पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, बन्दौ मल्लिनाथ जिनसार ॥

बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौ मुनिसुव्रत व्रत देहि ॥

श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भाव सों दियो अहार
बरसी रतन-राशि तत्काल, बन्दौ नमिप्रभु दीन-दयाल ॥

सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वय बन्धन तोर
राजुल तज शिवतियसों मिले, नेमिनाथ बंदौ सुखनिले ॥

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनधार
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमौ मेरु-सम पारसस्वाम ॥

भवसागर तैं जीव अपार, धरमपोत में धरे निहार
डूबत काढ़े दया विचार, वर्धमान बन्दौं बहु बार ॥

चौबीसों पदकमलजुग, बन्दौं मनवचकाय
'द्यानत पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

आत्मबोध - शतक

(अर्यिकापूर्णमति कृत)

आत्म गुण के घातक चारों कर्म आपने घात दिए
अनन्तचतुष्टय गुण के धारक दोष अठारह नाश किए
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर अरिहंतों को नमन करूँ
आत्म बोध पाकर विभाव का नाश करूँ सब दोष हरु ॥1॥

कभी आपका दर्श किया ना ऐ सिद्धालय के वासी
आगम से परिचय पाकर मैं हुआ शुद्ध पद अभिलाषी
ज्ञान शरीरी विदेह जिनको वंदन करने मैं आया
सिद्ध देश का पथिक बना मैं सिद्धों सा बनने आया ॥2॥

छत्तीस मूलगुणों के गहने निज आत्म को पहनाए
पाले पंचाचार स्वयं ही शिष्य गणों से पलवाए
शिवरमणी को वरने वाले जिनवर के लघुनंदन हैं
श्री आचार्य महा मुनिवर को तीन योग से वंदन है ॥3॥

अंग पूर्व धर उपाध्याय श्रीश्रुत ज्ञानमृत दाता हैं
ज्ञान मूर्ति पाठक दर्शन से पाते भविजन साता हैं
ज्ञान गुफा में रहने वाले कर्म शत्रु से रक्षित हैं
णमो उवज्झायाणं पद से भव्य जनों से वंदित हैं ॥4॥

आत्म साधना लीन साधुगण आठ बीस गुण धारी हैं

अनुपम तीन रत्न के धारक शिवपद के अधिकारी हैं
साधु पद से अर्हत होकर सिद्ध दशा को पाना है
अतः प्रथम इन श्री गुरुओं के पद में शीश नवाना है ॥5॥

धन्य धन्य जिनवर की वाणी आत्म बोध का हेतु है
निज आत्म से परमात्म में मिलने का एक सेतु है
जहाँ जहाँ पर द्रव्यागम है उनको भाव सहित वंदन
नमन भावश्रुत धर को मेरा मेटो भव भव का क्रंदन ॥6॥

निज भावों की परिणतिया ही कर्मरूप फल देती है
भावों की शुभ-अशुभ दशा ही दुख-सुख मय कर देती है
कर्म स्वरूप न जान सका मैं नोकर्मों को दोष दिया
नूतन कर्म बाँध कर निज को अनंत दुख का कोष किया ॥7॥

तन से एक क्षेत्र अवगाही होकर यद्यपि रहता हूँ
फिर भी स्वात्मचतुष्टय में ही निवास मैं नित करता हूँ
पर भावों में व्यर्थ उलझ कर स्वात्म को न लख पाया
भान हो रहा मुझे आज क्यों आत्म रस न चख पाया ॥8॥

उपादान से पर न किंचित मेरा कुछ कर सकता है
नहीं स्वयं भी पर द्रव्यों को बना मिटा न सकता है
किंतु भ्रमित हो पर को निज का निज को पर कर्ता माने
अशुभ भाव से भव-कानन में भटके निज न पहचाने ॥9॥

मिथ्यावश चैतन्य देश का राज कर्म को सौंप दिया
दुष्कर्मों ने मनमानी कर गुणोंद्यान को जला दिया
विकृत गुण को देख देख कर नाथ आज पछताता हूँ
कैसे प्राप्त करूँ स्वराज को सोच नहीं कुछ पाता हूँ ॥10॥

इक पल की अज्ञान दशा में भव-भव दुख का बंध किया

अनर्थकारी रागादिक कर पल भर भी न चैन लिया
विकल्प जितना सस्ता उसका फल उतना ही महँगा है
सुख में रस्ता छोटा लगता दुःख में लगता लंबा है ॥11॥

मंद कषाय दशा में प्रभु के दिव्य वचन का श्रवण किया
किंतु मोह वश सम्यक् श्रद्धा और नहीं अनुसरण किया
आत्मस्वरूप शब्द से जाना अनुभव से मैं दूर रहा
स्वानुभूति के बिना स्वयं के कष्ट दुःख हों चूर कहाँ ॥12॥

मेरे चेतन चिदाकाश में अन्य द्रव्य अवगाह नहीं
फिर भी देहादिक निज माने यह मेरा अपराध सही
नीरक्षीर सम चेतन तन से नित्य भिन्न रहने वाला
रहा अचेतन तन्मय चेतन अनंत गुण गहने वाला ॥13॥

जग में यश पाकर अज्ञानी मान शिखर पर बैठ गया
सबसे बड़ा मान कर निज को काल कीच में पैठ गया
पर को हीन मान निज-पर के स्वरूप से अनजान रहा
इक पल यश सौ पल अपयश में दिवस बिता कर दुःख सहा ॥14॥

विशेष बनने की आशा में नहीं रहा सामान्य प्रभो
साधारण में एकेन्द्रिय बन काल बिताया अनंत प्रभो
भाव यही सामान्य रहूं नित विशेष शिव पद पाना है
सिद्ध शिला पर नंत सिद्ध में समान होकर रहना है ॥15॥

मैं हूँ चिन्मय देश निवासी जहाँ असंख्य प्रदेश रहें
अनंत गुणमणि कोष भरे जग दुःख कष्ट न लेश रहें
जानन देखन काम निरंतर लक्ष्य मेरा निष्काम रहा
मेरा शाश्वत परिचय सुनलो आत्म मेरा नाम रहा ॥16॥

स्पर्श रूप रस गंध रहित मैं शब्द अगोचर रहता हूँ

परम योगी के गम्य अनुपम निज में खेली करता हूँ
निराकार निर्बन्ध स्वरूपी निश्चय से निर्दोषी हूँ
स्वानुभूति रस पीने वाला निज गुण में संतोषी हूँ ॥17॥

निज भावों से कर्म बाँध क्यों पर को दोषी ठहराता
कर्म सज़ा ना देता इनको यह विकल्प तू क्यों लाता
कर्म न्याय करने मे सक्षम सुख-दुख आदिक कार्यों में
हस्तक्षेप न करना पर मैं विशेष गुण यह आर्यों में ॥18॥

गुरुदर्श गुरुस्नेह कृपा सच शिव सुख के ही साधन हैं
गुरु स्नेह पा मान करे तो होता धर्म विराधन है
अतः सुनो हे मेरे चेतन आत्म नेह नहीं तजना
कृपा करो निज शुद्धात्म पर मान यान पर न चढ़ना ॥19॥

नश्वर तन-धन की हो प्रशंसा सुनकर क्यों इतराते हो
कर्म निमित्ताधीन सभी यह समझ नहीं क्यों पाते हो
शत्रु पक्ष को प्रोत्साहित कर शर्म तुम्हें क्यों न आती
सिद्ध प्रभु के वंशज हो तुम क्रिया न यह शोभा पाती ॥20॥

अपने को न अपना माने तब तक ही अज्ञानी है
तन में आत्म भ्रंति करके करे स्वयं मनमानी है
इष्टानिष्ट कल्पना करके क्यों निज को तड़पाता है
ज्ञानवान होकर भी चेतन सत्य समझ न पाता है ॥21॥

जगत प्रशंसा धन अर्चन हित जैनागम अभ्यास किया
स्वात्म लक्ष्य से जिनवाणी का श्रवण किया न ध्यान किया
बिना अनुभव मात्र शब्द से औरों को भी समझाया
किया अभी तक क्या-क्या अपनी करनी पर मैं पछताया ॥22॥

स्वयं जागृति से हो प्रगति बात समझ में आई है

मात्र निमित्त से नहीं उन्नति कभी किसी ने पाई है
निज सम्यक पुरुषार्थ जगाकर नहीं एक पल खोना है
निज से निज में निज के द्वारा निज को निजमय होना है ॥23॥

पर भावों के नहीं स्वयं के भावों के ही कर्ता हैं
कर्मोदय के समय जीव निज भाव फलों का भोक्ता है
भाव शुभाशुभ कर्म जनित सब शुद्ध स्वभाव हितंकर है
अर्हत और सिद्ध पद दाता अनंत गुण रत्नाकर है ॥24॥

निज उपयोग रहे निज गृह तो कर्म चोर न घुस पाता
पर द्रव्यों में रहे भटकता चेतन गुण गृह लुट जाता
जागो जागो मेरे चेतन सदा जागते तुम रहना
सम्यक दृष्टि खोलो अपनी निज गृह की रक्षा करना ॥25॥

राग द्वेष से दुष्कर्मों को क्यों करता आमंत्रित है
स्वयं दुखी होने को आतुर क्यों शिव सुख से वंचित है
गुण विकृत हो दोष बने पर गुण की सत्ता नाश नहीं
ज्ञानादिक की अनुपम महिमा क्या यह तुझको ज्ञात नहीं ॥26॥

सहानुभूति की चाह रखे न स्वानुभूति ऐसी पाऊँ
स्वात्मचतुष्टय का वासी मैं पराधीनता न पाऊँ
मैं हूँ नित स्वाधीन स्वयं में निमित्त के आधीन नहीं
शुद्ध तत्त्व का लक्ष्य बनाकर पाऊँ पावन ज्ञान मही ॥27॥

जीव द्रव्य के भेद ज्ञात कर परिभाषा भी ज्ञात हुई
किंतु यह मैं जीव तत्त्व हूँ भाव भासना नहीं हुई
बिना नीव जो भवन बनाना सर्व परिश्रम व्यर्थ रहा
आत्म तत्त्व के ज्ञान बिना त्यों चारित का क्या अर्थ रहा ॥28॥

त्रैकालिक पर्याय पिंडमय अनंत गुणमय द्रव्य महान

निज स्वरूप से हीन मानना भगवंतों ने पाप कहा
वर्तमान पर्याय मात्र ही क्यों तू निज को मान रहा
पर्यायों में मूढ़ आत्मा पूर्ण द्रव्य न जान रहा ॥29॥

कर्म पुण्य का वेश पहन कर चेतन के गृह में आया
निज गृह में भोले चेतन ने पर से ही धोखा खाया
सहज सरल होना अच्छा पर सावधान होकर रहना
आत्म गुण की अनुपम निधियां अब इसकी रक्षा करना ॥30॥

पढ़ा कर्म सिद्धांत बहुत पर समझ नहीं कुछ भी आया
नोकर्मों पर बरस पड़ा यह जब दुष्कर्म उदय आया
कर्म स्वरूप भिन्न है मुझसे भेद ज्ञान यह हुआ नहीं
बोझ रूप वह शब्द ज्ञान है कहते हैं जिनराज सही ॥31॥

पर द्रव्यों के जड़ वैभव पर आत्म क्यों ललचाता है
निज प्रदेश में अणु मात्र भी नहीं कभी कुछ पाता है
हो संतुष्ट अनंत गुणों से अनंत सुख को पाएगा
निज वैभव से भव विनाश कर सिद्ध परम पद पाएगा ॥32॥

वीतराग की पूजा कर क्यों राग भाव से राग करे
निर्ग्रंथों का पूजक होकर परिग्रह की क्यों आश करे
कथनी औ करनी में अंतर धरती अंबर जैसा है
कहो वही जो करते हो तुम वरना निज को धोखा है ॥33॥

अंतर्मुख उपयोग रहे तो निजानन्द का द्वार खुले
अन्य द्रव्य की नहीं अपेक्षा कर्ममैल भी सहज धुले
गृह स्वामी ज्ञानोपयोग यदि निज गृह रहता सुख पाता
पर ज्ञेयों में व्यर्थ भटकता झूठा है पर का नाता ॥34॥

अपने को जो अपना माने वह पर को भी पर माने

स्वपर भेद विज्ञानी होकर लक्ष्य परम पद का ठाने
ज्ञानी करता ज्ञान मान का अज्ञ ज्ञान का मान करे
संयोगों में राग द्वेष बिन विज्ञ स्वात्म पहचान करे ॥35॥

वस्तु अच्छी बुरी नहीं होती दृष्टि इष्टानिष्ट करे
वस्तु का आलंबन लेकर विकल्प मोही नित्य करे
बंधन का कारण नहीं वस्तु भाव बंध का कारण है
अतः भव्य जन भाव सम्हालो कहते गुरु भवतारण हैं ॥36॥

इच्छा की उत्पत्ति होना भव दुख का ही वर्धन है
इच्छा की पूर्ति हो जाना राग भाव का बंधन है
इच्छा की पूर्ति न हो तो द्वेष भाव हो जाता है
इच्छाओं का दास आत्मा भव वन में खो जाता है ॥37॥

सर्व द्रव्य हैं न्यारे-न्यारे यही समझ अब आता है
जीव अकेला इस भव वन में सुख-दुख भोगा करता है
फिर क्यों पर की आशा करना सदा अकेले रहना है
स्व सन्मुख दृष्टि करके अब अपने में ही रमना है ॥38॥

अरी चेतना सोच ज़रा क्यों पर परिणति में लिपट रही
स्वानुभूति से वंचित होकर क्यों निज-सुख से विमुख रही
पर द्रव्यों में उलझ-उलझ कर बोल अभी तक क्या पाया
अपना अनुपम गुण-धन खोकर विभाव में ही भरमाया ॥39॥

पिता पुत्र धन दौलत नारी मोह बढ़ावन हारे हैं
परम देव गुरु शास्त्र समागम मोह घटावन हारे हैं
सम्यक दर्शन ज्ञान चरित सब मोह नशावन हारा हैं
रत्नत्रय की नैया ने ही नंत भव्य को तारा है ॥40॥

अज्ञानी जन राग भाव को उपादेय ही मान रहे

ज्ञानी भी तो राग करे पर हेय मानना चाह रहे
दृष्टि में नित हेय वर्तता किंतु आचरण में रागी
ऐसे ज्ञानी धन्यधन्य हैं शीघ्र बनें वे वैरागी ॥41॥

कर्म बँध के समय आत्मा रागादिक से मलिन हुई
कर्म उदय के समय कर्म फल संवेदन में लीन हुई
भाव कर्म से द्रव्य कर्म औ द्रव्य उदय में भाव हुआ
निमित्त नैमित्तिक भावों से इसी तरह परिभ्रमण हुआ ॥42॥

कर्म उदय को जीत आत्मा निज स्वरूप में लीन रहे
उपादान को जागृत करके नहीं निमित्ताधीन रहे
राग द्वेष भावों को तज कर नूतन कर्म विहीन करे
जिनवर कहते विजितमना वह मुक्तिरमा को शीघ्र वरे ॥43॥

कर्म यान पर संसारी जन बैठ चतुर्गति सैर करे
ज्ञान नाव पर ज्ञानी बैठे भव समुद्र से तैर रहे
एक कर्म फल का रस चखता इक शिव फल रस पीता है
जनम मरण करता अज्ञानी ज्ञानी शाश्वत जीता है ॥44॥

योगी भोजन करते-करते कर्म निर्जरा करता है
भजन करे अज्ञानी फिर भी कर्म बंध ही करता है
अभिप्राय अनुसार कर्म के बंध निर्जरा होती है
श्रीजिनवर की सहज देशना कर्म कलुशता धोती है ॥45॥

चेतन द्रव्य नहीं दिखता है जो दिखता वह सब जड़ है
फिर क्यों जड़ का राग करूँ मैं चेतन मेरा शुचितम है
देह विनाशी मैं अविनाशी निज का ही संवेदक हूँ
स्वयं स्वयं का पालनहारा निज का ही निर्देशक हूँ ॥46॥

क्या ले कर आए क्या ले कर जाएँगे ये मत सोचो

तीव्र पुण्य ले कर आए हो जैन धर्म पाया सोचो
देव शास्त्र गुरु मिला समागम तत्त्व रूचि भी प्रकट हुई
शक्ति के अनुसार व्रती बन नर काया यह सफल हुई ॥47॥

हे उपयोगी नाथ ज्ञानमय दृष्टि स्वसन्मुख कर दो
नंत कल से व्यथित चेतना दुःख शमन कर सुख भर दो
तजो अशुभ उपयोग नाथ तुम शुभ से शुद्ध वरण कर लो
अपनी प्रिया चेतना के गृह मिथ्यातमस सभी हर लो ॥48॥

पर वस्तु पर द्रव्य समागम दुःख क्लेश का कारण है
आत्मज्ञान से निजानुभव ही सुख कारण भय वारण है
स्वपर तत्त्व का भेद जानकर निज को ही नित लखना है
शिव पद पाकर नंत काल तक स्वात्म ज्ञान रस चखना है ॥49॥

मेरे पावन चेतन गृह में अनंत निधियां भरी पड़ी
माँ जिनवाणी बता रही पर ज्ञान नयन पर धूल पड़ी
बना विकारी मन इन्द्रिय से भीख माँगता रहता है
दर दर का यह बना भिखारी पर घर दृष्टि रखता है ॥50॥

हे आत्म तू नंत काल से निज में परिणम करता है
पर से कुछ न लेना देना फिर विकल्प क्यों करता है
निर्विकल्प होने का चेतन दृढ़ संकल्प तुम्हें करना
तज कर अन्तर्जल्प शीघ्र ही शांत भवन में है रहना ॥51॥

वर्तमान में भूल कर रहा पूर्व कर्म का उदय रहा
नहीं भूल को भूल मानना वर्तमान का दोष रहा
निज से ही अंजान आत्मा पर को कैसे जानेगा
इच्छा के अनुसार वर्तता प्रभु की कैसे मानेगा ॥52॥

मेरी अनुपम सुनो चेतना ज्ञान-बाग में तुम विचरो

निज उपयोगी देव संग में शील स्वरूप सुगंध भरो
अन्य द्रव्य से दृष्टि हटाकर व्यभिचार का त्याग करो
अनविकार चेष्टाएँ तजकर निजात्म पर उपकार करो॥53॥

सुख स्वरूप आत्म अनुभव से राग दुःखमय भास रहा
निज निर्दोष स्वरूप लखा तो दृष्टि में न दोष रहा
राग भाव संयोगज जाने ज्ञानी इनसे दूर रहे
मैं एकत्व विभक्त आत्मा यही जान सुख पूर रहे ॥54॥

पर से नित्य विभक्त चेतना निज गुण से एकत्व रही
स्वभाव से सामर्थ्यवान यह पर द्रव्यों से पृथक् रही
अन्य अपेक्षा नहीं किसी की निजानन्द को पाने में
निज स्वभाव का सार यही है विभाव के खो जाने में॥55॥

न्यायवान एक कर्म रहा है समदृष्टि से न्याय करे
भावों के अनुसार उदय की पूर्ण व्यवस्था कर्म करे
कर्म समान व्यवस्थापक इस जग में और न दिखता है
निज निज करनी के अनुसारी लेख सभी के लिखता है ॥56॥

तन चेतन इक साथ रहे तो दुख का कारण न मानो
एक मानना देहात्म को अनंत दुख कारण जानो
देह चेतना भिन्न-भिन्न ज्यों त्यों दुख चेतन भिन्न रहा
परम शुद्ध निश्चय से आत्म नित चिन्मय सुख कंद कहा ॥57॥

राग भाव है आत्म विपत्ति इसे नहीं अपना मानो
राग भाव का राग सदा ही महा विपत्ति ही जानो
सब विभाव से भिन्न रहा मैं ज्ञान भाव से भिन्न नहीं
राग आग का फल है जलना पाऊँ केवलज्ञान मही ॥58॥

पूजा और प्रतिष्ठा के हित भगवत भक्ति न करना

शब्द ज्ञान पांडित्य हेतु मन श्रुताभ्यास भी न करना
मात्र बाह्य उपलब्धि हेतु अनुष्ठान सब व्यर्थ रहा
दृष्टि सम्यक नहीं हुई तो पुरुषार्थ क्या अर्थ रहा ॥59॥

मैं को प्राप्त नहीं करना है मात्र प्रतीति करना है
जो मैं हूँ वह निज में ही हूँ स्वानुभूति ही करना है
दृष्टि अपेक्षा विभाव तजकर ज्ञान मात्र अनुभवना है
नंत गुणों का पिंड स्वयं मैं निज में ही नित रमना है ॥60॥

आत्म भावना भा ले चेतन भाव स्वयं ही बदलेगा
भाव बदलते भव बदलेगा पर का तू क्या कर लेगा
स्वयं जगत परिणाम हो रहा तू निज भावों का कर्ता
ज्ञान मात्र अनुभवो स्वयं को हे चेतन चिन्मय भोक्ता ॥61॥

तत्त्व ज्ञान जितना गहरा हो निज समीपता आती है
निकट सरोवर के हो जितना शीतलता ही आती है
आत्म तत्त्व का आश्रय करके ज्ञान करे तो सम्यक हो
ज्ञान सिंधु में खूब नहाकर भविष्य शाश्वत उज्ज्वल हो ॥62॥

पूर्ति असंभव सब विकल्प की अभाव इसका संभव है
पर आश्रय से होने वाले स्वाश्रय से होता क्षय है
विकल्प करने योग्य नहीं है निषेधने के योग्य रहे
निर्विकल्प होकर हे चेतन ज्ञान मात्र ही भोग्य रहे ॥63॥

भविष्य के संकल्प भूत के विकल्प तू क्यों करता है
अजर अमर अविनाशी होकर कौन जनमता मरता है
पुद्गल की इन पर्यायों में निर्भ्रम होकर रहना है
वर्तमान में निज विवेक से निजात्म में ही रमना है ॥64॥

पर का कर्ता मान भले तू पर कर्ता न बन सकता

पर को सुखी-दुखी करने में भाव मात्र ही कर सकता
तेरा कार्य तुझे ही करना अन्य नहीं कर सकता है
दृढ़ निश्चय यह करके आत्म अनंत सौख्य पा सकता है ॥65॥

किंचित ज्ञान प्राप्त कर चेतन समझाने क्यों दौड़ गया
लक्ष्य स्वयं को समझाने का तू क्यों अखिर भूल गया
सभी समझते स्वयं ज्ञान से पर की चिंता मत करना
स्वयं शुद्ध आत्मज्ञ होय कर ज्ञान शरीरी ही रहना ॥66॥

निमित्त दूर करो मत चेतन उपादान को सम्हालो
बारंबार निमित्त मिलेंगे चाहे कितना कुछ कर लो
कर्मोदय ही नोकर्मों के निमित्त स्वयं जुटाता है
उपादान यदि जागृत हो तो कोई न कुछ कर पाता है ॥67॥

भव वर्धक भावों से आत्म कभी रूचि तुम मत करना
परमानंद तुम्हारा तुममें इससे वंचित न रहना
बहुत कर चुके कार्य अभी तक कितु नहीं कृतकृत्य हुए
रूचि अनुसारी वीर्य वर्तता आत्म रूचि अतः प्राप्त करे ॥68॥

निज की सुध-बुध भूल गया तो कर्म लूट ले जाएंगे
स्वसन्मुख यदि दृष्टि रही तो कर्म ठहर न पाएंगे
निज पर नज़र गड़ाए रखना हे अनंत धन के स्वामी
आत्म प्रभु का कहना मानो बनना तुमको शिवधामी ॥69॥

इच्छा से जब कुछ न होता फिर क्यों कष्ट उठाते हो
सब अनर्थ की जड़ है इच्छा समझ नहीं क्यों पाते हो
ज्ञानानंद घातने वाली इच्छाएँ ही विपदा हैं
निस्तरंग आनंद सरोवर निज में शाश्वत सुखदा है ॥70॥

परिजन मित्र समाज देशहित बहुत व्यवस्थाएँ करते

अस्तव्यस्त निज रही चेतना आत्म व्यवस्था कब करते
चेतन प्यारे निज की सुध लो बाहर में कुछ इष्ट नहीं
नंत काल से जानबूझ कर विष को पीना ठीक नहीं ॥71॥

पुद्गल आदिक बाह्य कार्य में चेतन जड़वत हो जाना
विषय भोग व्यवहार कार्य में मेरे आत्म सो जाना
निश्चय में नित जागृत रहना लक्ष्य न ओझल हो पावे
कर्मोदय हो तीव्र भले पर दृष्टि आत्म पर जावे ॥72॥

हेय तत्त्व का ज्ञान किया जो मात्र हेय के लिए नहीं
उपादेय की प्राप्ति हेतु ही ज्ञेय ज्ञान हो जाए सही
ज्ञायक मेरा रूप सुहाना ज्ञाता मेरा भाव रहे
ज्ञान संग मैं अनंत गुणयुत चिन्मय मेरा धाम रहे ॥73॥

प्रति वस्तु की अपनी-अपनी मर्यादाएँ होती हैं
भिन्न चतुष्टय सबके अपने निज में परिणति होती है
इक क्षेत्रावगाह चेतन तन होकर भिन्नभिन्न रहते
निज-निज गुणमय पर्यायों में द्रव्य नित्य परिणम करते ॥74॥

निज की महिमा नहीं समझता यही पाप का उदय कहा
पर पदार्थ की महिमा गाता नश्वर की तू शरण रहा
वीतराग प्रभुवर कहते तू तीन लोक का ज्ञाता है
इससे बढ़कर क्या महिमा है निश्चय से निज दृष्टा है ॥75॥

मेरे में मैं ही रहता हूँ अन्य द्रव्य का दखल नहीं
अनंत गुण हैं सदा सुरक्षित सत्ता मेरी नित्य रही
निज में ही संतुष्ट रहूँ मैं पर से मेरा काम नहीं
यह दृढ़ निश्चय करके ही मैं पा जाऊँ ध्रुव धाम मही ॥76॥

निज पर दुष्कर्मों के द्वारा क्यों उपसर्ग कराते हो

मिथ्यातम अविरत कषाय औ योग द्वार खुलवाते हो
अपने हाथों निज गृह में क्यों अग लगाते रहते हो
अपने को ही अपना मानो अपनों में क्यों रमते हो ॥77॥

स्वपर भेद अभ्यास बिना ही संकट नाश नहीं होता
स्वात्म प्रभु की दृढ़ आस्था बिन निज में भास नहीं होता
भेद ज्ञान अमृत के जैसा अजर अमर पद दाई है
हे आत्म इसको न तजना यह अनुपम अतिशायी है ॥78॥

विभाव विष को तज कर आत्म स्वभाव अमृत पान करो
सबसे भिन्न निराला निरखो निज का निज में ध्यान धरो
बहुत सरल है आत्म ध्यान जो पंचेंद्रिय अनपेक्ष रहा
सरल कार्य को कठिन बनाया चेतन अब तो चेत ज़रा ॥79॥

स्वभाव का सामर्थ्य जानकर पर द्रव्यों से पृथक् रहो
विभाव को विपरीत समझकर स्वात्म गुणों में लीन रहो
बाहर में करने जैसा कुछ नहीं जगत में दिखता है
भीतर में जो होने वाला वही हो रहा होता है ॥80॥

निज आत्म से अन्य रहे जो वे मुझको क्या दे सकते
मेरे गुण मुझ में शाश्वत हैं वे मुझसे क्या ले सकते
मैं अपने में परिणमता हूँ पर का कुछ संयोग नहीं
मेरा सब कुछ मुझ को करना मेरा दृढ़ विश्वास यही ॥81॥

मैं धर्मात्मा बहुत शांत हूँ जग वालों से मत कहना
शांति प्रदर्शन बिन अशांति के कैसे हो जिन का कहना
ज्ञानी तुम्हे अशांत कहेंगे अतः सत्य शांति पाओ
शब्द अगोचर आत्मशांति है शब्द वेश ना पहनाओ ॥82॥

जो दिखता है वह अजीव है इसमे सुख गुण सत्त्व नहीं

फिर कैसे वह सुख दे सकता आश न रखना अन्य कहीं
सुख गुण वाले जीव नंत पर वह निज सुख न दे सकते
अपने सुख को प्रगटा कर अनंत सुखमय हो सकते ॥83॥

आत्म शांति यदि पाना चाहो जग के मुखिया मत होना
नश्वर ख्याति पद के खातिर आत्म निधियां मत खोना
पल भर इंद्रिय सुख को पाने चिदानंद को न भूलो
सर्व जगत से मोह हटा कर निज प्रदेश को तुम छू लो ॥84॥

समझाने का भ्रम न पालो किसकी सुनता कौन यहाँ
सब अपने मन की सुनते हैं कौन किसी का हुआ यहाँ
अपना ही अपना होता है केवल आत्म अपना है
ज्ञानमयी आत्म को समझो शेष जगत सब सपना है ॥85॥

मान बढ़ाने जग का परिचय विकल्पाग्नि का ईंधन है
स्वात्म अनंत गुणों का परिचय जीवन का शाश्वत धन है
पर से परिचित निज से वंचित रह कर आखिर क्या पाया
जिन परिचय से निज का परिचय मुझको आज समझ आया ॥86॥

पर पदार्थ को शरण मानकर निज को अशरण करना है
निज का संबल छूट गया तो भव-भव में दुख करना है
परमेष्ठी व्यवहार शरण औ निज शुद्धात्म निश्चय है
अनंत बलयुत चिद घन निर्मल शरणभूत निज चिन्मय है ॥87॥

कर्मोपाधी रहित सदा मैं अनंत गुण का पिंड रहा
जिनवाणी ने आत्म तत्त्व को पूर्ण ज्ञान मार्तंड कहा
सुख-दुख कर्म जनित पीड़ाएँ आती जाती रहती हैं
मेरे ज्ञान समंदर में नित ज्ञान धार ही बहती है ॥88॥

राग भाव की पूर्ति करके अज्ञानी हर्षित होता

ज्ञानी राग नहीं करता पर हो जाने पर दुख होता
ज्ञानी और अज्ञानीजन में अंतर अविनि अंबर का
इक बाहर नश्वर सुख पाता इक पाता है अंदर का ॥89॥

बिना कमाए सारे वैभव पुण्योदय से मिल जाते
किंतु तत्त्वज्ञान बिन आत्म शान्ति कभी नहीं पाते
श्रम करते पर पापोदय में धन सुख वैभव नहीं मिले
***** ॥90॥

जो दिखता है वह मैं न हूँ देखनहारा ही मैं हूँ
निज आत्म को ज्ञानद्वार से जाननहारा ही मैं हूँ
ज्ञान ज्ञान में ही रहता है पर ज्ञेयों में न जाता
ज्ञेय ज्ञेय में ही रहते पर सहज जानने में आता ॥91॥

वर्तमान में निर्दोषी पर भूतकाल का दोषी हूँ
नोकर्मों का दोष नहीं कुछ यही समझ संतोषी हूँ
अन्य मुझे दुख देना चाहे किंतु दुखी मैं क्यों होऊँ
आत्मधरा पर कषाय करके नये कर्म को क्यों बोऊँ ॥92॥

निश्चय से उपयोग कभी भी बाहर कहीं न जा सकता
एक द्रव्य का गुण दूजे में प्रवेश ही न पा सकता
मोही पर को विषय बनाता तब कहने में आता है
यदि पर में उपयोग गया तो ज्ञान शून्य हो जाता है ॥93॥

अगर हृदय में श्रद्धा है तो पत्थर में भी जिनवर हैं
मूर्तिमान दिखते मूर्ति में कागज पर जिनवर वच हैं
कर्म परत के पार दिखेगा तुझको तेरा प्रभु महान
कौन रोक पाएगा तुझको बनने से अर्हत भगवान ॥94॥

मान नाम हित किया दान तो अनर्थ औ निस्सार रहा

पुण्य लक्ष्य से दान दिया तो दान नहीं व्यापार रहा
पुण्य खरीदा निज को भूला अपना क्यों नुकसान करे
अहम भाव से रहित दान कर भगवत पद आसान करे ॥95॥

पाप भाव का दंड बाह्य में मिले न या मिल सकता है
पर अंतस में आकुलता का दंड निरंतर मिलता है
पाप विभाव भाव दुखदाई कर्म जनित है नित्य नहीं
जो स्वभाव है वह अपना है शाश्वत रहता सत्य वही ॥96॥

पूजादिक शुभ सर्व क्रियाएँ रूढिक कही न जा सकती
मोक्ष निमित्तिक क्रिया सभी यह शिव मंजिल ले जा सकती
समकित के यदि साथ क्रिया हो सम्यक संयम चरित वही
अतः भावयुत क्रिया करो नित पा जाओ ध्रुव धाम मही ॥97॥

तन परिजन परिवार संबंधी नंत बार कर्तव्य किए
निज शुद्धात्म प्रकट करने को कभी न कोई कार्य किए
निज मंतव्य शुद्ध करके अब शीघ्र प्राप्त गंतव्य करें
कुछ ऐसा कर्तव्य करें अब जिनवर पद कृतकृत्य वरे ॥98॥

हो निमित्त आधीन आत्मा कर्म बांधता रहता है
कभी-कभी ऐसा भी होता उसे पता न चलता है
बँध शुभाशुभ भावों से हो श्वान वृत्ति को तजना है
सिंह वृत्ति से उपादान की स्वयं विशुद्धी करना है ॥99॥

पर की अपकीर्ति फैलाकर कभी कीर्ति न पा सकते
अपयश का भय रख कर यश की चाह नही कम कर सकते
ख्याति-त्याग के प्रवचन में भी ख्याति का न लक्ष्य रहे
यश चाहो तो ऐसा चाहो तीन लोक यश बना रहे ॥100॥

भव भटकन को तज कर साधक आत्मिक यात्रा शुरू करो

स्वानुभूति का मंत्र जापकर अपनी मंज़िल प्राप्त करो
पर ज़ेयों की छटा ना देखो आत्म ज्ञान ही ज़ेय रहे
कर्मशूल से बच कर चलना मात्र लक्ष्य आदेय रहे ॥

पार्श्वनाथ - स्तोत्र

(पं. दयानतरायजी कृत)

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं, शतेन्द्रं सु पूजै भजै नाय शीशं
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमो जोडि हाथं नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥१॥

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आगतैं नागतैं तू बचावै
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै, महारोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै ॥२॥

दुखीदुःखहर्त्ता सुखीसुखकर्त्ता, सदा सेवकों को महानंदभर्त्ता
हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं ॥३॥

दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनको तू भले पुत्र कीने
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता ॥४॥

महाचोर को वज्र को भय निवारै, महापौन के पुंजतैं तू उबारै
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा, महालोभ शैलेश को वज्र भारा ॥५॥

महामोह अन्धेर को ज्ञान भानु, महाकर्म कांतार को दौ प्रधानं
किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी, हर्यो मान तू दैत्य को हो अकामी ॥६॥

तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं
पशू नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावै, महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावै ॥७॥

करे लोह को हेम पाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी
करै सेव ताकी करैं देव सेवा, सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा ॥८॥

जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै

बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सैं काज मेरे ॥९॥

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान
'द्यानत प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान ॥१०॥

महावीराष्टक- स्तोत्र

भागचंदजी कृत

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिता,
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनि लसन्तोऽन्तरहिता
जगत्साक्षीमार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षु कमल-युगलं स्पन्दरहितम्
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं
लसत्-पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु भृताम् ।
भव ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्-स्वर्गी गुण-गण-समृद्ध सुखनिधि
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥

कनस्वर्णाभासोप्यपगत तनुर्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति वर् सिद्धार्थ तनयः

अजन्मापि श्रीमान विगतभवरागोदभुत गतिः
महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्रपयति
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥७॥

महा-मोहातंक-प्रशमन-परा-कस्मिन्भिषग
निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमा मंगलकर
शरण्य साधूनां भव-भयभृतामुत्तम-गुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥

(अनुष्टुप)
महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥

महावीराष्टकस्तोत्र (हिंदी)

(भागचंदजी कृत संस्कृत पाठ का डा. वीरसागरद्वारा हिंदी अनुवाद)

जिनके चेतन में दर्पणवत सभी चेतनाचेतन भाव
युगपद झलकें अंतरहित हो ध्रुव-उत्पादव्ययात्मक भाव
जगत्साक्षी शिवमार्ग प्रकाशक जो हैं मानो सूर्य-समान
वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥१॥

जिनके लोचनकमल लालिमा रहित और चंचलताहीन
समझाते हैं भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर क्रोधविहीन
जिनकी प्रतिमा प्रकट शान्तिमय और अहो है विमल अपार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥२॥

नमते देवों की पंक्ति की, मुकुटमणि का प्रभासमूह
जिनके दोनों चरणकमल पर, झलके देखो जीवसमूह
सांसारिक ज्वाला को हरने, जिनका स्मरण बने जलधार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥३॥

जिनके अर्चन के विचार में, मेंढक भी जब हर्षितवान
क्षण भर में बन गया देवता, गुणसमूह और सुख निधान
तब अचरज क्या यदि पाते हैं, सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार ?
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥४॥

तप्तस्वर्णसा तन है फिर भी, तनविरहित जो ज्ञानशरीर
एक रहें होकर विचित्र भी, सिद्धार्थ राजा के वीर
होकर भी जो जन्मरहित हैं, श्रीमन फिर भी न रागविकार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥५॥

जिनकी वाणीरूपी गंगा, नयलहरों से हीनविकार
विपुल ज्ञानजल से जनता का, करती है जग में स्नान
अहो ! आज भी इससे परिचित, ज्ञानी रूपी हंस अपार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥६॥

तीव्रवेग त्रिभुवन का जेता कामयोद्धा बड़ा प्रबल
वयकुमार में जिनने जीता उसको केवल निज के बल
शाश्वत सुख-शान्ति के राजा बनकर जो हो गये महान
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥७॥

महामोह आतंक शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार
निरापेक्ष बन्धु हैं, जग में जिनकी महिमा मंगलकार
भवभव से डरते सन्तों को शरण तथा वर गुण भंडार
वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥८॥

महावीराष्टक स्तोत्र को, 'भाग भक्ति से कीन
जो पढ़ ले अथवा सुने, परमगति वह लीन

श्री - गोमटेश्वर - स्तुति

विसट्ट कंदोट्ट दलाणुयारं सुलोयणं चंद समाण तुण्डं
घोणाजियं चम्पय पुप्फसोहं तं गोमट्टेसं पणमामि णिच्चं ॥१॥

अर्थ : [सुलोयणं] जिनके उत्तम नेत्र [कंदोट्ट] नील कमल के [दलाणुयारं] पंखुड़ी के अनुशरण को [विसट्ट] छोड़ने वाले अर्थात् उससे भी सुन्दर हैं, [तुण्डं] मुख [चंद-समाण] चन्द्रमा के समान सौम्य तथा [घोणा] नासिका [चम्पय पुप्फसोहं] चम्पक पुष्प की शोभा को [जियं] पराजित करती है, [तं] उन [गोमट्टेसं] गोमट्ट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥१॥

अच्छयसच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्ण पासं
गइंद-सुण्डुज्जल बाहुदण्डं तं गोमट्टेसं पणमामि णिच्चं ॥२॥

अर्थ : [जलकंत गंडं] जल के समान स्वच्छ कपोल [सुकण्ण पासं] कर्णपाश [आबाहु दोलंत] कंधो तक दोलपित हैं, [बाहुदण्डं] दोनों भुजाएँ [गइंद-सुण्डुज्जल] गजराज की सूंड के समान सुन्दर लम्बी हैं, [तं] उन [अच्छय-सच्छ] आकाश के समान निर्मल [गोमट्टेसं] गोमट्ट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥२॥

सुकण्ठसोहा जियदिव्व संखं, हिमालयुद्धाम विसाल कंधं
सुपेक्ख णिज्जायल सुट्ठुमज्झं तं गोमट्टेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

अर्थ : [सुकण्ठसोहा] अद्वितीय कंठ की शोभा से जिन्होंने [दिव्व संखं] दिव्य (अनुपम) शंख की शोभा को [जिय] जीत लिया है, [यस्य कंधं] जिनका वक्ष स्थल [हिमालयुद्धाम] हिमालय की भाँति उन्नत [च] और [विसाल] विशाल है, [यस्य] जिनका [सुट्ठुमज्झं] सुन्दर मध्यभाग/ कटिप्रदेश [सुपेक्ख णिज्जायल] सम्यक् अवलोकनीय और अचल है, [तं] उन [गोमट्टेसं] गोमट्ट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥३॥

विज्झाय लग्गे पविभासमाणं सिहामणि सव्वसुचेदियाणं
तिलोयसंतोसयपुण्णचंदं तं गोमट्टेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

अर्थ : [विज्झाय लग्गे] विध्यगिरी के अप्रभाग में [पविभासमाणं] जो प्रकाशमान हो रहे हैं, [सव्वसुचेदियाणं] सभी सुन्दर चैत्यों के [सिहामणि] शिखामणि तथा [तिलोय-संतोसय] तीन लोक के जीवों को आनंद देने में [पुण्णचंदं] जो पूर्ण चन्द्रमा हैं, [तं] उन [गोमट्टेसं] गोमट्ट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥४॥

लया-समक्वंतमहासरीरं भव्वावलीलद्ध सुकप्परुक्खं
देविदविदच्चिय पायपोम्मं तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥५॥

अर्थ : [लया-समक्वंत] लताओ से अन्नान्त जिनका [महासरीरं] विशाल शरीर है, [भव्वावलीलद्ध] जो भव्य समूह के लिए प्राप्त [सुकप्परुक्खं] कल्पवृक्ष के समान है तथा [देविदविदच्चिय] देवेंद्रों के द्वारा अर्चित जिनके [पायपोम्मं] चरण कमल हैं, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥५॥

दियंबरो जो ण भीइ जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

अर्थ : [दियंबरो जो] जो दिगंबर हैं, [च] और [ण भीइ जुत्तो] भययुक्त नहीं हैं अर्थात् निर्भय हैं, [ण च अंबरे] और न वस्त्रादि में [सत्तमणो] असक्त मन वाले हैं [विसुद्धो] विशुद्ध हैं, [सप्पादि जंतुप्फुसदो] सर्पादि जंतुओ से स्पर्श होने पर भी [ण कंपो] कम्पायमान नहीं हैं अर्थात् अडोल-अकम्प हैं, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥६॥

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठी सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं
विराय भावं भरहे विसल्लं तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

अर्थ : [जो सच्छदिट्ठी] जो स्वच्छ (सम) दृष्टि होने से [आसां] आशा तृष्णा को [ण पोक्खदि] पुष्ट नहीं करते [हयदोसमूलं] दोषों का मूल (मोह) नाश करने में [सोक्खे] जिनकी सुख में [ण वंछा] वांछा नहीं और [विराय भावं] विराग भाव होने से [भरहे] भरत में [विसल्लं] जो निशल्य हैं, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥७॥

उपाहि मुत्तं धणधामवज्जियं सुसम्मजुत्तं मयमोहहारयं
वस्सेय पज्जंतमुववासजुत्तं तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

अर्थ : [उपाहि मुत्तं] जो उपाधि से रहित हैं, [धणधाम] धन मकान आदि से [वज्जियं] रहित हैं, [सुसम्मजुत्तं] समता भाव सहित हैं तथा [मयमोहहारयं] मद मोह को हरने (नष्ट करने) वाले हैं, [वस्सेय पज्जंतं] एक वर्ष पर्यन्त [उववासजुत्तं] उपवास धारण करने वाले, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥८॥

कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्

(आ कुमुदचंद्र कृत)

कल्याण-मन्दिरमुदारमवद्यभेदि
भीताभय-प्रदमनिन्दितमंगु-घ्नि-पद्मम्
संसार-सागर-निमज्जदशैषजन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गिरिमाम्बुराशेः

स्तोत्रं सुविस्त्रत-मतिर्न विभुर्विधातुम्
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप
मस्मादृशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मे ॥३॥

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ मत्प्रो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मा
न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य
बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥५॥

ये योगनामपि न यान्ति गुणास्त्वेश
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः
जाता तदेवमसमीक्षित-कारितेयं
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति
तीव्रातपोपहत-पान्थ-जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवन्ति

जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बन्धाः
सद्यो भुजंगममया इव मध्य-भाग-
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्द्रनस्य ॥८॥

मुच्यन्त एव मनुजाः स हसा जिनेन्द्र
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि
गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः
सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११॥

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नाः
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥

क्रोधस्त्वा यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूप

मन्वेषयन्ति हृदयाभुजकोषदेशे
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य
दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति
तीर्वानलादुपल-भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥१५॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभावः
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विष-विकारमपाकरोति ॥१७॥

त्वामेव बीत-तमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि-हरादिधिया प्रपन्नाः
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ॥१८॥

धर्मोपदेश-समये सविधानुभावाद्
आस्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः ॥१९॥

चित्रं विभो कथमवांगमुखवृन्तमेव

विष्वक्पतत्यविरला सुर-पुष्पवृष्टिः
त्वद् गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

स्थाने गभीर-हृदयोदधिसम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति
पीत्वा यतः परम-सम्मद-संग-भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजामरत्वम् ॥२१॥

स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुंगवाय
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्ध-भावाः ॥२२॥

श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम्
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
श्रामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥

उद् गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्त-च्छद-च्छविरशोक-तरुर्बभूव
सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम्
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ

तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः
मुक्ता-कलाप-कलितोरु-सितातपत्र-
व्याजाल्लिधा धृत-तनुध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥

स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन
माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

दिव्य-स्रजो जिन नमस्त्रिदशाधिपान्
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

त्वं नाथ जन्म-जलधेर्विपरांगमुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान्
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाक-शून्यः ॥२९॥

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षर-प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतुः ॥३०॥

प्राग्भार-सम्भूत-नभांसि रजांसि रोषद्
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेवपरं दुरात्मा ॥३१॥

यद्रर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीम-

भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोरधारम्
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दधे
तेनैव तस्य जिन दुस्तर-वारि कृत्यम् ॥३२॥

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति-मत्र्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयवक्त्रविनिर्यदग्निः
प्रेमव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥३३॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः
भक्त्योल्लसत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः
पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

अस्मिन्नपार-भव-वारि-निधौ मुनीश
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि
आकर्णिते तुं तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

जन्मान्तरेऽपि तव पाद-युगं न देव
मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम्
तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

नूनं न मोह-तिमितावृत-लोचनेन
पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्ध-गतयः कथमन्यथैते ॥३७॥

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि

नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः ॥३८॥

त्वं नाथ दुःखि-जन-वत्सल हे शरण्य
कारुण्य-पुण्य-वसते वशिनां वरेण्य
भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥

निःसख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य
मासाद्य सादित-रिपु प्रथितावदानम्
त्वत्पाद-पङ्कजमपि प्रणिधान-बन्धो
बन्धोऽस्मि चेभ्दुवन-पावन हाहतोऽस्मि ॥४०॥

देवेन्द्र-वन्द्य विदिताखिल-वस्तुसार
संसार-तारक विभो भुवनाधिनाथ
त्रायस्व देव करुणा-हृद मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बु-राशेः ॥४१॥

यद्यस्ति नाथ भवदङ्गघ्नि-सरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-सञ्चितायाः
तन्मे त्वदेक-शरणस्य भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र
सान्द्रोल्लसत्पुक - कञ्चुकिताङ्गभागाः
त्वद्विम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्ध-लक्ष्या
ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्या ॥४३॥

जन-नयन- 'कुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा

ते विगलित-मल-निचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

कल्याणमन्दिस्तोत्रहिंदी

(आ. कुमुदचंद्र कृत संस्कृत पाठ का हिंदी रूपांतर)

तर्ज : आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं
जिसने राग द्वेष कामादिक जीते
फूल तुम्हें भेजा है खत में

—कुसुमलता छंद—

पारस प्रभु कल्याण के मंदिर, निज-पर पाप विनाशक हैं
अति उदार हैं भयाकुलित मानव के लिए अभयप्रद हैं ॥
भवसमुद्र में पतितजनों के, लिए एक अवलम्बन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥१॥

सागर सम गंभीर गुणों से, अनुपम हैं जो तीर्थकर
सुरगुरु भी जिनकी महिमा को, कह न सके वे क्षेमंकर ॥
महाप्रतापी कमठासुर का, मान किया प्रभु खण्डन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२॥

दिवाअन्ध ज्यों कौशिक शिशु नहीं, सूर्य का वर्णन कर सकता
वैसे ही मुझ सम अज्ञानी, कैसे प्रभु गुण कह सकता ॥
सूर्य बिम्ब सम जगमग-जगमग, जिनवर का मुखमंडल है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥३॥

प्रलय अनंतर स्वच्छ सिन्धु में, भी ज्यों रत्न न गिन सकते
वैसे ही तव क्षीणमोह के, गुण अनंत नहीं गिन सकते ॥
उनके क्षायिक गुण कहने में, पुद्गल शब्द न सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥४॥

शिशु निज कर फैलाकर जैसे, बतलाता सागर का माप
वैसे ही हम शक्तिहीन नर, कर लेते हैं व्यर्थ प्रलाप ॥
सच तो प्रभु गुणरत्नखान अरु, अतिशायी सुन्दर तन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥५॥

बड़े-बड़े योगी भी जिनके, गुणवर्णन में नहिं सक्षम
तब अबोध बालक सम मैं, कैसे कर सकता भला कथन ॥
फिर भी पक्षीसम वाणी से, करूँ पुण्य का अर्जन मैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥६॥

जलाशयों की जलकणयुत वायू भी जैसे सुखकारी
ग्रीष्मवायु से थके पथिक के, लिए वही है श्रमहारी ॥
वैसे ही प्रभुनाम मंत्र भी, मात्र हमारा संबल है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥७॥

जो नर मनमंदिर में अपने, प्रभु का वास कराते हैं
उनके कर्मों के दृढ़तर, बंधन ढीले पड़ जाते हैं ॥
चंदन तरु लिपटे भुजंग के, लिए मयूर वचन सम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥८॥

ग्वाले के दिखते ही जैसे, चोर पशूधन तज जाते
वैसे ही तव मुद्रा लखकर, पाप शीघ्र ही भग जाते ॥
कैसा हो संकट समक्ष प्रभु, ही हरने में सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥९॥

भवपयोधितारक हे जिनवर! तुम्हें हृदय में धारण कर
तिर सकते हैं जैसे पवन, सहित तिरती है चर्ममसक ॥
इसीलिए भवसागर तिरने, में कारण प्रभु चिन्तन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥१०॥

हे अनङ्गविजयिन् हरिहर, आदिक भी जिससे हार गये
कामदेव के वे प्रहार भी, तुम सम्मुख आ हार गये ॥
दावानल शांती में जल सम, प्रभु इन्द्रियजित् सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥११॥

हे त्रैलोक्यतिलक जिसकी, तुलना न किसी से हो सकती
उन अनंत गुणभार को मन में, धर जनता कैसे तिरती ॥

किन्तु यही आश्चर्य हुआ, तिरते जिनवर भाक्तिकजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१२॥

प्रभो! क्रोध को प्रथम जीतकर, कर्मचोर कैसे जीता?
प्रश्न उठा मन में बस केवल, इसीलिए तुमसे पूछा ॥
उत्तर आया हिम तुषार ज्यों, जला सके वन-उपवन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१३॥

हे जिनवर! योगीजन तुमको, हृदयकोष के मध्य रखें
वैसे ही ज्यों कमल कर्णिका, कमलबीज को संग रखे ॥
शुद्धात्मा के अन्वेषण में, हृदय कमल ही माध्यम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१४॥

हे जिनेश! तव ध्यानमात्र से, परमात्म पद पाते जीव
अग्निनिमित्त पा करके जैसे, सोना बनता शुद्ध सदैव ॥
ऐसी शक्ति देने में निज, ज्ञानपुञ्ज ही सक्षम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१५॥

जिस काया के मध्य भव्यजन्, सदा आपका ध्यान करें
उस काया का ही विनाश, क्यों करते हो भगवान्! अरे ॥
अथवा उचित यही जो विग्रह-तन तजते बन भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१६॥

हे जिनेन्द्र! मंत्रादिक से, जैसे जल अमृत बन जाता
विषविकार हरने में सक्षम, वह परमौषधि कहलाता ॥
इसी तरह तुमको ध्याकर, तुम सम बनते योगीजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१७॥

जैसे कामलरोगी को, दिखती पीली वस्तु सब हैं
वैसे ही अज्ञानी को, प्रभुवर दिखते हरिहर सम हैं ॥
हे त्रिभुवनपति फिर भी वे, करते तेरी ही पूजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१८॥

हे प्रभु पुण्य गुणों के आकर! तव महिमा का क्या कहना
तरु भी शोकरहित तुम ढिग हों, फिर मानव का क्या कहना ॥
रवि प्रगटित होते ही जैसे, कमल आदि खिलते सब हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१९॥

हे मुनीश! सुरपुष्पवृष्टि जो तेरे ऊपर होती है
उनकी डंठल नीचे अरु, ऊपर पंखुरियाँ होती हैं ॥
यही सूचना है कि भव्य के, प्रभु ढिग खुलते बन्धन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२०॥

तव गंभीर हृदय उदधी से, समुत्पन्न जो दिव्यध्वनी
अमृततुल्य समझकर भविजन, पीकर बनते अतुलगुणी ॥
सबकी भव बाधा हरने में, जिनवर गुण ही साधन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२१॥

देवों द्वारा दुरते चामर, जब नीचे-ऊपर जाते
विनयभाव वे भव्यजनों को, मानो करना सिखलाते ॥
प्रातिहार्य यह प्रगटित कर, बन गये नाथ अब भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२२॥

स्वर्ण-रत्नमय सिंहासन पर, श्यामवर्ण प्रभु जब राजें
स्वर्ण मेरु पर कृष्ण मेघ लख, मानों मोर स्वयं नाचें ॥
इसी तरह जिनवर सम्मुख आल्हादित होते भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२३॥

तव भामण्डल प्रभ से जब, तरुवर अशोक भी कान्तिविहीन
हो जाता है तब बोलो क्यों?, भव्यराग नहि होगा क्षीण ॥
वीतरागता के इस अतिशय, से लाभान्वित भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२४॥

हे प्रभु! देवदुन्दुभी बाजे, जब त्रिलोक में बजते हैं
तब असंख्य देवों-मनुजों को, वे आमंत्रित करते हैं ॥
तज प्रमाद शिवपुर यात्रा, करना चाहें तब भविजन हैं

ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२५॥

तीन छत्र हे नाथ! चन्द्रमा, मानो स्वयं बना आकर
निज अधिकार पुनः लेने को, सेवा में वह है तत्पर ॥
छत्रों के मोती बन मानो, ग्रह भी करते वन्दन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२६॥

समवसरण में माणिक-सोने-चांदी के त्रय कोट बने
माना नाथ! तुम्हारी कांती-कीर्ती और प्रताप इन्हें ॥
जन्मजात वैरी के भी, हो जाते मैत्रीयुत मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२७॥

प्रभु! इन्द्रों के नत मुकुटों की, पुष्पमालिका कहती हैं
तव पद का सामीप्य प्राप्त कर, प्रगट हुई जो भक्ती है ॥
इसका अर्थ समझिये प्रभु से, जुड़े सभी अन्तर्मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२८॥

हे कृपालु! जिस तरह अधोमुखि पका घड़ा करता नदि पार
कर्मपाक से रहित प्रभो! त्यों ही तुम करते भवि भवपार ॥
इस उपकारमयी प्रकृति का, जिनमें अति आकर्षण है ॥
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२९॥

हे जगपालक! तुम त्रिलोकपति हो फिर भी निर्धन दिखते
अक्षरयुत हो लेखरहित, अज्ञानी हो ज्ञानी दिखते ॥
शब्द विरोधी अलंकार हैं, प्रभु तो गुण के उपवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३०॥

हे जितशत्रु! कमठ वैरी ने, तुम पर बहु उपसर्ग किया
किन्तु विफल हो कर्म रजों से, कमठ स्वयं ही जकड़ गया ॥
कर न सका कुछ अहित चूँकि, ध्यानस्थ हुए जब भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३१॥

हे बलशाली! तुम पर मूसल-धारा दैत्य ने बरसाई

भीम भयंकर बिजली की, गर्जना उसी ने करवाई ॥
खोटे कर्म बंधे उसके पर, जिनवर तो निश्चल तन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३२॥

केशविकृत मृतमुंडमाल धर, कंठ रूप विकराल किया
अग्नीज्वाला फैक-फैककर, विषधर सम मुख लाल किया ॥
क्रूर दैत्यकृत इन कष्टों से भी, नहि प्रभु विचलित मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३३॥

हे प्रभु! अन्यकार्य तज जो जन, तव पद आराधन करते
भक्ति भरित पुलकित मन से, त्रय संध्या में तुमको यजते ॥
धन्यधन्य वे ही इस जग में, धन्य तुम्हारा दर्शन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३४॥

इस भव सागर में प्रभु! तेरा, पुण्यनाम नहि सुन पाये
इसीलिए संसार जलधि में, बहुत दुःख हमने पाये ॥
जिनका नाम मंत्र जपने से, खुल जाते भवबंधन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३५॥

हे जिन! पूर्व भवों में शायद, चरणयुगल तव नहि अर्चें
तभी आज पर के निन्दायुत, वचनों से मन दुःखित हुए ॥
अब देकर आधार मुझे, कर दो मेरा मन पावन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३६॥

मोह-तिमिरयुत नैनों ने, प्रभु का अवलोकन नहीं किया
इसीलिए क्षायिक सम्यग्दर्शन आत्मा में नहीं हुआ ॥
जिनके दर्शन से भूतादिक, के कट जाते संकट हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३७॥

देखा सुना और पूजा भी, पर न प्रभो! तव ध्यान दिया
भक्तिभाव से हृदय कमल में, नहि उनको स्थान दिया ॥
इसीलिए दुःखपात्र बना, अब मिला भक्ति का साधन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३८॥

हे दयालु शरणागत रक्षक, तुम दुःखितजन-वत्सल हो
पुण्यप्रभाकर इन्द्रियजेता, मुझ पर भी अब दया करो ॥
जग के दुःखांकुर क्षय में, जिनकी भक्ती ही माध्यम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३९॥

हे त्रिभुवन पावन जिनवर! अशरण के भी तुम शरण कहे
कर न सकें यदि भक्ति तुम्हारी, समझो पुण्यहीन हम हैं
जिनका पुण्य नाम जपने से, होता नष्ट विषम ज्वर है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४०॥

हे देवेन्द्रवंद्य सब जग का, सार तुम्हीं ने समझ लिया
हे भुवनाधिप नाथ! तुम्हीं ने, जग को सच्चा मार्ग दिया ॥
जनमानस की रक्षा करते, दयासरोवर भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४१॥

नाथ! तुम्हारे चरणों की, स्तुति में यह अभिलाषा है
भव-भव में तुम मेरे स्वामी, रहो यही आकांक्षा है ॥
जिन पद के आराधन से, मिटते सब रोग विघ्न घन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४२॥

हे जिनेन्द्र तव रूप एकटक, देख-देख नहि मन भरता
रोम-रोम पुलकित हो जाता, जो विधिवत् सुमिरन करता ॥
दिव्य विभव को देने वाले, रहते सदा अकिंचन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४३॥

जो जन नेत्र 'कुमुद' शशि की, किरणों का दिव्य प्रकाश भरे
स्वर्गों के सुख भोग-भोग, कर्मों का शीघ्र विनाश करें ॥
मोक्षधाम का द्वार खोलकर, सिद्धिप्रिया का वरण करें
ऐसे पारस प्रभु को हम सब, शीश झुकाकर नमन करें ॥४४॥

(दोहा)

इस स्तोत्र सुपाठ का, भाषामय अनुवाद

किया 'चन्दनामति सुखद, ले ज्ञानामृत स्वाद ॥

तत्त्वार्थसूत्र

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

अर्थ - जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, अग्रणी हैं, पथप्रदर्शक हैं; कर्मरूपी पर्वतों को भेदने वाले हैं और सम्पूर्ण तत्त्वों के ज्ञाता हैं, ऐसे आप्त को मैं उनके गुणों- सर्वज्ञतादि की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीवषट्कायलेश्यः
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्धति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः

अर्थ - तीन काल, छह द्रव्य, नव पदार्थ, छह काय, छहेश्य, पांच अस्तिकाय, पांच व्रत, पांच समिति, गति, पांच ज्ञान और पांच चारित्र भेद रूप ये सब मोक्ष के मूल हैं, ऐसा तीनों लोकों के पूज्य अर्हत भगवान के द्वारा कहा है । जो बुद्धिमान इनकी प्रतिति करता है, श्रद्धान करता है और स्पर्श करता है / इनके नजदीक जाता है, वह निश्चय से शुद्धदृष्टि है ॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणाफलं पत्ते
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वाहणं साहणं च णिच्छरणं
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया

अर्थ - जगत में प्रसिद्ध चार प्रकार की आराधना के फल को प्राप्त सिद्धों और अर्हन्तों को नमस्कार करके क्रम से आराधना को कहूंगा । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्त्व के उद्योतन, उद्द्यवन, निर्वहन, साधन और निस्तरण को आराधना कहा है ॥

तत्त्वार्थसूत्र पहला अध्याय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

अर्थ - सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष के मार्ग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के उपाय हैं

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

अर्थ - वस्तु/तत्त्व के स्वरूपसहित तत्त्वों या पदार्थों/अर्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है

तत्रिसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥

अर्थ - वह सम्यग्दर्शन स्वभाव से अथवा पर के उपदेश आदि से उत्पन्न होता है

जीवाजीवास्रवबन्धसंवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥

अर्थ - जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्यासः ॥५॥

अर्थ - नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से उन सातों तत्त्वों और रत्नत्रय का निक्षेप या लोक व्यवहार होता है

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

अर्थ - तत्त्वों और रत्नत्रय का ज्ञान प्रमाणों और नयों से होता है

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरण-स्थितिविधानतः ॥७॥

अर्थ - निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन छः अनुयोगों के द्वारा भी तत्त्वों और रत्नत्रय का ज्ञान या लोक व्यवहार होता है

सत्संख्याक्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

अर्थ - और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, और अल्पबहुत्व इन आठों अनुयोगों के द्वारा भी तत्त्वों और रत्नत्रय का ज्ञान या लोक व्यवहार होता है

मति-श्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥९॥

अर्थ - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पांच सम्यग्ज्ञान हैं

तत्प्रमाणे ॥१०॥

अर्थ - वह पांच प्रकार का ज्ञान ही दो प्रमाण रूप हैं

अद्ये परोक्षम् ॥११॥

अर्थ - अदि के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

अर्थ - शेष तीन अर्थात् अवधिज्ञान, मनःपर्यय और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं

मतिः स्मृति संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

अर्थ - मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध मतिज्ञान के ही नामान्तर हैं

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥

अर्थ - वह मतिज्ञान पांच इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है

अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥

अर्थ - मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद हैं

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेताराणाम् ॥१६॥

अर्थ - अपने प्रतिपक्षी एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव भेदों सहित बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव इन बारह प्रकार के पदार्थों के अवग्रहादिक ज्ञान होते हैं

अर्थस्य ॥१७॥

अर्थ - ये बहु आदि विशेषण पदार्थ के होते हैं ।

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥

अर्थ - अस्पष्ट शब्द वगैरह पदार्थों का केवल अवग्रह ज्ञान होता है

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥

अर्थ - व्यञ्जनावग्रह नेत्र और मन से नहीं होता है

श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-भेदम् ॥२०॥

अर्थ - श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥

अर्थ - भवप्रत्यय नामक अवधिज्ञान देवों और नारकियों के होता है

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

अर्थ - क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान छः भेदवाला है वह मनुष्य तथा तिर्यञ्चों के होता है

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

अर्थ - मनः पर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है

विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥

अर्थ - विशुद्धि और अप्रतिपात से ऋजुमति और विपुलमति में विशेषता है

विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्यययोः ॥२५॥

अर्थ - अवधि और मनः पर्ययज्ञान में विशुद्धि क्षेत्र स्वामी और विषय की अपेक्षा विशेषता होती है

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व पर्यायेषु ॥२६॥

अर्थ - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है

रूपिष्ववधेः ॥२७॥

अर्थ - अवधिज्ञान का विषय/सम्बन्ध रूपी पदार्थों में है

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥

अर्थ - मनःपर्यय ज्ञान का विषय/ सम्बन्ध सर्वावधिज्ञान के विषयभूत रूपी द्रव्य के अनन्तवें भाग में है

सर्वद्रव्यपर्यायिषु केवलस्य ॥२९॥

अर्थ - केवलज्ञान का विषय/ सम्बन्ध सब द्रव्यों में और उनकी सब पर्यायों में है

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

अर्थ - एक जीव में एक समय में एक साथ एक को आदि लेकर चार ज्ञान तक विभाजित करना चाहिये

मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

अर्थ - मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्या भी होते हैं

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्॥३२॥

अर्थ - अपनी इच्छानुसार जैसा का तैसा जानने के कारण सत् और असत् पदार्थों में अन्तर या भेद न होने से पागल मनुष्य के ज्ञान की तरह मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्या होता है

नैगमसंग्रहव्यवहारजुसूत्र-शब्द-समभिरुद्वैवंभूता नयाः ॥३३॥

अर्थ - नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं

तत्त्वार्थसूत्र दूसरा अध्याय

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥

अर्थ - जीव के औपशमिक, क्षायिक, मिश्र और औदयिक तथा पारिणामिक ये पांच स्वतत्त्व या निजी भाव हैं

द्वि-नवाष्टादशैकविंशतिरिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थ - ऊपर कहे पांचो भाव क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद वाले हैं

सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

अर्थ - औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भाव के भेद हैं

ज्ञानदर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥४॥

अर्थ - केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ क्षायिक भाव के भेद हैं

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपंच-भेदाः सम्यक्त्वचारित्र-संयमासंयमाश्च ॥५॥

अर्थ - चार तीन तीन और पांच भेदयुक्त ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धियां और सम्यक्त्व चारित्र और संयमासंयम ये अठारह क्षायोपशमिक भाव हैं

गतिकषायलिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्यैकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥

अर्थ - चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्धत्व और छः लेशययें ये इक्कीस औदायिक भाव हैं

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥

अर्थ - जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिमाणिक भाव हैं

उपयोगो लक्षणम् ॥८॥

अर्थ - जीव का लक्षण उपयोग है

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥

अर्थ - वह उपयोग ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग रूप हैं

संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

अर्थ - वे जीव संसारी और मुक्त इस प्रकार दो भेद वाले हैं

समनस्क मनस्काः ॥११॥

अर्थ - संसारी जीव सैनी या समनस्क तथा असैनी या अमनस्क के भेद से दो प्रकार के होते हैं

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

अर्थ - तथा त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं

पृथिव्यप्तेजो वायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

अर्थ - पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक ये पांच प्रकार के स्थावर हैं

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥

अर्थ - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं

पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥

अर्थ - इन्द्रियां पांच होती हैं

द्विविधानि ॥१६॥

अर्थ - वे प्रत्येक दो-दो प्रकार की हैं

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

अर्थ - निर्वृत्ति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं

लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम् ॥१८॥

अर्थ - लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि ॥१९॥

अर्थ - स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां हैं

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थः ॥२०॥

अर्थ - स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये पांच इन्द्रियों के विषय हैं

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥

अर्थ - मन का विषय श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ हैं

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

अर्थ - वनस्पतिकाय है अन्त में जिनके ऐसे पृथ्विकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय होती हैं

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

अर्थ - लट् अदि, चींटी अदि, भौरा अदि तथा मनुष्य अदि के क्रम में एक-एक बढ़ती हुई इन्द्रियां होती हैं

सज्जिनः समनस्काः ॥२४॥

अर्थ - मन सहित जीव संज्ञी कहलाते हैं

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥

अर्थ - विग्रहगति में कार्माण काययोग होता है

अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥

अर्थ - जीव और पुद्गलों का गमन श्रेणी के अनुसार ही होता है

अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

अर्थ - मुक्त जीव की गति मोड रहित सीधी होती है

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

अर्थ - संसारी जीव की गति चार समय से पहले पहले मोड सहित और मोड रहित दोनों प्रकार की होती है

एकसमयाविग्रहा ॥२९॥

अर्थ - मोड रहित गति एक समय मात्र ही होती है

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥

अर्थ - विग्रहति में जीव एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है

सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

अर्थ - जन्म सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद के भेद से तीन प्रकार का होता है

सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

अर्थ - सचित्त, शीत, संवृत इनसे उल्टी तीन अचित्त, ऊष्ण, विवृत और एक एक कर क्रम से मिली हुई तीन सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृत ये नौ उन सम्मूर्च्छन आदि जन्मों की योनियां हैं

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

अर्थ - जरायुज, अण्डज और पोत इन तीनों प्रकार के प्राणियों के गर्भजन्म ही होता है

देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥

अर्थ - देवों और नारकियों के उपपाद जन्म ही होता है

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥

अर्थ - गर्भ और उपपाद जन्म वालों से भिन्न जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कर्मणानि शरीराणि ॥३६॥

अर्थ - औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कर्मण ये पांच शरीर हैं

परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

अर्थ - औदारिक से आगे आगे के शरीर सूक्ष्म हैं

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥

अर्थ - प्रदेशों या परमाणुओं की अपेक्षा तैजस शरीर से पहले पहले के शरीर असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे हैं

अनन्तगुणे परे ॥३९॥

अर्थ - शेष दो शरीर अनन्तगुणे परमाणु या प्रदेश वाले हैं

अप्रतीघाते ॥४०॥

अर्थ - तैजस और कर्मण ये दोनों शरीर बाधारहित हैं

अनादिसंबन्धे च ॥४१॥

अर्थ - तैजस और कर्मण शरीर आत्मा के साथ अनादिकाल से सम्बन्ध रखने वाले हैं

सर्वस्य ॥४२॥

अर्थ - ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवों के होते हैं

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

अर्थ - उन तैजस और कर्मण शरीर को आदि लेकर एक साथ एक जीव के चार शरीर तक विभक्त करना चाहिये

निरूपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

अर्थ - अन्त का कर्मण शरीर उपभोगरहित होता है

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

अर्थ - गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न हुआ शरीर पहला औदारिक शरीर कहलाता है

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

अर्थ - उपपाद जन्म से होने वाला देव नारकियों का शरीर वैक्रियिक शरीर कहलाता है

लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

अर्थ - वैक्रियिक शरीर लब्धि निमित्तक भी होता है

तैजसमपि ॥४८॥

अर्थ - तैजस शरीर भी लब्धिप्रत्यय होता है

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥

अर्थ - आहारकशरीर शुभ कार्य करने वाला विशुद्ध व बाधा रहित तथा प्रमत्तसंयत नामक छोटे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है

नारक सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

अर्थ - नारकी और सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव नपुंसक ही होते हैं

न देवाः ॥५१॥

अर्थ - देव नपुंसक वेदी नहीं होते

शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥

अर्थ - शेष बचे हुये मनुष्य और गर्भज तिर्यञ्च तीनों वेद वाले होते हैं

औपपादिक चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

अर्थ - उपपाद जन्म वाले तद्रूप मोक्षगामियों में श्रेष्ठ तीर्थकर अदि तथा असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमि के जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं अर्थात् इन जीवों के असमय में मृत्यु नहीं होती

तत्त्वार्थसूत्र तीसरा अध्याय

रत्नशर्करा-बालुकापंकधूम-तमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः
सप्ताऽधोऽधः ॥१॥

अर्थ - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात भूमियाँ घनाम्बु, वात और आकाश के सहारे स्थित हैं तथा क्रमसे नीचे-नीचे हैं ॥१॥

तासु त्रिशत्पंचविंशतिपंचदश-दशत्रिपंचोनैक नरकशतसहस्राणि पञ्चैव यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थ - उन पृथिवियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और पांच नरक बिल हैं

नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥

अर्थ - नारकी जीव हमेशा ही अत्यन्त अशुभ लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रिया के धारक हैं

परस्परोदीरित-दुःखाः ॥४॥

अर्थ - नारकी जीव आपस में एक दूसरे को दुःख देते हैं और वे कुत्तों की तरह परस्पर में लडते हैं

संक्लिष्टसुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥

अर्थ - और चौथी पृथ्वी से पहले अर्थात् तीसरी पृथ्वी पर्यन्त वे नारकी संक्लेश परिणाम वाले अम्बावरीष जाति के असुरकुमार देवों के द्वारा उत्पन्न किया गया है दुःख जिनको ऐसे होते हैं

तेष्वेक-त्रि-सप्तदश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमासत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥

अर्थ - नरकों में नारकीय जीवों की उत्कृष्ट आयु क्रम से एक, तीन, सात, दश, सत्रह, बाईस और तैंतीस सागर है

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥

अर्थ - इस मध्यलोक में अच्छे अच्छे नाम वाले जम्बू अदि द्वीप और लवण अदि समुद्र हैं

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥

अर्थ - प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले पहले-पहले के द्वीप-समुद्र के घेरे तथा चूड़ी के समान आकार वाले हैं

तन्मध्ये मेरूनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अर्थ - उन सब समुद्रों के बीच में सुदर्शन मेरू है नाभि जिसकी ऐसा तथा थाली के समान गोल एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है

भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

अर्थ - जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥

अर्थ - उन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरि ये छः वर्षधर पर्वत हैं

हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः ॥१२॥

अर्थ - ये पर्वत क्रम से सुवर्ण, चांदी, तपाए हुये सुवर्ण, वैडूर्य मणि, चांदी और सुवर्ण के समान वर्ण वाले हैं

मणिविचित्रपार्श्व उपरिमूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥

अर्थ - ये पर्वत दोनों पार्श्वों में तरह-तरह के मणियों से खचित ऊपर नीचे और मध्य में एक समान विस्तार वाले हैं

पद्ममहापद्म-तिगिच्छ-केशरि-महापुण्डरीकपुण्डरीकाहदास्तेषामुपरि ॥१४॥

अर्थ - उन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिच्छ, केशरि, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये तालाब हैं

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो हृदः ॥१५॥

अर्थ - पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और लम्बाई से आधा अर्थात् पांच सौ योजन चौड़ा है

दशयोजनावगाहः ॥१६॥

अर्थ - पहला तालाब दस योजन गहरा है

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

अर्थ - पद्म सरोवर के बीच एक योजन लम्बा चौड़ा एक कमल है

तद्विगुण-द्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च ॥१८॥

अर्थ - आगे तालाब और कमल क्रम से प्रथम तालाब से तथा उनके कमलों से दूने विस्तार वाले हैं

तन्निवासिन्यो देव्यः श्री - ह्री - घृति - कीर्ति - बुद्धि - लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः
ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥

अर्थ - एक पल्य की आयु वाली तथा सामानिक और पारिषद जाति के देवों से सहित श्री, ह्री, घृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियां क्रम से उन सरोवरों के कमलों पर निवास करती हैं

गंगा-सिन्धुरोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरि-कान्ता-सीता-सीतोदा-नारीनरकान्ता
-सुवर्णरूप्यकूल-रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥

अर्थ - गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्त और रक्तोदा ये चौदह नदियां जम्बूद्वीप के पूर्वोक्त सात क्षेत्रों के बीच बहती हैं

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥

अर्थ - गंगा-सिन्धु इत्यादि दो-दो नदियों में से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती हैं

शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

अर्थ - प्रत्येक जोड़े के दूसरी-दूसरी नदियां पश्चिम की ओर जाती हैं

चतुर्दशनदीसहस्र-परिवृता गंगासिन्धवादयो नद्यः ॥२३॥

अर्थ - गंगा और सिन्धु आदि नदियों के युगल चौदह हजार सहायक नदियों से घिरे हुये हैं

भरतः षड्विंशति-पञ्चयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥

अर्थ - भरत क्षेत्र पांच सौ छब्बीस योजन विस्तार वाला और एक योजन के उन्नीस भाग में छः भाग अधिक है

तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥

अर्थ - विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र भरत क्षेत्र से दूने-दूने विस्तार वाले हैं

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥

अर्थ - उत्तर के ऐरावत से लेकर नील तक जितने क्षेत्र और पर्वत आदि हैं उनका विस्तार वगैरह दक्षिण के क्षेत्र और पर्वत आदि के समान हैं

भरतैरावतयोर्वृद्धिहासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥

अर्थ - छः कमलों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा भरत और ऐरावत क्षेत्र में जीवों की आयु ऊंचाई भोगोपभोग, सम्पदा और सुख आदि की घटती तथा बढ़ती होती रहती है

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

अर्थ - उस भरत और ऐरावत से अन्य क्षेत्र घटती बढ़ती रहित होते हैं

एकद्वित्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ॥२९॥

अर्थ - हैमवत, हरि और देवकुरु के निवासी मनुष्य व तिर्यञ्चों की आयु क्रम से एक पल्य दो पल्य और तीन पल्य की होती है

तथोत्तराः ॥३०॥

अर्थ - उत्तर के क्षेत्रों के मनुष्यों और तिर्यञ्चों की आयु हैमवत आदि क्षेत्रों के मनुष्यों व तिर्यञ्चों के समान होती है

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥

अर्थ - विदेह क्षेत्र में मनुष्यों और तिर्यञ्चों की आयु संख्यात वर्ष की होती है

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशत भागः ॥३२॥

अर्थ - भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बेवां भाग है

द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥

अर्थ - धातकी खण्ड नामक दूसरे द्वीप में क्षेत्र, कुलाचल, मेरु, नदी आदि समस्त पदार्थ जम्बूद्वीप से दूने दूने हैं

पुष्करार्द्धे च ॥३४॥

अर्थ - पुष्कर द्वीप के आधे भाग में भी क्षेत्र और पर्वत आदि की सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी दूनी है

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

अर्थ - मानुषोत्तर पर्वत के पहले अर्थात् अढाई द्वीप में ही मनुष्य होते हैं

आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥

अर्थ - मनुष्य के दो भेद हैं - आर्य और म्लेच्छ

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुन्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

अर्थ - पांचों मेरु सम्बन्धी पांच भरत, पांच ऐरावत और देवकुरु, उत्तरकुरु को छोड़कर पांच विदेह । इस तरह अढाई द्वीप में कुल पन्द्रह कर्मभूमियां हैं

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

अर्थ - मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की है

तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

अर्थ - तिर्यग्यों की भी उत्कृष्ट और जघन्य आयु क्रम से तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त की है

तत्त्वार्थ-सूत्र चौथा-अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

अर्थ - देवों के चार भेद हैं

आदितस्त्रिषु पीतान्तर्लेश्याः ॥२॥

अर्थ - पहले के तीन निकायों में कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्याएं होती हैं

दशाष्टपञ्चद्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

अर्थ - कल्पोपपन्न पर्यन्त उक्त चार प्रकार के देवों के क्रम से दस, आठ, पांच और बारह भेद हैं

इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य

-किल्बिषिकाश्चैकशः ॥४॥

अर्थ - उक्त चार प्रकार के देवों में प्रत्येक के इन्द्र, सामानिक, त्रायस्तिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य और किल्बिषिक ये दस-दस भेद होते हैं

त्रायस्तिंशलोकपालवर्ज्यव्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

अर्थ - व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्तिंश और लोकपाल ये दो भेद नहीं होते हैं

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥

अर्थ - भवनवासी और व्यन्तरों के प्रत्येक भेद में दो-दो इन्द्र होते हैं

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

अर्थ - ऐशान स्वर्ग पर्यन्त के देव अपनी-अपनी देवियों के साथ मनुष्यों के समान शरीर से कामसेवन करते हैं

शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥८॥

अर्थ - शेष स्वर्गों के देव देवियों के स्पर्श से, रूप देखने से, शब्द सुनने से और मन में विचारने से कामसेवन करते हैं

परेऽप्रवीचारा ॥९॥

अर्थ - सोलहवें स्वर्ग से ऊपर त्रैवेयिक, अनुदिश और अनुत्तरों के देवों में कामसेवन नहीं होता

भवन-वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीप-दिक्कुमाराः ॥१०॥

अर्थ - भवनवासी देवों के दस भेद हैं - असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार

व्यन्तराः किन्नर-किपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूतपिशाचाः ॥११॥

अर्थ - व्यन्तर देवों के आठ भेद होते हैं - किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥

अर्थ - ज्योतिषी देव पांच प्रकार के हैं - सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और प्रकीर्णक तारे

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

अर्थ - ज्योतिषी देव मनुष्य लोक में मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए हमेशा घूमते रहते हैं

तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥

अर्थ - घड़ी घण्टा दिन रात आदि व्यवहारकाल का विभाग उन्हीं गतिशील ज्योतिषी देवों द्वारा किया जाता है

बहिरवस्थिताः ॥१५॥

अर्थ - मनुष्य लोक से बाहर के ज्योतिषी देव स्थिर हैं

वैमानिकाः ॥१६॥

अर्थ - अब यहां वैमानिक देवों का वर्णन शुरू होता है

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

अर्थ - वैमानिक देवों के दो भेद हैं - कल्पोपपन्न और कल्पातीत

उपर्युपरि ॥१८॥

अर्थ - सोलह स्वर्गों के आठ युगल नव-ग्रैवेयिक, नव-अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रम से ऊपर ऊपर हैं

सौधर्मैशान-सानकुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्र शतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्तजयन्ता- पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥

अर्थ - सौधर्म-ऐशान, सानकुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार इन छः युगलों के बारह स्वर्गों में अनत-प्राणत इन दो स्वर्गों में अरण-अच्युत इन दो स्वर्गों में नव-ग्रैवेयिकों में नव-अनुदिशों में और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तर-विमानों में ये वैमानिक देव रहते हैं

स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि विषय-तोऽधिका ॥२०॥

अर्थ - आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रियों का विषय और अवधिज्ञान का विषय ये सब ऊपर ऊपर के विमानों में अधिक-अधिक है

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥

अर्थ - गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के वैमानिक देव हीन-हीन हैं

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥

अर्थ - दो युगलों में, तीन युगलों में तथा शेष के सम्स्त विमानों में क्रम से पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती है

प्राग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥

अर्थ - ग्रैवेयिकों से पहले पहले सोलह स्वर्ग कल्प कहलाते हैं

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥

अर्थ - ब्रह्मलोक है आलय जिनका ऐसे देव लौकान्तिक देव कहे जाते हैं

सारस्वतादित्यवहन्यरुण-गर्दतोयतुषिता-व्याबाधारिष्ठाश्च ॥२५॥

अर्थ - सारस्वत, अदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अनिष्ट ये लौकान्तिक देव हैं ॥२५॥

विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥

अर्थ - विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित व अनुदिश विमानों में दो चरमवाले देव होते हैं

औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

अर्थ - उपपाद जन्म वाले देव नारकी तथा मनुष्यों से भिन्न जीव तिर्यञ्च हैं

स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीपशेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीनमिताः ॥२८॥

अर्थ - भवनवासियों में असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष के छः कुमारों की उत्कृष्ट आयु क्रम से एक सागर, तीन पल्य, ढाई पल्य, दो पल्य और डेढ़ पल्य है

सौधर्मेशानयो सागरोपमेऽधिके ॥२९॥

अर्थ - सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥

अर्थ - सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक है

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्च दशभिरधिकानि तु ॥३१॥

अर्थ - ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल से लेकर प्रत्येक युगल में आरण-अच्युत तक क्रम से साधिक तीन से अधिक सात सागरोपम, साधिक सात से अधिक सात सागरोपम, साधिक नौ से अधिक सात सागरोपम, साधिक ग्यारह से अधिक सात सागरोपम, तेरह से अधिक सात सागरोपम और पन्द्रह से अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥

अर्थ - आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नव-ग्रैवेयिकों में, नव-अनुदिशों में तथा विजय आदि चार विमानों में और सर्वार्थसिद्धि विमान में एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है

अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥

अर्थ - सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है

परतः परतः पूर्व पूर्वानन्तरा ॥३४॥

अर्थ - पहले-पहले युगल की उत्कृष्ट आयु आगे-आगे के युगलों में जघन्य आयु है

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

अर्थ - दूसरे आदि नरकों में नारकियों की जघन्य आयु भी देवों के समान है

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥

अर्थ - पहले नरक में नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है

भवनेषु च ॥३७॥

अर्थ - भवनवासी देवों में भी जघन्यायु दस हजार वर्ष की है

व्यन्तराणां च ॥३८॥

अर्थ - व्यन्तर देवों में भी जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है

परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥

अर्थ - व्यन्तर देवों में उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्य है

ज्योतिष्काणां च ॥४०॥

अर्थ - ज्योतिष्क देवों में उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्य है

तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥

अर्थ - ज्योतिष्क देवों में जघन्य आयु एक पल्य के आठवें भाग है

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

अर्थ - समस्त लौकान्तिक देवों में जघन्य और उत्कृष्ट आयु आठ सागर प्रमाण है

तत्त्वार्थसूत्र पांचमं अध्याय

अजीवकाया-धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ॥१॥

अर्थ - धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल अजीव (चेतना रहित) और कायावान (बहु प्रदेशी) है

द्रव्याणि ॥२॥

अर्थ - धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल द्रव्य है

जीवाश्च ॥३॥

अर्थ - जीव भी द्रव्य है

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थ - पाँचों द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव अविनाशी है, इनकी संख्या निश्चित है, हीनाधिक नहीं होती है। ये सामान्य से पाँचों अरूपी (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित) हैं

रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

अर्थ - पुद्गल द्रव्य रूपी है

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

अर्थ - अनंत आकाश एक ही द्रव्य है । धर्म, अधर्म और आकाश एक एक ही है इससे अधिक नहीं

निष्क्रियाणि च ॥७॥

अर्थ - और निष्क्रिय है, आवागमन नहीं करते

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

अर्थ - धर्म, अधर्म और एक जीव (प्रत्येक आत्मा) द्रव्य असंख्यत प्रदेशी हैं

आकाशस्यानन्ता ॥९॥

अर्थ - आकाश द्रव्य के अनंत प्रदेश हैं

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

अर्थ - पुद्गलों के प्रदेश संख्यत, असंख्यत और अनंत होते हैं

नाणोः ॥११॥

अर्थ - अणु अर्थात् परमाणु के द्रव्य व्यक्ति रूप में बहु प्रदेश नहीं हो सकते किंतु वह एक प्रदेशी होता है

लोकाकाशोऽवगाह ॥१२॥

अर्थ - इन समस्त धर्मादि द्रव्यों की स्थिति लोकाकाश में है

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

अर्थ - जैसे तिलों में सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाश के समस्त प्रदेशों में धर्म और अधर्म द्रव्य के प्रदेश व्याप्त हैं

एकप्रदेशादिषुभाज्य पुद्गलानाम् ॥१४॥

अर्थ - उन पुद्गलों की स्थिति लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से जानना चाहिए । अर्थात् लोकाकाश के एक प्रदेश में अवगाहन सामर्थ्य से सूक्ष्म परिणाम से बहुत पुद्गल अणु स्क्ंध ठहर सकते हैं

असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥१५॥

अर्थ - लोक के असंख्यतवें प्रदेश को आदि लेकर संख्यत-असंख्यत प्रदेश (समस्त लोकाकाश प्रमाण) तक जीव का अवगाह है

प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥

अर्थ - असंख्यत प्रदेशी लोकाकाश में अनन्तानन्त जीव पुद्गलों का संकोच विस्तार गुण होने से अवगाहन होता है

गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार ॥१७॥

अर्थ - जीव और पुद्गलों के चलने में तो धर्म द्रव्य सहकारी है और स्थिति करने में अधर्म द्रव्य उपकारी (सहायक) है, प्रेरक नहीं है

आकाशस्यावगाह ॥१८॥

अर्थ - अवकाश अर्थात् जगह देना यह आकाश द्रव्य का उपकार है

शरीरवाङ्मनप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥

अर्थ - शरीर, वचन, मन, प्राण-अपान यह पुद्गलों का उपकार है

सुखदुःख -जीवित -मरणोपग्रहाश्च ॥२०॥

अर्थ - तथा सुख, दुःख जीवन, मरण ये उपकार भी पुद्गलों के हैं

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

अर्थ - हिताहित स्वरूप परस्पर एक दूसरे का सहायक होना जीव का जीव के प्रति उपकार है

वर्तना -परिणाम -क्रिया -परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

अर्थ - वर्तना, परिमाण, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये पाँच काल द्रव्य के उपकार हैं

स्पर्श -रस -गंध -वर्णवन्त पुद्गलाः ॥२३॥

अर्थ - स्पर्श, रस, गंध और वर्ण वाले पुद्गल द्रव्य है

शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥

अर्थ - तथा ये पुद्गल शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, अतप (धूप), उद्योत (शीतल प्रकाश) सहित हैं

अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥

अर्थ - पुद्गलों के अणु और स्कंध ये दो भेद भी होते हैं

भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

अर्थ - भेद (भाग करना), संघात (एकत्रित करना) और भेद-संघात तीन कारणों से स्कंध पैदा होते हैं

भेदादणु ॥२७॥

अर्थ - अणु भेद से ही होता है संघात से नहीं

भेद-संघाताभ्यां चाक्षुष ॥२८॥

अर्थ - जो नेत्रेन्द्रिय गोचर स्कंध होता है वह भेद और संघात दोनों से ही होता है

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥

अर्थ - द्रव्य का लक्षण सत्ता है

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् ॥३०॥

अर्थ - जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता युक्त है वही सत् है

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥

अर्थ - जो अपने स्वरूप से नाश को प्राप्त नहीं होता है वही नित्य है

अर्पितानर्पितसिद्धे ॥३२॥

अर्थ - वस्तु में अनेक धर्म होते हैं । जिसको मुख्य करें सो अर्पित और जिसको गौण करे सो अनर्पित है । एक समय में एक ही गुण का कथन किया जा सकता है । अतः किसी वस्तु के किसी धर्म की प्रमुखता और किसी की गौणता से ही वस्तु की सिद्धि होती है

स्निग्ध-रूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥

अर्थ - अणु से अणु में परस्पर बंध उनमें विद्यमान स्निग्ध और रुक्ष गुणों के कारण होता है

न जघन्य-गुणानाम् ॥३४॥

अर्थ - जिन परमाणुओं में स्निग्धता और रुक्षता का एक अविभागी प्रतिच्छेद रह जाता है उनमें परस्पर बंध नहीं होता है

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥

अर्थ - [गुणसाम्ये सम । न गुणहोसेदृशानाम् । सम । न ज । ति । त । वालेअणुओंकाबंधनहीहोता]

द्वय्यिकादिगुणानां तु ॥३६॥

अर्थ - [द्वय] दो [अधिका] अधिक [गुणानां] ग ^३ णवालेपुमासुओंका ध होता है।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥

अर्थ - [बन्धे] बंधनोन्मुखिको अधिकांश गुणोंवाला प्रणामिको परिणामनमानेवाला होता है

गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥

अर्थ - गुण [पर्ययवद्] पय [यिसहितद्रव्यम्] द्रव्य है

कालश्च ॥३९॥

अर्थ - काल भी द्रव्य है

सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

अर्थ - वह काल द्रव्य अनंत समय वाला है । यद्यपि वर्तमान काल एक समयात्मक है, परंतु भूत भविष्यत् वर्तमान की अपेक्षा अनन्त समयवाला है

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

अर्थ - जो द्रव्य के नित्य अश्रित रहते हो और स्वयं अन्य गुणों से रहित हों वे गुण हैं

तद्भावः परिणामः ॥४२॥

अर्थ - वस्तुओं का जो स्वभाव वह परिणाम है

तत्त्वार्थसूत्र छठा-अध्याय

कायवाङ्मन कर्मयोगः ॥१॥

अर्थ - शरीर, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं

स आश्रयः ॥२॥

अर्थ - वह योग ही कर्मों के आगमन का द्वार रूप आश्रय है

शुभः पुण्यस्याशुभ पापस्य ॥३॥

अर्थ - शुभयोग से पुण्य का आश्रय होता है और अशुभ योग से पाप का आश्रय है

सकषायाकषाययोः साम्प्रायिकेर्यापथयोः ॥४॥

अर्थ - कषाय सहित जीवों के साम्प्रायिक और कषाय रहित जीवों के ईर्यापथ आश्रय होता है

इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पंच-चतुःपंच-पंचविंशति-संख्यः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥

अर्थ - इंद्रिय, चार कषाय, पाँच अव्रत और पच्चीस क्रिया यह सब साम्प्रायिक आश्रय के भेद हैं

तीव्र-मंद-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेष ॥६॥

अर्थ - तीव्रभाव, मंदभाव, ज्ञातभाव (जान-बूझकर), अज्ञातभाव (अनजाने में), अधिकरण (आधार) और वीर्य की विशेषता से उस आश्रय में विशेषता अर्थात् न्यूनाधिकता होती है

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥

अर्थ - आश्रय का आधार जीव और अजीव दोनों हैं

आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भयोगकृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिचतुश्चैकश ॥८॥

अर्थ - योजना बना लेना **संरम्भ** है, २) **समारम्भ** पापों की साधनभूत सामग्रियाँ एकत्रित करना समारम्भ है, ३) **आरम्भ** - पाप कार्य शुरू करना। प्रत्येक के मन, वचन और काययोग की अपेक्षा तीन-तीन भेद होते हैं, तथा प्रत्येक के **कृत** (स्वयं करना), **कारित** (दूसरों से कराना) और **अनुमति** (किये कार्य की प्रशंसा करना) इसप्रकार प्रत्येक के तीन तीन भेद फिर होते हैं अतः (३x३x३ = २७) भेद हुए। हर एक के क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से ये चार चार भेद होते हैं। इसलिए कुल मिलाकर (२७x४=१०८) भेद हुए

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्विचतुर्द्विभिदाः परम् ॥९॥

अर्थ - दूसरे अजीवाधिकरण के **निर्वर्तना** - रचना करने के दो (मूलगुण निर्वर्तना और उत्तरगुण निर्वर्तना), **निक्षेप** - रखने उठाने के चार (सहसा, अनाभोग, दुष्प्रमार्जित, अप्रत्यवेक्षित), **संयोग** - मिलाने के दो (उपकरण और भक्तपान) और **निसर्गा** - प्रवृत्ति करने के तीन (मन, वचन और काय) भेद हैं। इस तरह अजीव अधिकरण के ११ भेद हैं

तत्प्रदोष-निहव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः ॥१०॥

अर्थ - ज्ञान तथा दर्शन के विषय में **प्रदोष** (मन को किसी की सच्चे ज्ञान की बात नहीं सुहाना / किसी के सत्य अच्छे प्रवचन सुनकर द्वेषवश प्रसन्न नहीं होना), **निहव** (ज्ञान होने पर भी अन्य को न देना / अपने ज्ञान के स्रोत गुरु-शास्त्र के नाम को छुपाना), **मात्सर्य** (किसी को ईर्ष्या भाव से ज्ञान नहीं देना, जैसे किसी अन्य को ज्ञान दे दिया तो वह मेरे से अधिक ज्ञानवान हो जायेगा), **अन्तराय** (किसी के ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना, जैसे उसकी पुस्तक छुपाना, जलाना या पाठशालाओं को, स्वध्याय की परम्परा को, धर्म के शिवरों को बंद करवाना), **असादन** (सच्चे ज्ञान का अनादर करना) और **उपघात** (सच्चे ज्ञान को अज्ञान बताकर, ज्ञान में दोष लगाना) ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आश्रव होने के कारण हैं

दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥

अर्थ - दुःख, शोक, पश्चात्ताप, आक्रन्दन (अश्रुपात पूर्वक रुदन), वध और परिदेवन (छातीफाड रुदन) ये खुद करना दूसरों को कराना अथवा दोनों को एक साथ उत्पन्न करना ये असातावेदनीय कर्म के आश्रव के कारण हैं

भूत-व्रत्यनुकम्पा-दान-सरागसंयमादि-योगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥

अर्थ - भूत-अनुकम्पा, व्रती-अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के आश्रव हैं

केवलि-श्रुत-संघ-धर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

अर्थ - केवलज्ञानी का, शास्त्र का, मुनियों के संघ का, अहिसामय धर्म का और देव का अवर्णवाद (निंदा) करना दर्शन मोहनीय कर्म के आश्रव का कारण है

कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

अर्थ - कषायों के उदय से तीव्र परिणाम होना चारित्र मोहनीय कर्म के आश्रव का कारण है

बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुष ॥१५॥

अर्थ - बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखना नरकायु के आश्रव का कारण है

माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥

अर्थ - माया (छलकपट) तिर्यचायु के आश्रव का कारण है

अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥

अर्थ - थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह मनुष्य आयु के आश्रव का कारण है

स्वभाव-मार्दवं च ॥१८॥

अर्थ - स्वाभाविक कोमलता भी मनुष्यायु के आश्रव का कारण है

निःशील-व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥

अर्थ - दिग्व्रत, देशव्रत आदि सात शील तथा अहिंसा आदि पाँचो व्रतों को धारण नहीं करना चारों गतियों के आश्रव का कारण है

सरागसंयम-संयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि देवस्य ॥२०॥

अर्थ - सरागसंयम, संयमासंयम (देशविरति), अकाम निर्जरा और बालतप ये देवायु के आश्रव के कारण हैं

सम्यक्त्वं च ॥२१॥

अर्थ - और सम्यग्दर्शन भी देवायु का कारण है

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥

अर्थ - मन, वचन, काय के योगों की कुटिलता और अन्यथा प्रवृत्ति अशुभ नाम कर्म के अश्रव का कारण है

तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥

अर्थ - इससे विपरीत अर्थात् योगों की सरलता और विसंवाद का अभाव शुभनाम कर्म के अश्रव का कारण है

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता-शील-व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यग-तपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन-भक्तिरावश्यकपरिहाणिमार्ग-प्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य॥२४॥

अर्थ - (१) दोष रहित निर्मल सम्यक्त्व (२) विनय सम्पन्नता (३) शील और व्रतों में अतिचार का अभाव (४) निरन्तर तत्वाभ्यास (५) संवेग (६) यथाशक्ति दान (७) तप (८) साधुसमाधि (९) वैयावृत्य (१०) अरिहंत भक्ति (११) आचार्य भक्ति (१२) बहुश्रुत भक्ति (१३) प्रवचन भक्ति (१४) सामायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओं को निश्चित रूप से पालन करना (१५) जैनधर्म की प्रभावना और (१६) साधुजीवों के साथ गौ-बछड़े के समान प्रेम करना ये सोलह भावनाएँ तीर्थकर नामकर्म के अश्रव का कारण हैं

परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावे च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥

अर्थ - पर की निन्दा, अपनी प्रशंसा करके विद्यमान गुणों का आच्छादन और अपने अवद्यमान गुणों का प्रकाशन ये नीच गोत्र कर्म के अश्रव के कारण हैं

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

अर्थ - इससे विपरीत अर्थात् अपनी निन्दा, पर की प्रशंसा, अपने गुण ढंकना और दूसरों के गुण प्रकाशित करना, नम्रवृत्ति और निरभिमान ये उच्च गोत्र कर्म के अश्रव के कारण हैं

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

अर्थ - पर के दान भोगादि में विघ्न करना अन्तराय कर्म के अश्रव का कारण है

तत्त्वार्थसूत्र सातवां-अध्याय

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

अर्थ - हिंसा, अस्त्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह इनसे बुद्धि पूर्वक विरक्त होना व्रत है

देश सर्वतोऽप्यु-महती ॥२॥

अर्थ - इन पाँचों पापों का एकदेश त्याग करना अणुव्रत है तथा मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से सर्वथा त्याग कर देना महाव्रत है

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च-पञ्च ॥३॥

अर्थ - इन व्रतों को स्थिर रखने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ हैं

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोक्ति-पान-भोजनानि पञ्च ॥४॥

अर्थ - वचन-गुप्ति, मनो-गुप्ति, ईर्या-समिति, आदाननिक्षेपण-समिति और आलोक्ति-पान भोजन (देखशोध कर भोजन करना) ये पाँच **अहिंसा व्रत की भावनाएँ** हैं

क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥५॥

अर्थ - क्रोध, लोभ, भय और हास्य का त्याग तथा सूत्र के अनुसार निर्दोष वचन ये पाँच **सत्यव्रत की भावनाएँ** हैं

शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥

अर्थ - खाली घर में रहना, किसी के छोड़े हुए स्थान में रहना, अन्य को रोकना नहीं, शास्त्र विहित भिक्षा की विधि में न्यूनाधिक नहीं करना और साधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच **अचौर्य व्रत की भावनाएँ** हैं

स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥

७□

अर्थ - स्त्रियों में प्रीति उत्पन्न करने वाली कथाओं को नहीं सुनना, उनके मनोहर अंगों को राग सहित नहीं देखना, पूर्वकाल में किये हुए विषयभोगों का स्मरण नहीं करना, कामोद्दीपक रसों का त्याग और शरीर को श्रृंगार युक्त करने का त्याग ये पाँच **ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ** हैं

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषय-राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥८॥

अर्थ - पाँचों इन्द्रियों के इष्ट व अनिष्ट रूप स्पर्श रसादिक पाँचों विषयों में राग द्वेष का त्याग करना **परिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ** हैं

हिसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥

अर्थ - हिसादि पाँच पाप के करने से इस लोक में आपत्ति और परलोक में छेदन-भेदनादि कष्ट सहन करने पड़ते हैं

दुःखमेव वा ॥१०॥

अर्थ - अथवा हिसादि पाँच पाप दुःख रूप ही हैं

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु ॥११॥

अर्थ - सर्व जीवों के साथ मित्रता, गुणाधिकों के साथ प्रमोद, दुःखियों के ऊपर करुणा बुद्धि और अविनयी जीवों पर माध्यस्थ भाव रखना चाहिए

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥

अर्थ - अथवा संवेग और वैराग्य के लिए जगत और काय के स्वभाव का भी बारम्बार चिंतन करना चाहिए

प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

अर्थ - प्रमाद के योग से भाव प्राण और द्रव्य प्राण का वियोग करना **हिंसा** है

असदभिधानमनृतम् ॥१४॥

अर्थ - जीवों के दुःख देनेवाले मिथ्या वचन कहना सो **असत्य** है

अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥

अर्थ - दूसरों के धन धान्यादि पदार्थों का उसके दिये बिना ग्रहण करना सो **चोरी** है

मैथुनमब्रह्म ॥१६॥

अर्थ - मैथुन अर्थात् विषय सेवन सो **कुशील** है

मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥

अर्थ - चेतन अचेतन रूप परिग्रह में ममत्व रूप परिणाम होना **परिग्रह** है

निःशल्यो व्रती ॥१८॥

अर्थ - जो व्रती शल्य (माया, मिथ्यात्व और निदान) रहित है वही व्रती है

अगार्यनगारश्च ॥१९॥

अर्थ - व्रती गृहस्थी और मुनि के भेद से दो प्रकार के होते हैं

अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

अर्थ - अणु मात्र व्रतवाला अर्थात् जिसके एक देश यथा-शक्ति पाँचों पापों का त्याग हो वह गृहस्थ कहलाता है

दिग्देशानर्थदण्ड विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि-संविभागव्रत-सम्पन्नश्च ॥२१॥

अर्थ - दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति ये तीन गुणव्रत तथा सामायिक प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिमाण और अतिथि संविभाग ये चार शिक्षा व्रत हैं । ये सात व्रत भी गृहस्थों को धारण करना चाहिए

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥

अर्थ - गृहस्थ मृत्यु के समय होने वाली सल्लेखना को प्रीति पूर्वक धारण करें

शंका-कांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥

अर्थ - शंका, कांक्षा (इस लोक और परलोक सम्बन्धी भोगों की वांछा), विचिकित्सा (मुनियों के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना), अन्यदृष्टि प्रशंसा (मिथ्या दृष्टि के ज्ञान चारित्र आदि की मन से प्रशंसा करना), अन्यदृष्टि संस्तवा (उनकी वचन से स्तुति करना) ये सम्यग्दृष्टि के पाँच अतीचार हैं

व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥

अर्थ - इसी प्रकार पाँच-व्रत और सात-शीलों में भी क्रम से पाँच-पाँच अतीचार हैं

बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥२५॥

अर्थ - बंध, वध, छेद, अतिभारारोपण और अन्नपाननिरोध ये पाँच **अहिसाणुव्रत के अतीचार** हैं

मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥

अर्थ - मिथ्या उपदेश, रहस्यों का प्रकट करना, झूठे खत वगैरह लिखना, धरोहर का हर लेना, साकार मंत्र भेद (मुँह आदि की चेष्टा से अभिप्राय जानकर उसको प्रकट करना) ये **सत्याणुव्रत के पाँच अतीचार** हैं

स्तेनप्रयोग-तदाहतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः ॥२७॥

अर्थ - चोरी करने का उपाय बताना, चोरी की वस्तु ग्रहण करना, राजा की आज्ञा का लोप करके विरुद्ध चलना, लेने-देने में बाट हीनाधिक रखना और अच्छी-बुरी वस्तु मिला कर बेचना ये पाँच **असत्य व्रत के अतीचार** हैं

परविवाहकरणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥

अर्थ - दूसरों के विवाह कराना, दूसरे की विवाही और व्यभिचारणी स्त्री के यहाँ आना जाना, वेश्यादि व्यभिचारणी स्त्रियों के साथ लेन देन वार्तालाप आदि रखना काम-सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से क्रीड़ा करना, अपनी स्त्री में काम सेवन की अत्यन्त अभिलाषा रखना ये पाँच **ब्रह्मचर्य व्रत के अतीचार** हैं

क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धन-धान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥

अर्थ - क्षेत्र, वास्तु चाँदी सुवर्ण, दासी, दास और कुप्य (तांबा-पीतल आदि धातु के बर्तन) इसके परिमाण का उल्लंघन करना ये पाँच **परिग्रह परिमाण व्रत के अतीचार** हैं

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥

अर्थ - ऊर्ध्व दिशा का, अधो दिशा का, तिर्यक दिशा का उल्लंघन तथा क्षेत्र-वृद्धि व स्मृति का विस्मरण हो जाने से नियम के बाहर की दिशाओं का गमन करना ये पाँच **दिग्व्रत के अतीचार** हैं

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दरूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥३१॥

अर्थ - मर्यादा से बाहर की वस्तु मंगवाना, भेजना, शब्द करके बुलाना, अपना रूप दिखाकर के बुलाना, पत्थर आदि फेंकना ये पाँच **देशावकाशिक व्रत के अतीचार** हैं

कन्दर्प-कौतुक्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यनि ॥३२॥

अर्थ - रागयुक्त असभ्यवचन बोलना (गाली देना, भांड वचन कहना), काय से कुचेष्टा करना, निरर्थक प्रलाप करना, बिना विचारे अधिक प्रवृत्ति करना, भोगोपभोग के पदार्थों का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना ये पाँच **अनर्थ-दंड व्रत के अतीचार** हैं

योग दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥

अर्थ - मन, वचन और काय का अन्यथा चलायमान करना ये तीन तथा अनादर और सामायिक की विधि को पूर्ण नहीं करना ये पाँच **सामायिक व्रत के अतीचार** हैं

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणा-नादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥

अर्थ - अप्रत्यवेक्षित (बराबर देखे बिना), अप्रमार्जित (प्रमार्जन किये बिना), उत्सर्ग (मल मूत्रादि करना) तथा आदान उपकरण ग्रहण करना, संथारादि बिछाना व्रत का अनादर करना और भूल जाना ये पाँच **प्रोषधोपवास व्रत के अतीचार** हैं

सचित्त-संबंध-सम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥

अर्थ - सचित्त पदार्थों से सम्बन्ध वाला, सचित्त वस्तु से मिला हुआ, अभिषव (पौष्टिक व मादक द्रव्य का आहार) और कच्चा-पक्का आहार करना ये पाँच **उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के अतीचार** हैं

सचित्त-निक्षेपापिधानपरव्यपदेश-मात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥

अर्थ - प्रासुक आहारादि, सचित्त वस्तु पर रखना, सचित्त वस्तु से ढंक्ना, अन्य की वस्तु का दान देना, ईर्ष्या करके दान देना, काल का उल्लंघन करके अकाल में भोजन देना ये पाँच **अतिथि संविभाग व्रत के अतीचार** हैं

जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि ॥३७॥

अर्थ - जीने की इच्छा करना, मरने की इच्छा करना, मित्रों से प्रेम करना, पूर्वकाल में भोगे हुए सुखों को याद करना, अगले जन्म के लिए विषयादि की वांछ करना ये पाँच समाधिमरण के अतीचार हैं

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥

अर्थ - उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना सो दान है

विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

अर्थ - विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से उस दान में भी विशेषता होती है

तत्त्वर्थ-सूत्र आठवां-अध्यय

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥१॥

अर्थ - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच बंध के कारण हैं

सकषायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥

अर्थ - कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बंध है

प्रकृति स्थित्यनुभाग-प्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥

अर्थ - प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इस प्रकार बन्ध चार प्रकार का होता है

आद्यो ज्ञान-दर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥४॥

अर्थ - पहिला प्रकृति बंध - (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय इस तरह आठ प्रकार का है

पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च भेदा यथाक्रमम् ॥५॥

अर्थ - ज्ञानावरण के पाँच, दर्शनावरण के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अष्टादश, आयु के चार, नाम के बयालीस, गोत्र के दो और अन्तराय के पाँच भेद हैं

मतिश्रुतावधि-मनःपर्यय केवलानाम् ॥६॥

अर्थ - (१) मतिज्ञानावरण (२) श्रुतज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मनःपर्यय ज्ञानावरण (५) केवलज्ञानावरण ऐसे पाँच भेद ज्ञानावरण प्रकृति के हैं

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यनगृह्यश्च ॥७॥

अर्थ - (१) चक्षुदर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण (३) अवधिदर्शनावरण (४) केवलदर्शनावरण (५) निद्रा (६) निद्रा-निद्रा (७) प्रचला (८) प्रचला-प्रचला और (९) सत्यानगृह्णिये ये नौ भेद दर्शनावरण के हैं

सदसद्वेद्ये ॥८॥

अर्थ - वेदनीय कर्म के साता-वेदनीय और असाता-वेदनीय ये दो भेद हैं

दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्व
तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुत्रपुंसक-वेदा अनन्तानुबंध्य
प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पश्चैकश क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥९॥

अर्थ - मोहनीय के दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय ये दो भेद होते हैं । इनमें से दर्शन-मोहनीय के सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये तीन भेद हैं । चारित्र मोहनीय के अकषाय-वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद हैं, इनमें से पहिला तो हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ऐसे नौ प्रकार का है । कषाय-वेदनीय अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन के भेदों सहित क्रोध, मान, माया और लोभ रूप सोलह प्रकार का होता है । इसतरह कुल ३+९+१६ = २८ भेद हुए

नारकतैर्यग्येन-मानुष-दैवानि ॥१०॥

अर्थ - नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव इस तरह अष्टु कर्म की चार प्रकृतियाँ हैं

गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्शरस-गंध-
वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वसविहायोगतयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-
सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय यशः कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥

अर्थ - गति, जाति, शरीर, अंगोपाङ्ग, निर्माण, बंधन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वस, और विहायोगति ये इक्कीस तथा प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, अदेय, यशः, कीर्ति ये दस । तथा इनके प्रतिपक्षी - साधारण शरीर, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, बादर, अपर्याप्ति, अस्थिर, अनादेय, अयशः, कीर्ति ये दश तीर्थकरत्व, ये बयालीस प्रकृति नामकर्म की हैं

उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥

अर्थ - उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो गोत्र कर्म के भेद हैं

दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥

अर्थ - दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इन पाँच शक्तियों से अन्तराय कर्म पाँच प्रकार का है

आदितस्त्रिसृणामंतरायस्य च त्रिशत्सागरोपमकोटीकोट्य परा स्थितिः ॥१४॥

अर्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागर की है

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥

अर्थ - मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडा-कोडी सागर की है

विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥

अर्थ - नाम कर्म और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति २० कोडा-कोडी सागर की है

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष ॥१७॥

अर्थ - अष्टुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर की है

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥

अर्थ - वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की है

नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥

अर्थ - नाम कर्म और गोत्रकर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥

अर्थ - बाकी के पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है

विपाकोऽनुभवः ॥२१॥

अर्थ - कर्मों में फलदान शक्ति का पड जाना विपाक है

स यथानाम् ॥२२॥

अर्थ - वह अनुभाग बंध कर्म की प्रकृतियों के नामानुसार होता है

ततश्च निर्जरा ॥२३॥

अर्थ - कर्मफल भोग के पश्चात् उन कर्मों की निर्जरा हो जाती है

नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥

अर्थ - आत्मा के योग विशेषों द्वारा त्रिकाल बँधने वाले नामादि प्रकृतियों के कारणभूत तथा आत्मा के सर्व प्रदेशों में व्याप्त होकर कर्म रूप परिणामने योग्य सूक्ष्म और जिस क्षेत्र में आत्मा ठहरा हो उसी क्षेत्र को अवगाह कर ठहरने वाले ऐसे अनन्तानन्त प्रदेश रूप पुद्गल स्वर्णों को प्रदेश बंध कहते हैं

सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

अर्थ - सातावेदनीय शुभायु शुभनाम और शुभगोत्र ये पुण्यरूप प्रकृतियाँ हैं

अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

अर्थ - उक्त प्रकृतियों से बाकी बची हुई कर्म प्रकृतियाँ पापरूप अशुभ प्रकृतियाँ हैं

तत्त्वार्थसूत्र नवां-अध्याय

आस्रव-निरोधः संवरः ॥१॥

अर्थ - आस्रवों का निरोध करना सो संवर है

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥

अर्थ - वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा (भावना), परीषहजय और चारित्र इन छः कारणों से होता है

तपसा निर्जरा च ॥३॥

अर्थ - तप से निर्जरा और संवर दोनों होते हैं

सम्ययोगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥

अर्थ - मन - वचन - काय की यथेच्छ प्रवृत्ति को भले प्रकार रोकना सो गुप्ति है

ईर्याभाषैषणा-दाननिक्षेपोत्सर्गः समितयः ॥५॥

अर्थ - ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप, उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं

उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-सत्य-शौच-संयमतपस्त्यगा-किञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

अर्थ - उत्तम-क्षमा, उत्तम-मार्दव (नम्रता), उत्तम-आर्जव (सरलता), उत्तम-सत्य, उत्तम-शौच, उत्तम-संयम, उत्तम-तप, उत्तम-त्याग, उत्तम-अकिञ्चन्य (निष्परिग्रहता), उत्तम-ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं

अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म-स्वाख्यातत्त्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥७॥

अर्थ - अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म इनमें कहे हुए तत्वों का चिन्तन ये बारह भावनाएँ हैं

मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥

अर्थ - मोक्षमार्ग से अलग नहीं हो जावें इसलिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए परीषह सहना चाहिए

क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-नाग्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोशवधयाचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥९॥

अर्थ - भूख, प्यास, ठंड, गर्मी, दंशमशक (डांसमच्छर), नाग्यारति, स्त्री, चर्या (चलना), निषद्या (आसन), शय्या / शयन, आक्रोश (गाली), वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ये बाईस परीषह हैं

सूक्ष्मसाम्प्राय-छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

अर्थ - सूक्ष्मसाम्प्राय (दसवें) और छद्मस्थ-वीतराग (ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान) में चौदह परीषह होती हैं

एकादश जिने ॥११॥

अर्थ - तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिन (केवली भगवान्) के ग्यारह परीषह होती हैं

बादरसाम्प्राये सर्वे ॥१२॥

अर्थ - बादर साम्प्राय गुणस्थान तक सभी परीषह सम्भव हैं

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥

अर्थ - ज्ञानावरण के सूक्ष्म में प्रज्ञा और अज्ञान, दो परीषह होती हैं

दर्शनमोहान्तराय योरदर्शनालाभौ ॥१४॥

अर्थ - दर्शन मोहनीय के उदय से अदर्शन परिषह और अन्तराय के उदय से अलाभ परिषह होती हैं

चारित्रमोहे नाग्यारति-स्त्री-निषद्याक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कार ॥१५॥

अर्थ - चारित्र मोहनीय के उदय होने पर नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या, अक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार ये सात परीषह होती हैं

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

अर्थ - वेदनीय कर्म के उदय होने पर बाकी की क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्चा, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परीषह होती हैं

एकादयो भाज्य युगपदेकस्मिन्नैकोनविशति ॥१७॥

अर्थ - एक साथ एक जीव के उन्नीस परीषह तक होती हैं

सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात-मितिचारित्रम् ॥१८॥

अर्थ - सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात इस तरह पाँच प्रकार का चारित्र है

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥

अर्थ - अनशन, अवमौदर्य (भूख से कम खाना), वृत्तिपरिसंख्यान (भोज्य पदार्थों की गिनती रखना), रसपरित्याग (रसों का त्याग), विविक्त-शय्यासन (एकान्त में शयन और आसन), कायक्लेश ये ६ प्रकार के बाह्य तप हैं

प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥

अर्थ - प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ये ६ अभ्यंतर तप हैं

नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्व्यनात् ॥२१॥

अर्थ - ध्यान से पहिले पाँच तपों के क्रम से नौ, चार, दस, पाँच और दो भेद होते हैं

आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारोपस्थापना ॥२२॥

अर्थ - आलोचना, प्रतिक्रमण (मैंने जो अपराध किये हैं वे मिथ्या हों), आलोचना-प्रतिक्रमण, विवेक (अहारादिक का त्याग), कायोत्सर्ग, तप, छेद (दोष लगने पर पहले का चारित्र छेद देना), परिहार (संघ से बाहर करना), उपस्थापना (फिर से दीक्षा देना) ये नौ भेद प्रायश्चित्त के हैं

ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥२३॥

अर्थ - ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उपचार इस तरह विनय के चार भेद हैं

आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥२४॥

अर्थ - आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष (नवीन दीक्षित), ग्लान (रोगी), गण (बड़े मुनियों की परिपाटी के), कुल (दीक्षा देने वाले आचार्य के शिष्य), संघ, साधु मनोज्ञ (लोकमान्य चरित्र को पालन करने वाले) इन दश प्रकार के साधुओं की सेवा करना सो दस प्रकार का वैयावृत्य है

वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः ॥२५॥

अर्थ - वाचना (पढ़ना), पृच्छना (पूछना), अनुप्रेक्षा (बारम्बार चिंतन करना), आम्नाय (पाठ का शुद्धता पूर्वक पढ़ना), (धर्मोपदेश धर्म का उपदेश देना) ये स्वाध्याय के पाँच भेद हैं

बाह्याभ्यन्तरोपधयो ॥२६॥

अर्थ - धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह का तथा क्रोधादि अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग इस प्रकार व्युत्सर्ग के दो भेद हैं

उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥

अर्थ - चिन्ताओं को रोककर एक ओर चित्तवृत्ति का लगाना एकाग्रचिन्ता-निरोध ध्यान है वह उत्तम संहनन वाले के अंतर्मुहूर्त तक होता है

आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥२८॥

अर्थ - आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ये चार प्रकार के ध्यान हैं

परे मोक्षहेतू ॥२९॥

अर्थ - आर्त के दो - धर्म और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ॥३०॥

अर्थ - अनिष्ट पदार्थों के संयोग हो जाने पर उसको दूर करने के लिए बारम्बार चिन्ता करना सो पहला आर्तध्यान है

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥

अर्थ - वियोग होने पर उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए बारम्बार चिन्ता करना सो दूसरा आर्तध्यान है

वेदनायाश्च ॥३२॥

अर्थ - वेदना अर्थात् रोगजनित पीड़ा का चिन्तन करना, अधीर हो जाना सो तीसरा आर्तध्यान है

निदानं च ॥३३॥

अर्थ - आगामी विषय भोगादिक का निदान करना सो चौथा आर्तध्यान है

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥३४॥

अर्थ - वह आर्तध्यान पहले से चौथे तक तथा पाँचवे-छठे गुणस्थान वालों के होता है

हिसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥३५॥

अर्थ - हिसा, झूठ, चोरी और विषयों की रक्षा करने के लिए उनका बारम्बार चिन्तन करना सो रौद्र ध्यान है । यह अविरत और देशविरत गुणस्थानवर्ती जीवों के होता है

अज्ञापाय-विपाकसंस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥

अर्थ - अज्ञाविचय (जिन अज्ञा को प्रमाण मानना), अपायविचय (सन्मार्ग से गिरने का दुख मानना), विपाकविचय (कर्मों के फल का चिन्तन), संस्थानविचय (लोक के आकार का चिन्तन करना) सो चार प्रकार का धर्मध्यान है

शुक्ले चाद्ये पूर्व-विदः ॥३७॥

अर्थ - आदि के दो शुक्लध्यान पूर्व के जानने वाले अर्थात् श्रुतकेवली के होते हैं

परे केवलिनः ॥३८॥

अर्थ - आगे के दो अर्थात् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ती ये दो ध्यान सयोग-केवली और अयोग-केवली के होते हैं

पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥

अर्थ - पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्ति ये शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं

त्रैकयोग-काययोगायोगानाम् ॥४०॥

अर्थ - पहिला शुक्ल-ध्यान तीनों योगों के धारकों के, दूसरा शुक्ल-ध्यान तीन में से किसी एक योग वाले के, तीसरा शुक्ल-ध्यान काय-योग वालों के और चौथा अयोग-केवली के होता है

एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥४१॥

अर्थ - पहिले के दो ध्यान एकाश्रय अर्थात् श्रुतकेवली के आश्रय तथा वितर्क और वीचार सहित होते हैं

अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥

अर्थ - दूसरा शुक्ल ध्यान वितर्क सहित किंतु वीचार रहित है

वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥

अर्थ - वितर्क (विशेष प्रकार से तर्क करना) सो श्रुतज्ञान है

वीचारोऽर्थव्यंजन-योगसंक्रान्ति ॥४४॥

अर्थ - अर्थ, व्यंजन और योगों का परिवर्तन है सो वीचार है

सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्तवियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशम-कोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येय-गुणनिर्जराः ॥४५॥

अर्थ - सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत (महाव्रती-मुनी), अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने वाला, दर्शन-मोह को नष्ट करनेवाला, चारित्र मोह का शमन करनेवाला, उपशान्त मोह वाला, क्षपकश्रेणी चढ़ता हुआ, क्षीण मोही, जिनेन्द्र भगवान् इस सबके क्रम से उत्तरोत्तर असंख्यत गुणी निर्जरा होती है

पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥

अर्थ - पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक ये पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु होते हैं

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थलिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

अर्थ - संयम, श्रुत, प्रति-सेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्य, उपपाद, स्थान इन आठ प्रकार के भेदों से भी पुलाकादि मुनियों के और भी भेद होते हैं

तत्त्वार्थसूत्र दसवां-अध्याय

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥१॥

अर्थ - मोहनीय कर्म के क्षय होने के पश्चात् तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म के क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥

अर्थ - बंध के कारणों के अभाव होने से तथा निर्जरा से समस्त कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाना सो मोक्ष है

औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥

अर्थ - और मुक्त जीव के औपशमिकादि भावों का तथा भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है

अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्य ॥४॥

अर्थ - केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व इन चार भावों के सिवाय अन्य भावों का मुक्त जीव के अभाव होता है

तदन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥

अर्थ - समस्त कर्मों के नष्ट हो जाने के पश्चात् मुक्त जीव लोक के अंतभाग तक ऊपर को जाकर सिद्धशिला में विराजमान हो जाता है

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्-बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥

अर्थ - पूर्व प्रयोग से, असंग होने से, कर्म बंध के नष्ट हो जाने से और सिद्ध गति का ऐसा ही परिणाम होने से मुक्तजीव का ऊर्ध्व गमन होता है

अविद्धकुलालचक्रवद्-व्यपगतलेपालांबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥

अर्थ - मुक्तजीव के ऊर्ध्वगमन में पूर्व सूत्र में जो हेतु बताये गये हैं उनको दृष्टान्त द्वारा बताया जाता है - पूर्व प्रयोग से कुम्हार के घुमाए हुए चाक के समान, असंग होने से मिट्टी के लेप रहित तुंबी के समान, कर्मबंध के नष्ट होने से एरण्ड बीज के समान, स्वभाव से अग्निशिखा के समान, मुक्त जीव का ऊर्ध्वगमन होता है

धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥

अर्थ - मुक्त जीव का अलोकाकाश में धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन नहीं होता है

क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थचारित्र-प्रत्येकबुद्धबोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्यल्पबहुत्वतः
साध्याः ॥९॥

अर्थ - क्षेत्र, काल, गति, लिंग तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगों से सिद्धों में भी भेद किया जा सकता है

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः

अक्षर-मात्र पद-स्वर-हीनं, व्यंजन-संधि-विवर्जित-रेफम्
साधुभिस्त्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति ॥

फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥

तत्त्वार्थ - सूत्र - कर्तारं, गृह्यपिच्छोपलक्षितम्

वन्दे गणीन्द्र - संजातमुमास्वामि - मुनीश्वरम् ॥

भक्तामर-आचार्य-मानतुंग

भक्तामर - प्रणत - मौलिमणि - प्रभाणा -
मुद्योतकं दलित - पाप - तमोवितानम्
सम्यक् प्रणम्य जिन पादयुगं युगाद
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

भावार्थ - भगवान् ऋषभदेव के चरण-युगल में जब [भक्तामर] देवगण भक्तिपूर्वक [प्रणत] नमस्कार करते हैं, तब उनके [मौलि] मुकुट में जड़ी मणियां प्रभु के चरणों की दिव्य [प्रभाणाम्] कांति से और अधिक [उद्योतकम्] प्रकाशित / विकसित होती है और जिसका तेज [पाप-तमो] पाप रूपी अधिकार के [वितानम्] विस्तार का [दलित] नाश करने वाला है । [युगादौ] इस युग के प्रारंभ में धर्म का प्रवर्तन करने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ऐसे [जिन-पाद-युगम्] जिनेन्द्र भगवान् के दोनों पैरों का [सम्यक्-प्रणम्य] अच्छी प्रकार प्रणाम, [भव जले] संसार समुद्र में [पततां] गिरते हुए [जनानाम्] प्राणियों को [अलम्बनं] सहारा है ।

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय - तत्त्वबोधा -
दुद्भूत - बुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित् हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

भावार्थ - [सकल] सम्पूर्ण [वाङ्मय] शास्त्रों से [तत्त्व] तत्वों को [बोधा] जानने से जिनकी बुद्धि अत्यंत [पटुभिः] प्रखर [दुद्भूत] उत्पन्न हुई है, ऐसे [सुर लोकनाथैः] देवेन्द्रों ने [जगत्-त्रितय] तीन लोक के चित्त को [हरैः] आनन्दित करने वाले [रुदारैः] उत्कृष्ट / श्रेष्ठ [स्तोत्रैः] स्तोत्रों द्वारा [यः-संस्तुतः] जिनका स्तवन किया गया था, [तं प्रथमं जिनेन्द्रम्] उन प्रथम जिनेन्द्र की [किल] निश्चय से [अहम्] मैं, अल्पबुद्धि वाला मानतुंग आचार्य [अपि] भी [स्तोष्ये] स्तुति करने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।

बुद्ध्य विनापि विबुधार्चित - पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगत-त्रपोऽहम्
बालं विहाय जल संस्थितमिन्दु- बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

भावार्थ - हे जिनेश्वर ! [विबुधार्चित] देवों के द्वारा आपके [पाद-पीठ] चरण रखने का आसन भी पूजित है और [अहम्] मैं आपकी [स्तोतुं] स्तुति करने का [समुद्यत] प्रयास [बुद्ध्य] बुद्धि के [विनापि] बिना (अल्पबुद्धि) होते हुए भी [त्रप] लज्जा छोड़कर कर रहा हूँ - जैसे जल में [संस्थितं] पडते [इन्दु] चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ना असंभव होते हुए भी, [सहसा] बिना विचारे [बालं] बालक को [विहाय] छोड़कर उसे [ग्रहीतुम्] पकड़ने की [अन्य क इच्छति] और कौन [जनः] पुरुष इच्छा करता है ।

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्य
कल्पान्त-काल-पवनोद्भूत-नक्र-चक्रं

को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

भावार्थ - हे [गुण-समुद्र] गुणों के समुद्र जिनेश्वर ! [ते] आपके [शशँक कान्तान्] चन्द्रकांति के समान स्वच्छ, आनन्दरूप, अनंत [गुणान्] गुणों का [वक्तुं] वर्णन करने में [सुरगुरु] बृहस्पति के [प्रतिमः अपि] समान [बुद्ध्या] बुद्धिमान भी [कस्ते क्षमः] कौन पुरुष समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं । अथवा [कल्पान्तकाल] प्रलयकाल की [पवन] वायु के द्वारा [उद्धत] प्रचण्ड है [नक्र] मगरमच्छों का [चक्रं] समूह जिसमें, ऐसे [अम्बु निधिं] समुद्र को [भुजाभ्याम्] भुजाओं के द्वारा [तरीतुम्] तैरने के लिए [को वा अलम्] कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं ।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

भावार्थ - [सोऽहं] इस लिए मैं [तथापि] फिर भी [शक्ति रपि] शक्ति से भी [विगत] रहित होता हुआ भी, मैं अल्फ़ा हे मुनीश! [तव भक्ति वशात्] आपकी भक्तिवश, [स्तवं] स्तुति [कर्तुं] करने को [प्रवृत्त] तैयार हुआ हूँ । जैसे [मृगी] हरिणी, [आत्मवीर्यम्] अपनी शक्ति का [अविचार्य] विचार न कर, [प्रीती] प्रीतिवश [निज शिशोः] अपने शिशु की [परिपालनार्थम्] रक्षा के लिये, [किं] क्या [मृगेन्द्रम्] सिंह के सामने [न अभ्येति] नहीं जाती? अर्थात् जाती हैं ।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्वक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु - कलिका निकरैकहेतु ॥६॥

भावार्थ - हे प्रभो ! [त्वद् भक्ति रेव] आपकी भक्ति ही [मुखरी] बोलने के लिये [माम्] मुझ को [बलात्] बल पूर्वक प्रेरित [कुरुते] कर रही है । अन्यथा मेरी क्या शक्ति? मैं तो [अल्पश्रुतं] अल्फ़ा हूँ और [श्रुतवतां] द्वादशांग के ज्ञानी विद्वानों के सामने [परिहासधाम] उपहास का पात्र हूँ। [यत्कोकिलः] जैसे कोयल को [किल] निश्चय से [मधौ] वसंत ऋतु में [मधुरं] सुरीली आवाज़ में [विरौति] बोलती है [तत्] उसमें [आम्र] आम की [चारुकलिका] सुंदर मंजरी का [निकर] समुदाय ही [एक हेतु] एक कारण है ।

त्वत्संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्
अक्रान्त-लोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्याशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

भावार्थ - हे अदिदेव ! [त्वत्संस्तवेन] आपकी भक्ति में लीन होने वाले [शरीर भाजाम्] प्राणियों के अनेक [भव] जन्मों की [सन्तति] परंपरा में [सन्निबद्धम्] बाँधे गये [पापं क्षणात् क्षयम्] पाप कर्म क्षण भर में [उपैति] प्राप्त हो जाते हैं, जैसे [अक्रान्त लोकम्] समस्त संसार को आच्छादित करने वाला [अलि नीलम्] भंवरे के समान काला पीला [अशेषम्] सघन [शार्वरम्] रात्रि सम्बन्धी अंधकार, [अशु] क्षणभर में, [सूर्याशु-भिन्नम्] सूर्य की किरणों से छिन्न भिन्न हो जाता है ।

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात्

चेतो हरिष्यति सतां नलिनी- दलेषु
मुक्त- फल द्युतिमुपैति ननूद- बिन्दुः ॥८॥

भावार्थ - हे [नाथ] स्वामिन्! [मत्वेति] ऐसा मानकर मुझ [तनु ध्यापी] मन्दबुद्धि के [मया] द्वारा भी [तव] आपका [इदम्] यह [संस्तवनं] उत्कृष्ट स्तवन करना [आरभ्यते] प्रारम्भ किया जाता है, जो [तव प्रभावात्] आपके दिव्य प्रभाव से [सतां] सज्जन जीवों के [चेतो हरिष्यति] चित्त को हरेगा। जिस प्रकार [नलिनी दलेषु] कमलिनी के पत्तों पर पड़ी नन्हीं-नन्हीं [उद बिन्दु] ओस की बूँदें सूरज की किरणों पड़ने से [ननू] निश्चय से [मुक्त फल] मोती के समान [द्युतिम्] चमकने [उपैति] लगती है।

अस्तां तव स्तवनमस्त - समस्त- दोषं
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥९॥

भावार्थ - हे जिनेश्वरदेव ! [समस्त-दोषं] समस्त दोषों का [अस्त] नाश करने वाले [तव] आपके [स्तवनं] स्तोत्र की असीम शक्ति का तो [अस्तां] दूर रहे (कहना ही क्या), किन्तु श्रद्धा भक्तिपूर्वक किया गया [त्वत्] आपकी [संकथाऽपि] पवित्र कथा भी [जगतां] जगत के जीवों के [दुरितानि] पापों को नष्ट का देती पापों का नाश कर उन्हें पवित्र बना देता [हन्ति] है। जैसे, [सहस्र-किरणः] सूर्य तो [दूरे] दूर होने पर भी, उसकी [प्रभैव] प्रभा ही [पद्मा-करेषु] सरोवर में [जलजानि] कमलों को [विकासभांजि] विकसित [कुरुते] कर देती है।

नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

भावार्थ - हे [भुवन-भूषण] जगत् के भूषण! हे [भूतनाथ] समस्त प्राणियों के नाथ! [भवन्तं] आपके [भूतैर्गुणै] पवित्र गुणों की [अभिष्टुवन्तः] स्तुति करने वाले पुरुष [भुवि] पृथ्वी पर यदि [ननु] निश्चय से [भवतो] आपके [तुल्या] समान [भवन्ति] हो जाते हैं तो [नात्यद्भुतं] इसमें अधिक आश्चर्य नहीं है। क्योंकि [तेन] उस स्वामी से [किं वा] क्या प्रयोजन, [य] जो [इह] इस लोक में [अश्रितम्] अपने अधीन पुरुष को [भूत्या] सम्पत्ति के द्वारा [नात्म समं करोति] अपने समान नहीं कर लेता।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥

भावार्थ - हे [अनिमेष] बिना पलके झुकाए [विलोक-नीयम्] दर्शनीय प्रभो! [भवन्तम्] आपके दिव्य स्वरूप के [दृष्ट्वा] दर्शन के पश्चात् [जनस्य] मनुष्यों के [चक्षुः] नेत्र [नान्यत्र] अन्यत्र [तोषम्] सन्तोष को [उपयाति] प्राप्त नहीं होते। [शशिकरद्युति] चन्द्रकीर्ति के समान निर्मल [दुग्धसिन्धोः] क्षीरसमुद्र के [पयः] जल को [पीत्वा] पीकर [कः] कौन पुरुष [जल-निधे] लवण समुद्र के [क्षारं] खारे पानी को [रसितुं] पीना [इच्छेत्] चाहेगा? अर्थात् कोई नहीं।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्तवं
निर्मापितस्तिभुवनैक ललाम भूत

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

शब्दार्थ - ये=जिनके द्वारा, शांतराग=शांत भाव के धारक अर्थात् वैराग्य उत्पन्न करने वाले, रुचिभिः-प्रभावाले, परमाणुभिः=परमाणुओं से, तवम्=आप, निर्मापितः=बनाये गए है, त्रिभुवनैक=त्रिलोक में एकमात्र अद्वितीय, ललामभूत=सौन्दर्य के धारक, तावन्त=उतने, एव=ही थे, खलु-निश्चय से, ते=वे, प्यणवः=परमाणु, पृथिव्याम्=पृथ्वी पर, यत्=क्योंकि, तेसमानम्=उनके सामान, अपरं=दूसरा, नहि=नहीं, रूपम्=रूप, अस्ति =है! जितने आपके शरीर में है

भावार्थ - हे त्रिभुवन के एकमात्र आभूषण जिनेन्द्रदेव! जिन रागरहित सुन्दर परमाणुओं के द्वारा आपकी रचना हुई, वे परमाणु पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही थे क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है ।

वक्त्रं क ते सुरनरोगनेत्रहारि
निःशेष - निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्
बिम्बं कलङ्क मलिनं क निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पांडु - पलाशकल्पम् ॥१३॥

भावार्थ - हे प्रभो! सम्पूर्ण रूप से तीनों जगत् की उपमाओं का विजेता, देव मनुष्य तथा धरणेन्द्र के नेत्रों को हरने वाला कहां आपका मुख? और कलंक से मलिन, चन्द्रमा का वह मण्डल कहां? जो दिन में पलाश (ढाक) के पत्ते के समान पीका पड़ जाता ।

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप -
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति
ये संश्रितास् त्रिजगदीश्वर नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

भावार्थ - पूर्णमासी के चन्द्रमा की कलाओं के समान उज्ज्वल आपके गुण, तीन लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं क्योंकि जो अद्वितीय त्रिजगत् के भी नाथ के अश्रित हैं उन्हें इच्छानुसार घूमते हुए कौन रोक सकता है? कोई नहीं ।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम्
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
कि मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

भावार्थ - हे वीतराग देव ! यदि आपका मन देवांगनाओं के द्वारा किंचित् भी विक्रान्ति को प्राप्त नहीं कराया जा सका, तो इस विषय में अश्चर्य ही क्या है? क्योंकि सामान्य पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकाल की पवन के द्वारा क्या कभी सुमेरु पर्वत का शिखर हिल सका है? नहीं ।

निर्धूमवर्तिरपवर्जित तैलपूरः
 कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि
 गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
 दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

भावार्थ - हे स्वामिन्! आप धूम तथा बाती से रहित, तेल के प्रवाह के बिना भी इस सम्पूर्ण लोक को प्रकट करने वाले अपूर्व जगत प्रकाशक अलौकिक दीपक हैं जिसे विशाल पर्वतों को कंपा देने वाला झंझावात भी कभी बुझा नहीं सकता ।

नास्तं कादाचिदुपयासि न राहुगम्यः
 स्पृष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति
 नाम्भोधरोदर निरुद्धमहाप्रभावः
 सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

भावार्थ - हे मुनीन्द्र! आप न तो कभी अस्त होते हैं न ही राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं और न आपका महान तेज मेघ से तिरोहित होता है आप एक साथ तीनों लोकों को शीघ्र ही प्रकाशित कर देते हैं अतः आप सूर्य से भी अधिक महिमावन्त हैं ।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
 गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्
 विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प कान्ति
 विद्योतयज्जगदपूर्व - शशाङ्क - बिम्बम् ॥१८॥

भावार्थ - हे जिनेन्द्रदेव ! आपका मुखमंडल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चंद्रमा है, जिसने मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो अत्यंत दीप्तिमान है, जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं, तथा जो जगत को प्रकाशित करता हुआ अलौकिक चंद्रमंडल की तरह सुशोभित होता है ।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्क्ता वा
 युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमस्सु नाथ
 निष्पन्न - शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
 कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥१९॥

भावार्थ - हे स्वामिन्! जब अंधकार आपके मुख रूपी चन्द्रमा के द्वारा नष्ट हो जाता है तो रात्रि में चन्द्रमा से एवं दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन? जैसे कि पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान धरती तल पर पानी के भार से झुके हुए मेघों से फिर क्या प्रयोजन ।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

भावार्थ - अनंत गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है वैसा हरि-हरादिक अर्थात् विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि लौकिक देवों में है ही नहीं । स्फुरायमान महारत्नों में जैसा तेज होता है, किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकड़ों में वैसा तेज नहीं होता ।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
किं वीक्षितेन भक्ता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

भावार्थ - हे स्वामिन्, देखे गये विष्णु महादेव ही मैं उत्तम मानता हूँ, जिन्हें देख लेने पर मन आप में सन्तोष को प्राप्त करता है । किन्तु आपको देखने से क्या लाभ? जिससे कि प्रथ्वी पर कोई दूसरा देव जन्मान्तर में भी चित्त को नहीं हर पाता ।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालं ॥२२॥

भावार्थ - सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं, परन्तु आप जैसे पुत्र को दूसरी माँ उत्पन्न नहीं कर सकी। नक्षत्रों को सभी दिशाएँ धारण करती हैं परन्तु कान्तिमान् किरण समूह से युक्त सूर्य को पूर्व दिशा ही जन्म देती है ।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥

भावार्थ - हे मुनीन्द्र! तपस्वीजन आपको सूर्य की तरह तेजस्वी निर्मल और मोहान्धकार से परे रहने वाले परम पुरुष मानते हैं । वे आपको ही अच्छी तरह से प्राप्त कर मृत्यु को जीतते हैं । इसके सिवाय मोक्षपद का दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है ।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं

ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम्
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं

ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

भावार्थ - सज्जन पुरुष आपको शाश्वत, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक ज्ञानस्वरूप और अमल कहते हैं ।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्
धातासि धीर शिव-मार्ग विधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

भावार्थ - देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हैं। तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण आप ही शंकर हैं। हे धीर! मोक्षमार्ग की विधि के करने वाले होने से आप ही ब्रह्मा हैं और हे स्वामिन्! आप ही स्पष्ट रूप से मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हैं ।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

भावार्थ - हे स्वामिन्! तीनों लोकों के दुःख को हरने वाले आपको नमस्कार हो, प्रथ्वीतल के निर्मल आभूषण स्वरूप आपको नमस्कार हो, तीनों जगत् के परमेश्वर आपको नमस्कार हो और संसार समुन्द्र को सुखा देने वाले आपको नमस्कार हो ।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीशः!
दोषैरूपात्तविविधाश्रय - जात - गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

भावार्थ - हे मुनीश! अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण समस्त गुणों ने यदि आपका आश्रय लिया हो तो तथा अन्यत्र अनेक आधारों को प्राप्त होने से अहंकार को प्राप्त दोषों ने कभी स्वप्न में भी आपको न देखा हो तो इसमें क्या आश्चर्य?

उच्चैरशोक तरु-संश्रितमुन्मयूख
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्

स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त- तमो - वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर- पार्श्ववर्ति ॥२८॥

भावार्थ - ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्नत किरणों वाला, आपका उज्ज्वल रूप जो स्पष्ट रूप से शोभायमान किरणों से युक्त है, अधिकार समूह के नाशक, मेघों के निकट स्थित सूर्य बिम्ब की तरह अत्यन्त शोभित होता है ।

सिंहासने मणि- मयूख- शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता - वितानं
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्र- रश्मेः ॥२९॥

भावार्थ - मणियों की किरण-ज्योति से सुशोभित सिंहासन पर, आपका सुवर्ण कि तरह उज्ज्वल शरीर, उदयाचल के उच्च शिखर पर आकाश में शोभित, किरण रूप लताओं के समूह वाले सूर्य मण्डल की तरह शोभायमान हो रहा है ।

कुन्दावदात चल- चामर- चारु- शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्
उद्यच्छांक- शुचि- निर्झर वारि- धार
मुच्चैस्तटं सुरगिरैरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

भावार्थ - कुन्द के पुष्प के समान धवल चँवरों के द्वारा सुन्दर है शोभा जिसकी, ऐसा आपका स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर, सुमेरुपर्वत, जिस पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल झरने के जल की धारा बह रही है, के स्वर्ण निर्मित ऊँचे तट की तरह शोभायमान हो रहा है ।

छत्रत्रयं तव विभाति शशांक-कान्त
मुच्चैःस्थितं स्थगित- भानु- कर प्रतापम्
मुक्ता- फल-प्रकर - जाल विवृद्ध- शोभं
प्रख्यपयत्तिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

भावार्थ - चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य की किरणों के सन्ताप को रोकने वाले, तथा मोतियों के समूहों से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले, आपके ऊपर स्थित तीन छत्र, मानो आपके तीन लोक के स्वामित्व को प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं ।

गम्भीर - तार - ख - पूरित - दिग्विभाग
स्त्रैलोक्य - लोक - शुभ - संगम - भूति - दक्षः
सद्गर्भराज - जय - घोषण घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

भावार्थ - गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं को गुञ्जायमान करने वाला, तीन लोक के जीवों को शुभ विभूति प्राप्त कराने में समर्थ और समीचीन जैन धर्म के स्वामी की जय घोषणा करने वाला दुन्दुभि वाद्य आपके यश का गान करता हुआ आकाश में शब्द करता है ।

मन्दार - सुन्दर - नमेरू - सुपारिजात
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा
गन्धोद - बिन्दु - शुभ - मन्द मरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

भावार्थ - सुगन्धित जल बिन्दुओं और मन्द सुगन्धित वायु के साथ गिरने वाले श्रेष्ठ मनोहर मन्दार, सुन्दर, नमेरू, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा आपके वचनों की पंक्तियों की तरह आकाश से होती है । (छठवां प्रातिहार्य 'पुष्पवृष्टि')

शुभम्प्रभा - वलय भूरिविभा विभोस्ते
लोक - त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तर - भूरि - संख्य
दीप्य जयत्यपि निशामपि सोम - सौम्याम् ॥३४॥

भावार्थ - हे प्रभो! तीनों लोकों के कान्तिमान पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती हुई आपके मनोहर भामण्डल की विशाल कान्ति, एक साथ उगते हुए अनेक सूर्यों की कान्ति से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से अधिक शीतलता, सौम्यता प्रदान करने वाली है । (सातवां प्रातिहार्य 'भामण्डल')

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग विमार्गणेषु
सद्गर्भ - तत्व - कथनैक - पटुस्त्रिलोक्यः
दिव्य - ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ - सर्व
भाषा - स्वभाव - परिणाम - गुणैः प्रयोज्य ॥३५॥

भावार्थ - आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने में सक्षम, तीन लोक के जीवों को समीचीन धर्म का कथन करने में समर्थ, स्पष्ट अर्थ वाली, समस्त भाषाओं में परिवर्तित करने वाले स्वाभाविक गुण से सहित होती है । (आठवां प्रातिहार्य दिव्यध्वनि

उन्निद्र - हेम - नव - पंकज - पुंज - कान्ती
पर्युल्लसन्नख - मयूख - शिखाभिरामौ
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

भावार्थ - नव विकसित स्वर्ण कमलों के समान शोभायमान नखों की किरण प्रभा से सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं वहाँ देव गण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते जाते हैं ।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कृत्तो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

भावार्थ - हे जिनेन्द्र! इस प्रकार धर्मोपदेश के कार्य में जैसा आपका ऐश्वर्य होता है, वैसा अन्य देवों को कभी प्राप्त नहीं होता । अंधकार को नष्ट करने वाली जैसी प्रभा सूर्य की होती है वैसी अन्य प्रकाशमान भी ग्रहों की कैसे हो सकती है?

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोल - मूलं
मत्तभ्रमद् भ्रमर - नाद - विवृद्ध - कोपम्
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

भावार्थ - आपके आश्रित मनुष्यों को, झरते हुए मद जल से जिसके गण्डस्थल मलीन, कलुषित तथा चंचल हो रहे हैं और उन पर उन्मत्त होकर मंडराते हुए काले रंग के भौरे अपने गुंजन से क्रोध बढ़ा रहे हैं ऐसे ऐरावत की तरह उद्दण्ड, सामने आते हुए हाथी को देखकर भी, भय नहीं होता ।

भिन्नेभ - कुम्भ - गलदुज्ज्वल - शोणिताक्त
मुक्ता - फल - प्रकर - भूषित - भूमिभागः
बद्ध - क्रमः क्रम - गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम - युगाचल - संश्रितं ते ॥३९॥

भावार्थ - सिंह, जिसने हाथी का गण्डस्थल विदीर्ण कर, गिरते हुए उज्ज्वल तथा रक्तमिश्रित गजमुक्ताओं से पृथ्वी तल को विभूषित कर दिया है तथा जो छलांग मारने के लिये तैयार है वह भी अपने पैरों के पास आये हुए ऐसे पुरुष पर आक्रमण नहीं करता जिसने आपके चरण युगल रूप पर्वत का आश्रय ले रखा है ।

कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - वह्नि - कल्पं

दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नाम- कीर्तन- जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

भावार्थ - आपकी नाम स्मरणरूपी जलधारा, प्रलयकाल की वायु से उद्धृत, प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित, उज्ज्वल चिंगारियों से युक्त, संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह सामने आती हुई वन की अग्नि को पूर्ण रूप से बुझा देती है ।

रक्तेक्षणं समद- कोकिल- कण्ठ- नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्
आक्रामति क्रम- युगेण निरस्त- शंकः
स्क्वाम- नाग- दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

भावार्थ - जिस पुरुष के हृदय में नाम स्मरणरूपी-नागदमनी नामक औषध मौजूद है, वह पुरुष लाल लाल आँखों वाले, मदयुक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले, क्रोध से उद्धृत और ऊपर को फण उठाये हुए, सामने आते हुए सर्प को निःशंक निर्भय होकर पुष्पमाला की भांति दोनों पैरों से लाँघ जाता है ।

वल्गातुरंग - गज- गर्जित- भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्!
उद्यद्दिवाकर मयूख शिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

भावार्थ - आपके यशोगान से युद्धक्षेत्र में उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से उत्पन्न भयंकर कोलाहल से युक्त पराक्रमी राजाओं की भी सेना, उगते हुए सूर्य किरणों की शिखा से वेधे गये अंधकार की तरह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है ।

कुन्ताग्र- भिन्न- गज- शोणित- वारिवाह
वेगावतार- तरणातुर- योध- भीमे
युद्धे जयं विजित- दुर्जय- जेय- पक्षा -
स्त्वपाद- पंकज- वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

भावार्थ - हे भगवन् ! आपके चरण कमलरूप वन का सहारा लेने वाले पुरुष, भालों की नोकों से छेद गये हाथियों के रक्त रूप जल प्रवाह में पड़े हुए, तथा उसे तैरने के लिये आतुर हुए योद्धाओं से भयानक युद्ध में, दुर्जय शत्रु पक्ष को भी जीत लेते हैं ।

अम्भोनिधौ क्षुभित- भीषण- नक्र- चक्र
पाठीन- पीठ- भय- दोल्वण- वाडवाग्नौ

रंगतरंग - शिखर - स्थित - यान - पात्रा
स्त्रासं विहाय भवतःस्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

भावार्थ - क्षोभ को प्राप्त भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भयभीत करने वाले दवानल से युक्त समुद्र में विकराल लहरों के शिखर पर स्थित है जहाज जिनका, ऐसे मनुष्य आपके स्मरण मात्र से भय छोड़कर पार हो जाते हैं ।

उद्भूत - भीषण - जलोदर - भार - भुग्नाः
शौच्यां दशामुपगताश्चुतजीविताशाः
त्वत्पाद - पंकज - रजोऽमृत - दिग्ध - देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज - तुल्यरूपाः ॥४५॥

भावार्थ - उत्पन्न हुए भीषण जलोदर रोग के भार से झुके हुए, शोभनीय अवस्था को प्राप्त और नहीं रही है जीवन की आशा जिनके, ऐसे मनुष्य आपके चरण कमलों की रज रूप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए कामदेव के समान रूप वाले हो जाते हैं ।

आपाद - कण्ठमुरू - शृङ्खल - वेष्टितांगा
गाढं बृहन्निगाड - कोटि - निघृष्ट - जंघाः
त्वन्नाम - मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत - बन्ध - भया भवन्ति ॥४६॥

भावार्थ - जिनका शरीर पैर से लेकर कण्ठ पर्यन्त बड़ी-बड़ी सांकलों से जकड़ा हुआ है और विकट सघन बेड़ियों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गई हैं ऐसे मनुष्य निरन्तर आपके नाममन्त्र को स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन मुक्त हो जाते हैं ।

मत्तद्विप्रेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि -
संग्राम - वारिधि - महोदर बन्धनोत्थम्
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

भावार्थ - जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसका मत्त हाथी, सिंह, दवानल, युद्ध, समुद्र जलोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न भय मानो डरकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है ।

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्य मया विविध - वर्ण - विचित्रपुष्पाम्
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं

तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

भावार्थ - हे जिनेन्द्र देव! इस जगत् में जो लोग मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक (ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि) गुणों से रची गई नाना अक्षर रूप, रंग बिरंगे फूलों से युक्त आपकी स्तुति रूप माला को कंठाग्र करता है उस उन्नत सम्मान वाले पुरुष को अथवा आचार्य मानतुंग को स्वर्ग मोक्षादि की विभूति अवश्य प्राप्त होती है ॥

भक्तामर-भाषा

(आचार्य मानतुंग कृत, पं कमलकुमारजी शास्त्री द्वारा हिंदी अनुवाद)

तर्ज : आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं
जिसने राग द्वेष कामादिक जीते
फूल तुम्हें भेजा है खत में
कस्में वादे प्यार वफा

भक्त अमर नत मुकुट सु-मणियों, की सु-प्रभा का जो भासक
पाप रूप अति सघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक
भव-जल पतित जनों को जिसने, दिया अदि में अवलंबन
उनके चरण-कमल को करते, सम्यक बारम्बार नमन ॥१॥

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी
उसी इंद्र की स्तुति से है, वंदित जग-जन मन-हारी
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की
जगनामी सुखधामी तद्भव, शिवगामी अभिरामी की ॥२॥

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज
विज्ञजनों से अर्चित है प्रभु! मंदबुद्धि की रखना लाज
जल में पड़े चंद्र मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छ करता गतिमान ॥३॥

हे जिन! चंद्रकांत से बढ़कर, तव गुण विपुल अमल अति श्वेत
कह न सके नर हे गुण-सागर! सुरगुरु के सम बुद्धि समेत ॥
मक्र, नक्र चक्रादि जंतु युत, प्रलय पवन से बढ़ा अपार
कौन भुजाओ से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापर्य विचार ॥
निज शिशु की रक्षार्थ आत्मबल बिना विचारे क्या न मृगी?
जाती है मृगपति के आगे, शिशु-स्नेह में हुई रंगी ॥५॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु में, जग जन मन हर अति अभिराम
उसमें हेतु सरस फल फूलों से, युत हरे-भरे तरु-आम ॥६॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप
पलभर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥
सकल लोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त
प्रातः रवि की उग्रकिरण लख, हो जाता क्षण में प्राणांत ॥७॥

मैं मति-हीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघ-हान
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, संतों का निश्चय से मान ॥
जैसे कमल-पत्र पर जल कण, मोती जैसे आभावान
दिखते हैं फिर छिपते हैं, असली मोती में हैं भगवान ॥८॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष
पुण्य कथा ही किंतु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष ॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर
पेंका करता सूर्य किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

त्रिभुवन तिलक जगत्पति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य
सद्भक्तों जन को निजसम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य
स्वाश्रितजन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या? उन धनिकों की करनी से ॥१०॥

हे अमिनेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम पवित्र
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चंद्र-किरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जलपान
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान् ॥११॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह
थे उतने वैसे अणु जग में, शांत-रागमय निःसंदेह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण रूप
इसीलिए तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप ॥१२॥

कहाँ आपका मुख अतिसुंदर, सुर-नर उरग नेत्र-हारी
जिसने जीत लिए सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चंद्रमा, रंक समान कीट-सा दीन
जो पलाशसा फीका पड़ता, दिन में हो करके छवि-छीन ॥१३॥

तव गुण पूर्ण-शशंक कांतिमय, कला-कलापों से बढ़ के
तीन लोक में व्याप रहे हैं जो कि स्वच्छता में चढ़ के ॥
विचरें चाहें जहाँ कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ॥१४॥

मद की छकी अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार
कर न सकीं आश्चर्य कौनसा, रह जाती है मन को मार ॥
गिरि गिर जाते प्रलय पवन से तो फिर क्या वह मेरु शिखर
हिल सकता है रंचमात्र भी, पाकर झंझावत प्रखर ॥१५॥

धूम न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक ॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्वपर-प्रकाशक जग-विख्यात ॥१६॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आ करके ओट
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥
विश्व-प्रकाशक मुखसरोज तव, अधिक कांतिमय शान्तिस्वरूप
है अपूर्व जग का शशिमंडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ॥१८॥

नाथ आपका मुख जब करता, अंधकार का सत्यानाश
तब दिन में रवि और रात्रि में, चंद्र बिंब का विफल प्रयास ॥
धान्य-खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम
शोर मचाते जल को लादे, हुए घनों से तब क्या काम? ॥१९॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वप्न-प्रकाशक उत्तम ज्ञान
हरिहरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योतिर्मय महारतन का, जो महत्व देखा जाता
क्या वह किरणाकुलित काँच में, अरे कभी लेखा जाता? ॥२०॥

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूँ उत्तम अवलोकन
क्योंकि उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
है परंतु क्या तुम्हें देखने से, हे स्वामिन मुझको लाभ
जन्म-जन्म में न लुभा पाते, कोई यह मेरा अभिताभ ॥२१॥

सौ-सौ नारी सौ-सौ सुत को, जनती रहतीं सौ-सौ ठौर
तुमसे सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ?
तारागण को सर्व दिशाएँ, धरें नहीं कोई खाली
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥२२॥

तुम को परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युंजय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर पथ बतलाता है
किंतु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है ॥२३॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनंत प्रभु, एकानेक तथा योगीश
ब्रह्मा, ईश्वर या जगदीश्वर, विदित योग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश
इत्यादिक नामों कर मानें, संत निरंतर विभो निधीश ॥२४॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिए कहलाते बुद्ध
भुवनत्रय के सुख संवर्द्धक, अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध ॥
मोक्षमार्ग के आद्य प्रवर्तक, अतः विधाता कहें गणेश
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥२५॥

तीन लोक के दुःख हरण, करने वाले हे तुम्हें नमन
भूमंडल के निर्मल-भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर, हो तुमको बारम्बार नमन
भव-सागर के शोषक-पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन ॥२६॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश
क्या आश्चर्य न मिल पाएँ हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश ॥
देव कहे जाने वालों से, अश्रित होकर गर्वित दोष
तेरी ओर न झाँक सके वे, स्वप्नमात्र में हे गुण-दोष ॥२७॥

उन्नत तरु अशोक के अश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला
रूप आपका दिपता सुंदर, तमहर मनहर छवि वाला ॥
वितरण किरण निकर तमहारक, दिनकर घन के अधिक समीप
नीलाचल पर्वत पर होकर, निरांजन करता ले दीप ॥२८॥

मणि-मुक्ता किरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन
कांतिमान कंचन-सा दिपता, जिस पर तव कमनीय वदन ॥
उदयाचल के तुंग शिखर से, मानो सहस्र-रश्मि वाला
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ॥२९॥

दुरते सुंदर चँवर विमल अति, नवल कुंद के पुष्प समान
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान ॥
कनकाचल के तुंग श्रंग से, झर-झर झरता है निर्झर
चंद्र-प्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ॥३०॥

चंद्र-प्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय
दीप्तिमान् शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय॥
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर प्रताप
मानो वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ॥३१॥

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्वदिशाओ में गुंजन
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन ॥
पीट रही है डंका-हो सत् धर्म-राज की नित जय-जय
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय ॥३२॥

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार
गंधोदक की मंद वृष्टि, करते हैं प्रभुदित देव उदार ॥
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी-धीमी मंद पवन
पंक्ति बाँध कर बिखर रहे हों, मानो तेरे दिव्य-वचन ॥३३॥

तीन लोक की सुंदरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे
तन-भामंडल की छवि लखकर, तब सन्मुख शरमा जावे ॥
कोटिसूर्य के प्रताप सम, किंतु नहीं कुछ भी आताप
जिसके द्वारा चंद्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग-प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन
करा रहे हैं, 'सत्यधर्म' के अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥
सुनकर जग के जीव वस्तुतः कर लेते अपना उद्धार
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३५॥

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चंद्रकिरण
विकसित नूतन सरसीरूह सम, है प्रभु! तेरे विमल चरण ॥
रखते जहाँ वहीं रचते हैं, स्वर्णकमल सुरदिव्य ललाम
अभिनंदन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम ॥३६॥

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौंदर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती
वैसी ही क्या अतुल कांति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

लोल कपोलों से झरती है, जहाँ निरंतर मद की धार
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौरे गुंजार ॥
क्रोधासक्त हुआ, यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

क्षत-विक्षत कर दिए गजों के, जिसने उन्नत गंडस्थल
कांतिमान् गज-मुक्ताओ से, पाट दिया हो अवनीतल ॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट
ऐसा सिंह छलांगे भर कर, क्या उस पर कर सकता चोट ॥३९॥

प्रलय काल की पवन उठाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार
प्रभु के नाम-मंत्र जल से वह, बुझ जाती है उस ही बार ॥४०॥

कंठ कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटें नाग महा विकराल ॥
नाम रूप तव अहि- दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय
पग रखकर निःशंक नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर
शूरवीर नृप की सेनाएँ, ख करती हों चारों ओर
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुंदर तेरा नाम
सूर्य-तिमिर सम शूर-सैन्य का, कर देता है काम-तमाम ॥४२॥

रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार
वीर लड़ाकू जहाँ अतुर हैं, रुधिर-नदी करने को पार ॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहाँ, लख अरिसेना दुर्जयरूप
तव पादारविंद पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छमगर एवं घड़ियाल
तूफ़ाँ लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उताल ॥
भँवर-चक्र में फँसी हुई हो, बीचों बीच अगर जलयान
छुटकारा पा जाते दुःख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन
स्वास्थ्यलाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुंदर तन ॥४५॥

लोह-श्रंखला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों से अधीर जो हैं अतिरस्त ॥
भगवन ऐसे बंदीजन भी, तेरे नाम-मंत्र की जाप
जप कर गत-बंधन हो जाते, क्षण भर में अपने ही आप ॥४६॥

वृषभेश्वर के गुण के स्तवन का, करते निशिदिन जो चिंतन
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन ॥
कुंजर-समर सिंह-शोक-रुज, अहि दावानल कारागर
इनके अतिभीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार ॥४७॥

हे प्रभु! तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य ललाम
गूँथी विविध वर्ण सुमनों की, गुण-माला सुंदर अभिराम ॥
श्रद्धा सहित भविकजन जो भी कंठाभरण बनाते हैं
मानतुंग-सम निश्चित सुंदर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

भक्तामर-हेमराजजी

(दोहा)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥

(चौपाई)

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करें, अन्तर पाप-तिमिर सब हरेँ
जिनपद वंदों मन-वच-काय, भव-जल-पतित उधरन-सहाय ॥१॥

श्रुत पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुण-माला ॥२॥

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन ।
जल-प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै ॥३॥

गुण-समुद्र तुम गुण अविकार, कहत न सुर-गुरु पावें पार
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज-बलवन्त ॥४॥

सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव वश कुछ नहि डरूँ
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव॥६॥

तुम जस जंपत जन छिनमाहि, जनम-जनम के पाप नशाहि
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत नील निशा-तम-जाल॥७॥

तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार
ज्यों जल-कमल-पत्र पै परै, मुक्ताफल की द्युति विस्तै॥८॥

तुम गुन-महिमा हत-दुःख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम॥९॥

नहि अचम्भ जो होहि तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत संत
जो अधीन को आप समान, करै न सो निदित धनवान॥१०॥

इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सोय
को करि क्षीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान॥११॥

प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम कीन
हैं तितने ही ते परमाणु यातैं तुम सम रूप न आनु॥१२॥

कहूँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार
कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक॥१३॥

पूरन-चन्द्र-ज्योति छबिवंत, तुम गुन तीन जगत लंगंत
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार॥१४॥

जो सुर-तियविभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचंभ
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर॥१५॥

धूम रहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह
वात-गम्य नाहीं परचण्ड अपर दीप तुम बलो अखण्ड॥१६॥

छिपहु न लुपहु राहुकी छाहि, जग-परकाशक हो छिनमाहि
घन अनवर्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार॥१७॥

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह
तुम मुख-कमल अपूरब चंद्र, जगत विकासी जोति अमन्द॥१८॥

निशदिन शशि रवि को नहि काम, तुम मुखचंद्र हरै तम घाम
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज॥१९॥

जो सुबोध सोहै तुममाहि, हरि नर आदिकमें सो नाहि
जो द्रुति महा-रतन में होय, काच-खण्ड पावै नहि सोय॥२०॥

(नाराच छन्द)

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया॥
कछु न तोहि देख के जहाँ तुही विशेखिया
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया॥२१॥

अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं॥
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै॥२२॥

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो
कहैं मुनीश अन्धकार-नाश को सुभान हो॥
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके

न और मोहि मोखपंथ देह तोहि टालके॥२३॥

अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो॥२४॥

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं॥
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं॥२५॥

नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो
नमों करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो॥
नमों करूँ भवाब्धि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो
नमों करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो॥२६॥

(चौपाई)

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय॥२७॥

तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित हे अविकार
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत॥२८॥

सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार॥२९॥

कुन्द-पहुप-सित-चमर दुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरै नीर उमगांति॥३०॥

ऊँचे रहें सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसौं छबि लहैं॥३१॥

दुन्दुभिशब्द गहर गम्भीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करैं, मानूँ जय-जय रव उच्चरै॥३२॥

मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पहुप सुवृष्ट
देव करैं विकसित दल सार, मानौं द्विज-पंकति अवतार॥३३॥

तुम तन-भामण्डल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत है मन्द
कोटिशंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय॥३४॥

स्वर्गमोख-मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध॥३५॥

(दोहा)

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहि
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहि॥३६॥

ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहि कोय
सूरज में जो जोत है, नहि तारा-गण होय॥३७॥

(षट्पद)

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारै
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ॥
काल-वरन विकराल कालवत सनमुख आवैं
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावैं ॥
देखि गयन्द न भय करै, तुम पद-महिमा छीन
विपति रहित सम्पति सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥३८॥

अति मद-मत्त-गयन्द कुम्भ-थल नखन विदारै
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ॥
बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ॥
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर अयो होय
शरण गये तुम चरण की, बाधा करै न सोय ॥३९॥

प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटन्तर
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरन्तर ॥
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों
तडतडाट दव-अनल जोर चहुँ दिशा उठानो ॥
सो इक छिन में उपशमें, नाम-नीर तुम लेत
होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥४०॥

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलन्ता ॥
फण को ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया
तब जन होय निशंक देख फेणपति को आया ॥
जो चाँपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगाए
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार ॥४१॥

जिस रनमाहि भयानक ख कर रहे तुरंगम
घन-से गज गरजाहि मत्त मानो गिरि जंगम ॥
अति कोलाहल माहि बात जहाँ नाहि सुनीजै
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहि पलाय
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥४२॥

मारै जहाँ गयन्द कुम्भ हथियार विदारै
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जल-सम विस्तारै ॥

होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे
तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरें ॥
दुर्जय अरिकुल जीत के, जय पावैं निकलंक
तुम पद-पंकज मन बसै, ते नर सदा निशंक ॥४३॥

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै
पार न पावैं जास थाह नहि लहिये जाकी
गरजै अतिगम्भीर लहर की गिनती न ताकी ॥
सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहि
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहि ॥४४॥

महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं ॥
सोचत रहैं उदास नाहि जीवन की आशा
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि - निवासा ॥
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज-अंग
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होय अंग ॥४५॥

पाँव कंठतैं जकर बाँध साँकल अति भारी
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहि जिन जाँघ विदारी ॥
भूख प्यास चिंता शरीर दुःखजे विललाने
सरन नाहि जिन कोय भूप के बन्दीखाने ॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहि
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहि ॥४६॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल ॥
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै
तुम सुमरत छिनमाहि अभय थानक परकाशै ॥

इस अपार संसार में, शरन नाहि प्रभु कोय
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय ॥४७॥

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी ॥
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं
'मानतुंग' ते निजाधीन-शिव-लछमी पावैं ॥
भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत ॥४८॥

भक्तामर-मुनि-श्रीरसागर

शत इन्द्रनि के मुकुट जु नये, पाप विनाशक जग के भये
ऐसे चरण ऋषभ के नाय, जो भवसागर तिरन सहाय ॥१॥

तत्व ज्ञान से जो थुति भरी, बुद्धि चतुर सुरपति सो करी
ते पद सब जन के मन हरें, सो थुती हम उस जिन की करें ॥२॥

ज्यों नभ में शशि को लख बाल, पकड़न चाहें होय खुश्याल
त्यों मैं थुति वरणों मति हीन, जिसमें गणधर थके प्रवीण ॥३॥

हे गुण निधि तुम गुण शशि कान्त, कहि न सके ऋषि सुर लौकांत
प्रलय पवन उद्धत दधि नीर, तर सकता को भुजबल वीर ॥४॥

मै मति हीन रंच नहीं डरों, भक्ति भाव वश तुम थुति करों
तुमहि कहो जिन निज सुत काज, मृग न लड़ें मृगपति से गाज ॥५॥

अल्प शास्त्र का ज्ञात जान, हँसी करेंगे बहु श्रुतवान
पर मो बुद्धि करे वाचाल, कोयल को ज्यों मधु ऋतु काल ॥६॥

यह थुति अल्प रचित भगवान्, तुम प्रसाद हो निपुण सामान
ज्यों जल कमल पत्र पे परे, मोती वत् सो शोभा धरे ॥७॥

तुम थुति गावत ही क्षण माहि -जन्म जन्म के पाप नशाहि
ज्यों दिनकर के उदय वशात्, अंधकार तत्काल नशात्॥८॥

तुम निर्दोष रहो थुति दुर, कथा मात्र से ही अधचूर
ज्यों रवि दूर किरण के जोर, कमल प्रफुल्लित सरवर और ॥९॥

क्य अचरज जो तुम सम बनें, कारण निश दिन तुम गुण भनें
ज्यों निरधन धनपति को पाय, धनी होए तो कहे बड़ाय ॥१०॥

शांति रूप तुम मूरत धनी, क्य अद्भुत परमाणु बनी
वे परमाणु रहे ना शेष, इससे तुम सम दुतिय ना भेष ॥११॥

तुम मुख उपमा सब जग वरे,सुर नर नाग नयन मन हरे
तुम सम उपमा चन्द न रखे, वह दोषी दिन फीका दिखे ॥१२॥

सब शशि मंडल मे शशि कला,त्यों तुम गुण सब जग मे फला
जो ऐसे के आश्रित होय, उस विचरत को रोके कोय ॥१३॥

देवांगना न मन को हरें, क्य अचरज हम इसमें करें
प्रलय पवन से अचला चले, किन्तु मेरु गिरी रंच न हिलें ॥१४॥

तेल न बत्ती धुआं न पास, जगमग जगमग जगत प्रकाश
प्रलय पवन से बुझे न खंड, ज्ञान दीप तुम जले अखंड ॥१५॥

राहू ग्रसे न हो तू अस्त, युगपत भाषे जगत समस्त
तुझ प्रभाव नहीं बदल छिपे, तू रवि से अधिकारी दिपे ॥१६॥

ताप विनाशक तू नित दिपे, राहू ग्रसे न बदल छिपे
तुम मुख सुन्दर ज्योति अमंद, शांति विकासी अद्भूत चंद ॥१७॥

क्य दिन रवि क्य निश शशि होय, जब तेरा मुख जग तम खोय
जब पक जाय धान्य सब ठाम, फिर घनघोर घटा बे काम ॥१८॥

जो सु ज्ञान सोहे तुम माहि, हरि हरादि पुरुषों में नाहि
सूर्यकांत में जो थुति कढ़े, सो न कांच मे रवि से बढे ॥१९॥

हरि हरादि उत्तम इस रीति, उनको लख तुमसे है प्रीति
तुमरी रति से फल यह हमें, जो न भावांतर पर मे रमें ॥२०॥

तुम को इकटक लखे जु कोय, अवर विषें रति कैसे होय
को कर पान मधुर जल क्षीर, फिर क्यों पीवे खारा नीर ॥२१॥

सब नारी जननी सुत घने, पर तुमसे सुत नहीं जने
सर्व दिशा से तारे मान, किन्तु पूर्व दिश उगें भान ॥२२॥

परम पुरुष जाने मुनि तुमें, तम से परे तेज रवि समें
तुम्हे पाय सब मृत्यू हरे, मोक्ष मार्ग इससे नहीं परें ॥२३॥

तुम अचिन्त्य व्यापक ध्रुव एक, मुनिवर विदित असंख्य अनेक
ब्रह्मा ईश्वर आद्य अनंत, अमल ज्ञान मय कहते संत ॥२४॥

तुम सुबुद्धी से बुद्ध प्रसिद्ध, अघ संहारक शंकर सिद्ध
धर्म प्रवर्तक ब्रह्मा आप, जग पालक नारायण थाप ॥२५॥

तुम्हे नमों हे पर दुख हार, तुम्हें नमों जग भूषण सार
तुम्हे नमो जग नायक धार, तुम्हे नमों भव शोषण हार ॥२६॥

क्य अचरज सब गुण तुम पास, जबकि न उनको अन्य निवास
दोष गर्व बहु थल को पाय, सपने भी तुम पास न आय ॥२७॥

तरु अशोक ऊँचे के तीर, तुमरो सोहे विमल शरीर
ज्यों तम हर अरु तेजस खास, रवि दीखे घन घट के पास ॥२८॥

रतन जड़ीत सिंघासन ऊपर, तुम तन सोहे कनक स्वरूप
पूरब दिश उदयाचल पास, सोहे किरण लता रवि खास ॥२९॥

कुंद पुष्प सम चौसठ चमर, तुम तन ऊपर ढोंरें अमर
शशि सम श्वेत बहे जल धार, ऊँचे कनक मेरु दिश चार ॥३०॥

शशि सम तीन छत्र सिर आप, जो रोके रवि का आताप
मोती झालर शोभे घना, जिससे प्रकटे ईश्वर पना ॥३१॥

दश दिश मे धुनि उच्च अभंग, जग जन को सूचक शुभ संग
तुमरी बोलें जय जय कार, नभ मे यस को बजे नकार ॥३२॥

पारी जात सुन्दर मंदार, वर्षे फूल अनेक प्रकार
मंद पवन गंधोदक झिरें, मानों तुम बच नभ से खिरें ॥३३॥

तुम भामंडल तेज अपार, जीते सब जग तेजस धार
कोटि सूर्य से बढ़ कर कांति लज्जित भई चन्द्र की शांति ॥३४॥

स्वर्ग मोक्ष पथ सूचक शुद्ध, तत्व कथन में सबको बुद्ध
प्रकट अर्थ तुम धुनि से होय, सब भाषा गुण परजय जोय ॥३५॥

फूले कनक कमल की ज्योति , चहुँ ओर त्यों नख द्युति होति
ऐसे चरण धरो तुम जहाँ, झटपट कमल रचें सुर तहां ॥३६॥

जैसा विभव तुम्हारे लार, वैसा विभव न कोई धार
जैसे तम हर सूर्य प्रकाश, तैसा अन्य न ज्योतिष पास ॥३७॥

हो उन्मत्त मद झरे अपार, जो क्रोधित सुन अलि गुंजार
ऐसा सुर गज सन्मुख आय, भय न करे तुम अश्रित पाय ॥३८॥

खेंचे कुम्भस्थल गज मत्त, भूमें बिखरे मोती रत्त
ऐसा सिंह न पकड़े खाय, जो तैरे पद अश्रित आय ॥३९॥

प्रलय पवन सम अग्नि हले, तड़तड़ाय दावानल जले
जगदाहक सन सन्मुख आय, तब तुम थुति जल देई बुझाय ॥४०॥

लाल नेत्र अरु काला अंग, धाय उच्च फण कुपति भुजंग
उसको लांघे निर्भय राम, जिस पर अहिऔषध तुम नाम ॥४१॥

हय उछलें गज गरजें घोर, सेना चढ़ी नृपति के जोर
तुम कीर्तन से शीघ्र पलाय, ज्यों रवि उगत तम विनशाय ॥४२॥

भाले छिदें बहें गज रक्त, चल फिर सैकै न जोधा मत्त
तब रिपु प्रबल न जीता जाये, सो जय तुम पद आश्रय पाय ॥४३॥

दधि मे मगर मच्छ उद्दण्ड-बद्वानल या पवन प्रचंड
अथवा नाव भंवर मे आय, तब तुम सुमिरत विघ्न नाशाय ॥४४॥

घोर जलोदर पीड़ा सहे, आयु न आशा चिन्ता रहे
जब तन लेपे तुम पद धूल, कामदेव सम होय समूल ॥४५॥

नख शिख अंग सांकलें ठिलीं, दृढ़ बेडिनि सों टांगें छिलीं
जब तुम नाम मंत्र सुमिराय, बंधन रहित शीघ्र हो जाय ॥४६॥

गज केहरि दावानल नाग, रण दधि रोग बन्ध बहु लाग
ये भय भजें स्वयं भय खाय, जब इनको तुम व्रतधर पाय ॥४७॥

तुम स्तोत्र जिनेश महान, भक्ति विवश कछु रचा अजान
पर जो पाठ पढ़े मन लाय, 'मानतुंग' अरु लक्ष्मी पाय ॥४८॥

एकीभावस्तोत्र (आ वादीराज कृत)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति ॥
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्-
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतु ॥१॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र! जबकि आपकी समीचीन भक्ति के द्वारा चिरपरिचित और अत्यन्त दुःखदायी एवं आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिले हुए कर्मबन्धन भी दूर किये जाते हैं तब दूसरा ऐसा कौन सा संताप का कारण है जो कि उस भक्ति के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता अर्थात् दुःख के सभी कारण नष्ट किये जा सकते हैं

ज्येतीरूपं दुरित-निवहध्वान्त-विध्वंस-हेतुं,
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः
चेतोवासे भवसि च मम स्फुरद्मुद्रासमान-
स्तस्मिन्नाहं कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥२॥

अर्थ : हे नाथ जब तक आपको, अतिशय बुद्धि के धारक गणधरादि देवों ने, पापरूपी अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान कहा है और आप मेरे मन-मंदिर में अच्छी तरह से प्रकाशमान भी हो रहे हैं, तब उसमें पापरूपी अंधकार कैसे ठहर सकता है? अर्थात् जो आपको अपने हृदय में धारण करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं

आनन्दाश्रु-स्रपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढ-मनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम्
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहलम्बीक-मध्यान्-
निष्क्रस्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः ॥३॥

अर्थ : जिस प्रकार समीचीन मंत्रों की सामर्थ्य से वागी के मध्य भाग से साँप बाहर निकाल दिये जाते हैं ठीक उसी प्रकार जिनेन्द्र के स्तवन रूप मंत्रों से, स्तवन-पूजन करने वाले भव्य पुरुषों की विषम विषयरूप व्याधियाँ भी दूर कर दी जाती हैं। अर्थात् जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रद्धा से सम्पन्न होकर एकाग्रचित्त से जिनेन्द्र भगवान का पवित्र स्तवन करता है उसके पुरातन विषम रोग भी दूर हो जाते हैं और उसका शरीर निरोग बन जाता है

प्रागेवेह त्रिदिव - भवनादेष्टता भव्यपुण्यात्

पृथ्वी - चंद्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्
ध्यान - द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त - गेहं प्रविष्ट
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥४॥

अर्थ : जब कि स्वर्गलोक से माता के गर्भ में आने के छह महीने पहले ही आपने इस पृथ्वीमण्डल को सुवर्णमय बना दिया, तो फिर ध्यान के द्वारा मेरे मनोहर अन्तःकरणरूप मंदिर में प्रविष्ट हुए आप कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को यदि सुवर्णमय बना दें तो इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कुछ नहीं

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु
स्त्वय्येवासौ सकल - विषया शक्तिरप्रत्यनीका
भक्ति - स्फुरितां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-
शय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव तत : क्लेश - यूथं सहेथाः ॥५॥

अर्थ : हे नाथ! आप संसारी जीवों के अकारण बंधु हैं और आपकी सकल पदार्थ विषयक यह अपूर्व एवं अनन्तशक्ति प्रतिपक्षी कर्मों के प्रतिघात से रहित है, क्योंकि वह कर्म के क्षय से उत्पन्न हुई है। फिर आप चिरकाल तक हमारे पवित्र मन-मंदिर में निवास करते हुए भी क्या दुःखों को नाश नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य ही करेंगे। जो भद्र मानव आपका भक्तिपूर्वक निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन करता है उसके दुःख दूर होना तो सहज ही है किन्तु उसके जटिल कर्मों का बंधन भी ढीला पड़ कर नष्ट हो जाता है और आत्मा विकसित होता हुआ परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है।

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नय -कथा स्फुर-पीयूष-वापी
तस्या मध्ये हिमक्वहिम-व्यूह-शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः ॥६॥

अर्थ : हे स्वामिन् ! मुझे इस संसाररूप विषम अटवी में भ्रमण करते हुए और दुःखों को सहते हुए अनन्तकाल बीत गया है । अब मुझे बड़े भारी भाग्योदय से यह आपकी स्याद्वादरूप अमृत-रस से भरी हुई वापिका बावड़ी प्राप्त हुई है जो चन्द्रमा और बर्फ से भी अत्यन्त शीतल है । ऐसी वापिका में उन्मज्जन करते हुए मेरे क्या थोड़े से दुःख सन्ताप दूर न होंगे? किन्तु अवश्य ही दूर होंगे

पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः
सर्वाङ्गिण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो , मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यत्र मामभ्युपैति ॥७॥

अर्थ : सकल परमात्मा अरहंत जब जीवनमुक्तरूप सयोगकेवली अवस्था में विहार करते हैं तब उनके विहार से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं और देवगण उनके पवित्र चरणों के नीचे कमलों की रचना कर दिया करते हैं और वे कमल जब जिनेन्द्र देव के चरणों के स्पर्श से सुवर्ण सी कान्ति वाले सुगंधित एवं लक्ष्मी के निवास बन जाते हैं, तब मेरा मन आपको सर्वाङ्ग रूप से स्पर्श कर रहा है अर्थात् मेरे मन मंदिर में चैतन्य जिनप्रतिमा का सर्वाङ्गरूप से स्पर्श हो रहा है अतएव मुझे कल्याणकों का प्राप्त होना उचित ही है। जो भव्यप्राणी जिनेन्द्र भगवान का निष्कण्ठ रूप से भक्तिपूर्वक स्मरण, चिन्तन एवं ध्यान करता है उसे सर्व सुख प्राप्त होते ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं
 कर्मरण्यात्पुरुषमसमानन्दधामप्रविष्टम्
 त्वां दुर्वारस्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
 वृषाकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति॥८॥

अर्थ : हे भगवन्! कर्मरूपी वन से निकलकर आपने अनुपम अनंत सुखस्वरूप आनन्दधाम को प्राप्त किया है तथा आप दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले हैं। आपको देखने वाले और भक्तिरूपी पात्र से आपके अमृतरूपी वचनों को पाने वाले भव्यपुरुषों को फिर क्रूर आकार वाले रोग रूपमयी काँट कैसे पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-
 र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः
 दृष्टिं प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
 प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति -हेतुः॥९॥

अर्थ : पत्थर का बना हुआ मानस्तंभ भी दूसरे साधारण पत्थरों के समान ही है। रत्नमय होना उसकी कोई विशेषता नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसके समान और भी रत्न होते हैं परन्तु उनमें मान हरण करने की शक्ति नहीं होती, इस कारण से मानस्तंभ में मनुष्यों के मान हरण करने की शक्ति का अस्तित्व मालूम नहीं होता। अतएव यह स्पष्ट है कि उसकी ऐसी शक्ति में आपकी समीपता ही कारण है। यदि आपकी समीपता न होती तो गौतम जैसे महामानी विद्वानों का अभिमान कैसे दूर होता? इस कारण उस रत्नमयी मानस्तंभ में यह अपूर्वशक्ति आपके प्रसाद से ही प्राप्त हुई जान पड़ती है

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही,
 सद्यः पुंसां निरवधिरुजा धूलिबन्धं धुनोति
 ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्ट-
 स्तस्याशक्यं क इह भुवने देव! लोकोपकारः॥१०॥

अर्थ : हे नाथ! जबकि आपके शरीर के पास से बहने वाली वायु भी, लोगों के तरह-तरह के रोग दूर कर देती है, तब आप जिस भव्यपुरुष के हृदय में विराजमान हो जाते हैं वह संसार के प्राणियों का कौन सा उपकार नहीं कर सकता-अर्थात् लोक की सच्ची-सजीव सेवा करना अथवा आहार पान, औषधादि के द्वारा दीन दुःखियों की सेवा कर उन्हें दुःख से उन्मुक्त करना तो सरल है परन्तु जब कोई भद्रमानव जिनेन्द्र भगवान को अपने हृदयवर्ती बना लेता है अर्थात् चैतन्य जिनप्रतिमा को अपने हृदय-कमल में अंकित कर लेता है और स्तुति पूजा-ध्यानादि के द्वारा उनके पवित्र गुणों का स्तवन-पूजन वंदनादि किया करता है एवं उनके नक्शे कदम पर चलकर तदनुकूल प्रवृत्ति करने लगता है तब उस भव्य पुरुष के अनादिकालीन कर्मबंधन भी उसी तरह शिथिल होने लगते हैं जिस तरह चन्दन के वृक्ष पर मोर के अंगे पर सर्पों के बंधन ढीले पड़ कर नीचे खिसकने लगते हैं

जानासि त्वं मम भवे-भवे यच्च यादृक्च दुःखं,
 जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि
 त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्य,
 यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम्॥११॥

अर्थ : हे भगवन्! इस चतुर्गति रूप संसार में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए मैंने जो घोर दुःख भोगे हैं और भोग रहा हूँ, जिनका स्मरण करना भी शस्त्र घात के समान दुःखदाई है। उनको आप अच्छी तरह से जानते ही हैं। आप सिर्फ जानते ही नहीं हैं किन्तु सबके अकारण बंधु और दयालु हैं। इसीलिए मैं भक्तिपूर्वक आपकी शरण में आया हूँ। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए? यह आप ही समझ सकते हैं। मैंने तो अपनी दशा आपके सामने प्रकट करा दी है

प्रापद्द्वैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टै,
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम्
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री-प्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वक्त्रमस्वस्वक्रम्॥१२॥

अर्थ : जबकि एक पापी कुत्ता भी मृत्यु के समय (न कि जीवन भर) जीवन्धर कुमार द्वारा बताये हुए मंत्राऽक्षरों के ध्यान से यक्षों का स्वामी यक्षेन्द्र हो सकता है तब निर्मल मणियों के द्वारा आपके नमस्कारमंत्र का ध्यान करने वाला भद्र मानव यदि इन्द्र की विभूति को प्राप्त कर ले तो इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कुछ नहीं है

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्
शक्येद्भाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम्॥१३॥

अर्थ : विशुद्धज्ञान और निर्मल चारित्र के रहते हुए भी यदि जिनेन्द्र को भक्तिमय अथवा सम्यग्दर्शनरूप-कुंजी नहीं है तो फिर महा मिथ्यात्वरूप मुद्रा से अंकित मोक्षमंदिर का द्वार कैसे खोला जा सकता है? अर्थात् भक्तिरूपी वन्चिका के बिना मुक्तिद्वार का खुलना नितान्त कठिन है परन्तु जिस भद्रमानव के पास जिनेन्द्र की भक्तिरूपी अथवा सम्यग्दर्शनरूपी कुंजी है, वह बहुत जल्दी ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या कहलाते हैं अतः मुक्ति के इच्छुक पुरुषों को सबसे पहले सम्यग्दर्शन का प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है

प्रच्छन्न खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात्,
पन्था मुत्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तेरगाधैः
तस्वस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भक्द्धारती रत्न-दीपः॥१४॥

अर्थ : हे देव! मुक्ति का मार्ग मिथ्यात्वरूप अज्ञान अंधकार से व्याप्त है, आच्छादित है और अगाध दुःखरूप गड्ढों से विषम है, दुष्प्रवेश है। ऐसा होने पर भी यदि सप्ततत्त्वों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अथवा सप्त तत्त्वों के द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाला-आपकी पवित्र दिव्यध्वनिरूप वाणीरूपी दीपक का प्रकाश अग्रे-अग्रे नहीं होता, तो ऐसा कौन पुरुष है जो आपकी वाणीरूप दीपक के प्रकाश के बिना ही उस कंटकाकीर्ण विषम मार्ग से सुखपूर्वक गमन कर सकता है? और अपने इष्टस्थान को सुगमता से प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है अर्थात् कोई नहीं। अस्तु: हे नाथ! आपकी पवित्र वाणीरूपी दीपक के प्रकाश से ही संसारी जीव हेयोपादेयरूप तत्त्वों का परिज्ञान करते हैं और उसी के अनुकूल आचरण कर कर्मबंधन से छूटने का उपाय करते हैं। अर्थात् मोक्ष के साधक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र को धारण करते हैं उन्हें अपने जीवन में उतारते हैं साथ ही रत्नत्रय की पूर्णता एवं परम प्रकर्षता से ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों का समूल नाशकर कृत-कृत्य अवस्था को प्राप्त करते हैं और अनन्तकाल तक उस आत्मोत्थ अव्याबाध निराकुल सुख का अनुभव करते रहते हैं। यह सब वीतराग भगवान की उस दिव्यवाणी का ही माहात्म्य एवं प्रभाव है

आत्म-ज्योतिर्निधिरनवधि-द्रैष्टुरानन्द-हेतुः,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्य परेषाम्
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भक्द्भक्तिभाज,
स्तोत्रैर्बन्ध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः॥१५॥

अर्थ : जिस प्रकार पृथ्वी में गड़े हुए धन को कुदाल से कठोर भूमि को खोदकर निकाल लेते हैं, ठीक उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप पुद्गल पिण्डों से आच्छादित अपनी ज्ञानादिरूप आत्मसम्पदा को आपके पवित्र स्तवनरूप कुदाल से

कर्मबंधनरूप अतिशय कठोर भूमि को खोदकर निकाल लेते हैं परन्तु मिथ्यादृष्टियों को वह नहीं प्राप्त होती

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरे-रायता चामृताब्धे,
या देव! त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद्भवति किमियं देव! सन्देह-भूमिः॥१६॥

अर्थ : हे नाथ! स्याद्वादनयरूप हिमालय से निकली और मोक्षरूपी समुद्र तक लम्बी यह आपकी भक्तिरूपी गंगा मुझे बड़े भारी भाग्योदय से प्राप्त हुई है, गंगा में स्नान करने से जिस तरह शरीर का बाह्य मैल धुल जाता है और वह स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आपकी भक्तिरूपी गंगा में स्नान करने से, उसमें गोता लगाने से यदि मेरे अन्तःकरण की पापरूप कालिका धुलकर मेरा मन पवित्र-राग-द्वेषादि विभावभावों से रहित निर्विकार हो जाये, तो इसमें क्या संदेह है? अर्थात् कुछ नहीं है

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुखं त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वप्रसादाद् भवन्ति॥१७॥

अर्थ : हे नाथ! आपके पवित्र ज्ञानादि अनंत गुणों का ध्यान एवं चिन्तन करते-करते जो परमात्मा है सो मैं हूँ सो परमात्मा है जब ऐसी निर्विकल्पात्मक अभेद बुद्धि उत्पन्न हो जाती है सो यद्यपि यह मिथ्या है तो भी निश्चल आनन्द को प्रकट करती है। बहुत कहने से क्या, सदोषी पतितात्मा पुरुष भी आपके सामीप्य एवं प्रसाद से अभिमतफल को प्राप्त करते ही हैं

मिथ्यावादं मल-मपनुदन्सप्तभङ्गी-तरङ्गैः
वर्गाम्भोधि-र्भुवन-मखिलं देव! पर्येति यस्ते
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्त सुचिर-ममृतासेवया तृप्नुवन्ति॥१८॥

अर्थ : हे नाथ! सप्तभंगरूपतरंगों से अथवा अनेकांत के माहात्म्य से शरीरादिक बाह्य पदार्थों में आत्मत्व बुद्धिरूपी जीव के विपरीताभिनिवेश को दूर करने वाले आपके वचन समुद्र का जो भव्य प्राणी निरन्तर अभ्यास मनन एवं परिशीलन करता है अर्थात् आगमोक्त विधि से अभ्यास कर चित्त की निश्चलत्वरूप परम समाधि को प्राप्त करता है वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है और अनन्तकाल तक यहाँ सुख में मग्न रहता है। यह सब आपके वचन समुद्र का ही माहात्म्य है

आहार्येभ्य स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्य,
शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्य
सर्वङ्गिषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्य परेषां,
तत्त्वि भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥१९॥

अर्थ : आचार्य वादिराज ने इस श्लोक में सच्चे देव का यथार्थ स्वरूप दिखलाते हुए जिनेन्द्र देव की अन्य हरिहरादिक देवों से सर्वोत्कृष्टता प्रकट की है, उन्हें ही निर्दोष और वास्तविक देव बताया है, क्योंकि संसार में बहुत से जीव अपनी अज्ञातवश देवत्वविहीन पुरुषों में भी देव की कल्पना कर लेते हैं। जिनका चित्त राग-द्वेष से मलिन है, दूषित है-जो स्वभाव से ही कांतिहीन एवं अमनोज्ञ है और अनेक प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित हैं-अथवा बहुमूल्य वस्त्रभूषण और स्त्री, गदा आदि अस्त्रों (हथियारों) से जिनकी पहचान होती है, जो नाना प्रकार के वस्त्रभूषणों से शरीर को अलंकृत करने की इच्छा करते हैं, जिन्हें शत्रुओं से सदा भय बना रहता है अतएव गदा-त्रिशूल आदि अस्त्रों को धारण किए हुए हैं, जैनधर्म ऐसे भेषी रागी-द्वेषी पुरुषों को देव नहीं कहता और न उनमें देवत्व का वास्तविक लक्षण ही घटित होता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान् स्वभाव से ही मनोज्ञ हैं-कान्तिवान् हैं अतः वे कृत्रिम वस्त्रभूषणों से शरीर को अलंकृत नहीं करते हैं उन्होंने देह भोगों का खुशी-खुशी त्याग किया है और मोह शत्रु पर विजय

प्राप्त की है। इसके सिवाय उन्हें किसी शत्रु आदि का कोई भय नहीं है और न संसार में उनका कोई शत्रु-मित्र ही है, वे सबको समानदृष्टि से देखते हैं, चाहे पूजक और निन्दक कोई भी क्यों न हो, किसी से भी उनका राग-द्वेष नहीं है। उनके आत्मतेज या तपश्चरण विशेष की सामर्थ्य से कट्टर बैरी भी अपने बैर-विरोध को छोड़कर शान्त हो जाते हैं अतः ऐसे पूर्ण अहिंसक, परम वीतराग और क्षीणमोही परमात्मा को सुन्दर वस्त्रभूषणों और अस्त्रशस्त्रों से क्या प्रयोजन हो सकता है? अर्थात् कुछ नहीं

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तथा श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यता-मातनोति
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥२०॥

अर्थ : हे नाथ! इन्द्र आपकी सेवा, वन्दना, पूजा, स्तुति आदि करता है, केवल इसी से आपकी कोई महत्ता और प्रशंसा नहीं हो सकती है, क्योंकि इन्द्र तो आपकी समीचीन भक्ति एवं स्तुति, पूजादि से महान पुण्य का संचय करता है और वह भक्ति उसके लिए भवलयकरी संसार का नाश करने वाली होती है। इसी से वह एक भवावतारी हो जाता है अर्थात् मनुष्य का एक भव धारण करके ही मोक्ष चला जाता है परन्तु आप संसार-समुद्र से स्वयं तरने और तारने वाले हैं और मुक्तिरूपी लक्ष्मी के अधिपति हैं तथा संसार के समस्त जीवों के अकारण बंधु हैं-उन्हें संसार के दुःखों से छुटाने वाले हैं और हेयोपादेयरूप तत्त्वों का परिज्ञान कराते हैं इसलिए आप उनके प्रभु हैं, आपने जिस उच्च आदर्श को प्राप्त किया है वही संसारी जीवों के द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं, इन्हीं सब कारणों से आपकी महत्ता एवं प्रभुता संसार में प्रकट होती है

वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्य,
स्तुत्युद्गारा कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्ति-पीयूष-पुष्ट-
स्ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति॥२१॥

अर्थ : हे नाथ! हमारे वचनों की प्रवृत्ति अन्य अल्पज्ञ जीवों के समान ही है परन्तु आप राग-द्वेषादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुके हैं अतः आपकी तुलना अन्य अल्पज्ञ संसारी जीवों से नहीं की जा सकती है, क्योंकि आप सच्चिदानन्द, परमब्रह्म परमात्मा हैं। यद्यपि हमारे स्तुतिरूपी उद्गार आपके समीप तक नहीं पहुँचते हैं, तो भी आपकी समीचीन भक्तिरूप-अमृत से पुष्ट हुए ये स्तुतिरूप उद्गार भव्य जीवों के लिए कल्पवृक्ष के समान इच्छित फल के देने वाले होते हैं

कोपावेशो न तव न तव कापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्त्व हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्
अज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैर-हारी,
कैवं भूतं भुवन-तिलकं प्राभवं त्वत्परेषु॥२२॥

अर्थ : हे नाथ! आपको न किसी से राग और न द्वेष, आप न किसी पर प्रसन्न ही होते हैं और न किसी को अपने क्रोध का भाजन ही बनाते हैं, क्योंकि आप परम वीतरागी हैं, राग-द्वेषादि के अभावस्वरूप परम उपेक्षाभाव को अंगीकार किए हुए हैं परन्तु फिर भी, आपकी अज्ञा त्रैलोक्यवर्ती जीवों के द्वारा मान्य है तथा आपकी समीपता वैर-विरोध का नाश करने वाली है। साथ ही, आपकी प्रशान्त मुद्रा मुमुक्षु जीवों के लिए साक्षात् मोक्षमार्ग को प्रकट करती है, उसके ध्यान एवं चिंतन से भव्यात्मा आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान करते हैं और उसी तरह चैतन्य जिनप्रतिमा बनने का अभ्यास करते हैं अतएव जैसा प्रभाव आपका है वैसा अन्य हरिहरादिक देवों का कहाँ हो सकता है? क्योंकि वे रागी-द्वेषी हैं, अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करते हैं और निन्दकों पर रुष्ट होते हैं उन्हें शाप दे देते हैं परन्तु हे देव! ये सब बातें आप में नहीं हैं, पूजक और निन्दकों पर आपका समान भाव रहता है क्योंकि आप जिन हैं, इन सब विकारों को जीत चुके हैं अतः आप जैसा प्रभाव अन्य किसी भी देवी-देवता का नहीं हो सकता है ।

देव! स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्ति,

तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिर्जनो यः
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मत्र्यः॥२३॥

अर्थ : हे भगवन्! जो भद्र मानव आपकी समीचीन भक्ति करता है और आपके पवित्र अनन्तज्ञानादि गुणों की स्तुति करता है, उनका चिन्तन और मनन करता है, वह शीघ्र ही कर्मबंधन को काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है और कर्मबंध के विनाश से पूर्णज्ञानी होता हुआ फिर कभी भी अज्ञान को प्राप्त नहीं होता है

चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं,
देव! त्वां यः समय-नियमादाऽऽदरेण स्तवीति
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृतिस्तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्॥२४॥

अर्थ : अनन्तचतुष्टयस्वरूप हे नाथ! जो भव्य पुरुष आपका आदरपूर्वक भक्ति से स्तवन करता है, वह पुण्यत्मा पंचकल्याणकों का पात्र होता हुआ मोक्षमार्ग का नेता होता है

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्
अस्माभि स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वप्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः॥२५॥

अर्थ : हे नाथ! आप जैसे परमयोगीन्द्र की, जब द्वादशांग का पाठी इन्द्र भक्तिपूर्वक स्तुति करता है और चार ज्ञान के धारक गणधरादिक भी आपको अपनी स्तुति का विषय बनाते हैं तथा अनेक ऋद्धियों के धारक क्षीणकाय मुनिपुंगव भी जब आपके गुणों की स्तुति करते हैं, तो भी वह पूर्णतया आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पाते, ऐसी अवस्था में आचार्य वादिराज अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं कि तब मुझ जैसा मन्दमति पुरुष आप जैसे जगद्वन्द्य परमात्मा की स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकता है? अस्तु आपके गुणों में जो अनुराग प्रकट किया है-भक्ति से इस स्तवनरूप पुष्पमाला को गुँथा है, सो उक्त गुणानुराग ही आत्महितैषी मोक्ष के इच्छुक हम जैसे पुरुषों का कल्याण करने वाला हो, अथवा मेरी आत्मोन्नति में सहायक हो

-स्वागता छंद-

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्विक-सिंहः
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्य-सहायः॥२६॥

विषापहारस्तोत्रम्
(श्रीधनञ्जय कृत)

स्वात्म-स्थितः सर्व-गतः समस्त-व्यापार-वेदी विनिवृत्त-संगः
प्रवृद्ध - कलोऽप्यजरो वरेण्य पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥1॥

पैचिन्त्यं युग-भारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्य

स्तुत्योऽद्यमेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥2॥

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि ॥3॥

त्वं विश्वदृष्ट्वा सकलैरदृश्ये विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यं स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥4॥

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषैरुल्लघतां लोकमवापिपस्त्वम्
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः ॥5॥

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्च इत्यच्युत दर्शिताशः
संव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥6॥

उपैति भक्त्य सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम्
सदावदात-द्युतिरेकरुपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥7॥

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मैरोश्च तुंगा प्रकृतिः स यत्र
द्यावाप्रथिव्योः प्रथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि ॥8॥

तवानवस्था परमार्थ-तत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धव्रत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥9॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद् भूलितात्मा यदि नाम शम्भुः
अशेत व्रन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं ग्रह्यते येन भवानजागः ॥10॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीत्यैर्वनते गुणित्वम्
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥11॥

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक-भूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य
त्वेनेतृ-भावंहि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौ-नाविकयोरिवाख्य ॥12॥

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरन्ति
तैलाय वालाः सिकता-समूहं निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥13॥

विषाप हारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्याय-नामानि तवैव तानि ॥14॥

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम्
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥15॥

त्रिकाल-तत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी-स्वामीति संख्य-नियतेरमीषाम्
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यस्तेऽन्येऽपि चेद् व्याप्स्यदमूनपीदम् ॥16॥

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्विभ्रतच्छ्रमिवादरेण ॥17॥

कोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छ-प्रतिकूल-वादः
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते ॥18॥

तुगांत्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च प्राप्यं सम्रद्धात्र धनेश्वरादेः
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥19॥

त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय दण्डं दधे यदिन्द्रो विनयेन तस्य
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्म-योगाद्यदि वा तवास्तु ॥20॥

विषापहारस्तोत्र - हिंदी

रचयिता 'महाकवि धनञ्जय' (संस्कृत) कविश्री शांतिदास (हिंदी)

(दोहा)

नमौ नाभिनंदन बली, तत्त्व-प्रकाशनहार
चतुर्थकाल की आदि में, भये प्रथम-अवतार ॥

(रोला छन्द)

निज-आत्म में लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे
जानत सब व्यापार संग नहि कछु तिहारे
बहुत काल के हो पुनि जरा न देह तिहारी
ऐसे पुरुष पुरान करहु रक्षा जु हमारी ॥१॥

पर करि के जु अचिंत्य भार जग को अति भारो
सो एकाकी भयो वृषभ कीनों निसतारो
करि न सके जोगिद्र स्तवन मैं करिहों ताको
भानु प्रकाश न करै दीप तम हरै गुफा को ॥२॥

स्तवन करन को गर्व तज्यो सक्री बहुजानी
मैं नहि तजौ कदापि स्वल्प ज्ञानी शुभध्यानी
अधिक अर्थ का कहूँ यथाविधि बैठि झरोके
जालांतर धरि अक्ष भूमिधर को जु विलोके ॥३॥

सकल जगत् को देखत अर सबके तुम ज्ञायक
तुमको देखत नाहि नाहि जानत सुखदायक
हो किंसाक तुम नाथ और कितनाक बखानें
तातें थुति नहि बने असक्ती भये सयाने ॥४॥

बालकवत निज दोष थी इहलोक दुःखी अति
रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति
हित अनहित की समझ नाहि हैं मंदमती हम
सब प्राणिन के हेत नाथ तुम बाल-वैद सम ॥५॥

दाता हरता नाहि भानु सबको बहकावत
आज-कल के छल करि नितप्रति दिवस गुमावत
हे अच्युत जो भक्त नमें तुम चरन कमल को
छिनक एक में आप देत मनवाँछित फल को ॥६॥

तुम सों सन्मुख रहै भक्ति सों सो सुख पावे
जो सुभावतैं विमुख आपतैं दुःखहि बढावै
सदा नाथ अवदात एक द्युतिरूप गुसांई
इन दोन्यों के हेत स्वच्छ दरपणवत् झाँई ॥७॥

है अगाध जलनिधी समुद्र जल है जितनो ही
मेरु तुंग सुभाव सिखरलों उच्च भन्यो ही
वसुधा अर सुरलोक एहु इस भाँति सई है
तेरी प्रभुता देव भुवन कूं लंघि गई है ॥८॥

है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारे
कह्यो न आवागमन प्रभू मत माँहि तिहारे
इष्ट पदारथ छाँड़ि आप इच्छति अदृष्ट कौं
विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्ट कौं ॥९॥

कामदेव को किया भस्म जगत्राता थे ही
लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही
सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हार्यो
तुम को काम न गहे आप घट सदा उजार्यो ॥१०॥

पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावे
तिनके औगुन कहे नाहि तू गुणी कहावे
निज सुभावतैं अंबु-राशि निज महिमा पावे
स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा बढ़ि जावे ॥११॥

कर्मन की थिति जंतु अनेक करै दुःखकारी
सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी
भवसमुद्र के माँहि देव दोन्यों के साखी
नाविक नाव समान आप वाणी में भाखी ॥१२॥

सुख को तो दुःख कहे गुणनिक्कूँ दोष विचारे
धर्म करन के हेत पाप हिरदै विच धारे
तेल निकासन काज धूलि को पेलै घानी
तेरे मत सों बाह्य ऐसे ही जीव अज्ञानी ॥१३॥

विष मोचै ततकाल रोग को हरै ततच्छन
मणि औषधी रसाण मंत्र जो होय सुलच्छन
ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यों मन धरिहैं
भ्रमत अपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं ॥१४॥

किंचित् भी चितमाँहि आप कछु करो न स्वामी
जे राखे चितमाँहि आपको शुभ-परिणामी
हस्तामलकवत् लखें जगत् की परिणति जेती
तेरे चित के बाह्य तोउ जीवै सुख सेती ॥१५॥

तीन लोक तिरकाल माहि तुम जानत सारी
स्वामी इनकी संख्या थी तितनी हि निहारी
जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा
तेऽपि झलकते आनि ज्ञान का ओर न तेरा ॥१६॥

है अगम्य तव रूप करे सुरपति प्रभु सेवा
ना कछु तुम उपकार हेत देवन के देवा
भक्ति तिहारी नाथ इंद्र के तोषित मन को
ज्यों रवि सन्मुख छत्र करे छाया निज तन को ॥१७॥

वीतरागता कहाँ कहाँ उपदेश सुखाकर
सो इच्छा प्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर
प्रतिकूली भी वचन जगत् कूँ प्यारे अति ही
हम कछु जानी नाहि तिहारी सत्यासति ही ॥१८॥

उच्च प्रकृति तुम नाथ संग किंचित् न धरनितैं
जो प्रापति तुम थकी नाहि सो धनेसुरनतैं
उच्च प्रकृति जल विना भूमिधर धूनी प्रकासै
जलधि नीरतैं भर्यो नदी ना एक निकासै ॥१९॥

तीन लोक के जीव करो जिनवर की सेवा
नियम थकी कर दंड धर्यो देवन के देवा
प्रातिहार्य तो बनैं इंद्र के बनै न तेरे
अथवा तेरे बनै तिहारे निमित परे रे ॥२०॥

तेरे सेवक नाहि इसे जे पुरुष हीन-धन
धनवानों की ओर लखत वे नाहि लखत पन
जैसैं तम-थिति किये लखत परकास-थिती कूं
तैसैं सूझत नाहि तमथिती मंदमती कूं ॥२१॥

निज वृध श्वासोच्छ्वास प्रगट लोचन टमकारा
तिनको वेदत नाहि लोकजन मूढ़ विचारा
सकल ज्ञेय ज्ञायक जु अमूरति ज्ञान सुलच्छन
सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन ॥२२॥

नाभिराय के पुत्र पिता प्रभु भरत तने हैं
कुलप्रकाशि कै नाथ तिहारो स्तवन भनै हैं
ते लघु-धी असमान गुनन को नाहि भजै हैं
सुवरन आयो हाथ जानि पाषान तजैं हैं ॥२३॥

सुरासुरन को जीति मोह ने ढोल बजाया
तीन लोक में किये सकल वशि यों गरभाया
तुम अनंत बलवंत नाहि ढिग आवन पाया
करि विरोध तुम थकी मूलतैं नाश कराया ॥२४॥

एक मुक्ति का मार्ग देव तुमने परकास्या
गहन चतुरगति मार्ग अन्य देवन कूँ भास्या
'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिकैं
भुज न विलोको नाथ कदाचित् गर्भ जु धरिकैं ॥२५॥

केतु विपक्षी अर्क-तनो पुनि अग्नि तनो जल
अंबुनिधी अरि प्रलय-काल को पवन महाबल
जगत्-माँहि जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति
तेरो उदयो है विपक्ष तैं रहित जगत्-पति ॥२६॥

जाने बिन हूँ नमत आप को जो फल पावे
नमत अन्य को देव जानि सो हाथ न आवे
हरी मणी कूँ काच काच कूँ मणी रटत हैं
ताकी बुधि में भूल मूल्य मणि को न घटत है ॥२७॥

जे विवहारी जीव वचन में कुशल सयाने
ते कषाय-मधि-दग्ध नरन को देव बखानैं
ज्यों दीपक बुझि जाय ताहि कह 'नंदि' गयो है
भग्न घड़े को कहैं कलस ए मँगलि गयो है ॥२८॥

स्याद्वाद संजुक्त अर्थ को प्रगट बखानत
हितकारी तुम वचन श्रवन करि को नहि जानत
दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जग-गुरु
जो ज्वर-सेती मुक्त भयो सो कहत सरल सुर ॥२९॥

बिन वांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित्
है नियोग ए कोऽपि जगत् को करत सहज-हित
करै न वाँछा इसी चंद्रमा पुरो जलनिधि
शीत रश्मि कूँ पाय उदधि जल बैठ स्वयं सिधि ॥३०॥

तेरे गुण-गंभीर परम पावन जगमाँहीं
बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाहीं
तिन गुण को अंत एक याही विधि दीसै
ते गुण तुझ ही माँहि और में नाहि जगीसै ॥३१॥

केवल धृति ही नाहि भक्तिपूर्वक हम ध्यावत
सुमिरन प्रणमन तथा भजनकर तुम गुण गावत
चितवन पूजन ध्यान नमन करि नित अराधैं
को उपाव करि देव सिद्धि-फल को हम साधैं ॥३२॥

त्रैलोकी-नगराधिदेव नित ज्ञान-प्रकाशी
परम-ज्योति परमात्म-शक्ति अनंती भासी
पुन्य पापतैं रहित पुन्य के कारण स्वामी
नमौ नमौ जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी ॥३३॥

रस सुपरस अर गंध रूप नहि शब्द तिहारे
इनि के विषय विचित्र भेद सब जाननहारे
सब जीवन-प्रतिपाल अन्य करि हैं अगम्य जिन
सुमरन-गोचर माहि करौं जिन तेरो सुमिरन ॥३४॥

तुम अगाध जिनदेव चित्त के गोचर नाहीं
निःकिंचन भी प्रभू धनेश्वर जाचत सोई
भये विश्व के पार दृष्टि सों पार न पावै
जिनपति एम निहारि संत-जन सरनै अवै ॥३५॥

नमौ नमौ जिनदेव जगत्-गुरु शिक्षादायक
निजगुण-सेती भई उन्नती महिमा-लायक
पाहन-खंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर
त्यों कुलपर्वत नाहि सनातन दीर्घ भूमिधर ॥३६॥

स्वयंप्रकाशी देव रैन दिनसों नहि बाधित
दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकाशित
लाघव गौरव नाहि एक-सो रूप तिहारो
काल-कला तैं रहित प्रभू सँ नमन हमारो ॥३७॥

इहविधि बहु परकार देव तव भक्ति करी हम
जाचूँ कर न कदापि दीन है रागरहित तुम
छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे है है
फिर छाया कों जाचत यामें प्रापति कै है ॥३८॥

जो कुछ इच्छ होय देन की तौ उपगारी
द्यो बुधि ऐसी करूँ प्रीतिसौँ भक्ति तिहारी
करो कृपा जिनदेव हमारे परि है तोषित
सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहि पोषित ॥३९॥

यथा-कथंचित् भक्ति रचै विनयी-जन केई
तिनकुँ श्रीजिनदेव मनोवाँछित फल देही
पुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावै
सो सुख जस 'धन-जय' प्रापति है शिवपद पावै ॥४०॥

श्रावक 'माणिकचंद' सुबुद्धी अर्थ बताया
सो कवि 'शांतीदास' सुगम करि छंद बनाया
फिरि-फिरिकै ऋषिरूपचंद ने करी प्रेरणा
भाषा-स्तोत्र की विषापहार पढ़ो भविजना ॥४१॥

रत्नाकर-पंचविशतिका

(श्री रत्नाकर सूरि विरचित स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद)
(कविश्री रामचरित उपाध्याय)

शुभकेलि के आनंद के धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से पूजित चरण गतकाम हो
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो अचार में ॥१॥

संसार-दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश! रत्नाकरप्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो
गतराग! है विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए ॥२॥

माता-पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्यवश लीलावली
अपने हृदय के हाल को, त्यों ही यथोचित-रीति से,
मैं कह रहा हूँ आपके, आगे विनय से प्रीति से ॥३॥

मैंने नहीं जग में कभी कुछ, दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया
शुभभावनाएँ भी हुई, अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूँ, व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधिधार में ॥४॥

क्रोधाग्नि से मैं रात-दिन हा! जल रहा हूँ हे प्रभो !
मैं 'लोभ' नामक साँप से, काटा गया हूँ हे विभो !
अभिमान के खल-ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भाँति हों स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ ॥५॥

लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झींकता हूँ शोक में
जग में हमारे सम नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर! वह भवों की, पूर्णता के अर्थ है ॥६॥

प्रभु! आपने निज मुख-सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया
अनंद-रस में डूबकर, सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥७॥

रक्त-पथी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहु-काल तक बहु-बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया
हा! खो गया वह भी विवश, मैं नींद अलस में रहा,
बतलाइये उसके लिए रोऊँ, प्रभो! किसके यहाँ? ॥८॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो! अपनी हँसी ॥९॥

परदोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ,
लखकर पराई नारियों को, हा नयन दूषित हुआ
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो !
किस भाँति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो! ॥१०॥

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुःख-राक्षसी
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया ॥११॥

अन्यान्य मंत्रों से परम, परमेष्ठि-मंत्र हटा दिया,
सच्छस्त्रवाक्यों को कुशास्त्रों से दबा मैं ने दिया
विधि-उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
है नाथ! यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्य-क्य किया ॥१२॥

हा! तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञानवश मैंने किया, फिर देखिये किस पाप को
वामाक्षियों के राग में, रत हो सदा मरता रहा,
उनके विलासों के हृदय में, ध्यान को धरता रहा ॥१३॥

लखकर चपल-दृग-युवतियों, के मुख मनोहर रसमई,
जो मन-पटल पर राग भावों, की मलिनता बस गई
वह शास्त्रनिधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई,
बतलाइए यह आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई ॥१४॥

मुझमें न अपने अंग के, सौन्दर्य का आभास है,
मुझमें न गुणगण हैं विमल, न कला-कलाप-विलास है
प्रभुता न मुझ में स्वप्न को, भी चमकती है देखिये,
तो भी भरा हूँ गर्व से, मैं मूढ़ हो किसके लिए ॥१५॥

हा! नित्य घटती आयु है, पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढ़ौती पर विषय से, कामना हटती नहीं
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म मैं करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं ॥१६॥

अघ-पुण्य को, भव-आत्म को, मैंने कभी माना नहीं,
हा! आप आगे हैं खड़े, दिननाथ से यद्यपि यहीं
तो भी खलों के वाक्यों को, मैंने सुना कानों वृथा,
धिककर मुझको है गया, मम जन्म ही मानों वृथा ॥१७॥

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म-श्रावकधर्म का भी, नहिं सविधि पालन किया
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा ॥१८॥

प्रत्यक्ष सुखकर जिन-धरम, में प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यही
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिक, के यहाँ रहते हुए,
हमने गँवाया जन्म को, धिक्कर दुःख सहते हुए ॥१९॥

मैंने न रोका रोग-दुःख, संभोग-सुख देखा किया,
मनमें न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ ही लेखा किया
हा! मैं अधम युवती-जनों, का ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ॥२०॥

सद्वृत्ति से मन में न, मैंने साधुता ही साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता
शुभ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाये नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज मैंने गँवाये व्यर्थ ही ॥२१॥

शास्त्रोक्तविधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,
खल-वाक्य भी गतक्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि, पार होवेगा भला? ॥२२॥

सत्कर्म पहले-जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूँगा मैं कहीं
इस भाँति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों
संसार में फिर जन्म तीनों, क्यों न मेरे नष्ट हों? ॥२३॥

हे पूज्य अपने चरित को, बहुभाँति गाऊँ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी, है पापमय मेरी कथा
क्योंकि त्रिजग के रूप हो, तुम ईश, हो सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो ॥२४॥

दीनोद्धारक धीर हे प्रभु! आप-सा नहीं अन्य है,
कृपा-पात्र भी नाथ! न, मुझ-सा कहीं अवर है
तो भी माँगूँ नहीं धान्य धन कभी भूलकर,
अर्हन्! प्राप्त होवे केवल, बोधिरत्न ही मंगलकर ॥२५॥

(दोहा)

श्री रत्नाकर गुणगान यह, दुरित-दुःख सबके हरे
बस एक यही है प्रार्थना, मंगलमय जग को करे ॥

भूपाल-पंचविशतिका

(मूल संस्कृत-काव्य कवि भूपाल 11-12 वीं शताब्दी)
(हिंदी अनुवाद- कविश्री भूधरदास)

(दोहा)

सकल सुरासुर-पूज्य नित, सकलसिद्धि-दातार
जिन-पद वंदूँ जोर कर, अशरन-जन-आधार ॥

(चौपाई)

श्री सुख-वास-मही कुलधाम, कीरति-हर्षण-थल अभिराम
सरसुति के रतिमहल महान्, जय-जुवती को खेलन-थान
अरुण वरण वाँछित वरदाय, जगत्-पूज्य ऐसे जिन पाय
दर्शन प्राप्त करे जो कोय, सब शिवनाथ सो जन होय ॥१॥

निर्विकार तुम सोम शरीर, श्रवण सुखद वाणी गभीर
तुम आचरण जगत् में सार, सब जीवन को है हितकार
महानिद भव मारु देश, तहाँ तुंग तरु तुम परमेश
सघन-छाँहि-मंडित छवि देत, तुम पंडित सेवें सुख-हेत ॥२॥

गर्भकूपतें निकस्यो आज, अब लोचन उघरे जिनराज

मेरो जन्म सफल भयो अबै, शिवकारण तुम देखे जबै
जग-जन-नैन-कमल-वनखंड, विकसावन शशि शोक विहंड
आनंदकरन प्रभा तुम तणी, सोई अमी झरन चाँदणी ॥३॥

सब सुरेन्द्र शेखर शुभ रैन, तुम आसन तट माणक ऐन
दोऊ दुति मिल झलकें जोर, मानों दीपमाल दुहँ ओर
यह संपति अरु यह अनचाह, कहाँ सर्वज्ञानी शिवनाह
ता तें प्रभुता है जगमाँहि, सही असम है संशय नाहि ॥४॥

सुरपति आन अखंडित बहै, तृण जिमि राज तज्यो तुम वहै
जिन छिन में जगमहिमा दली, जीत्यो मोहशत्रु महाबली
लोकालोक अनंत अशेख, कीनो अंत ज्ञानसों देख
प्रभु-प्रभाव यह अद्भुत सबै, अवर देव में भूल न फबै ॥५॥

पात्रदान तिन दिन-दिन दियो, तिन चिरकाल महातप कियो
बहुविध पूजाकारक वही, सर्व शील पाले उन सही
और अनेक अमल गुणरास, प्रापति आय भये सब तास
जिन तुम सरधा सों कर टेक ,दृग-वल्लभ देखे छिन एक ॥६॥

त्रिजग-तिलक तुम गुणगण जेह, भवन-भुजंग-विषहर-मणि तेह
जो उर-कानन माँहि सदीव, भूषण कर पहरे भवि-जीव
सोई महामती संसार, सो श्रुतसागर पहुँचे पार
सकल-लोक में शोभा लहैं, महिमा जाग जगत् में वहै ॥७॥

(दोहा)

सुर-समूह ढोरें चमर, चंदकिरण-द्युति जेम
नवतन-वधू-कटाक्षतें, चपल चलैं अति एम
छिन-छिन ढलकें स्वामि पर, सोहत ऐसो भाव
किधौं कहत सिधिलच्छि सों, जिनपति के ढिग आव ॥८॥

(चौपाई छन्द १५ मात्रा)

शीश छत्र सिंहासन तलै, दिपै देह दुति चामर दुरैं
बाजे दुंदुभि बरसैं फूल, ढिग अशोक वाणी सुखमूल
इहविधि अनुपम शोभा मान, सुर-नर सभा पदमनी भान
लोकनाथ वंदैं सिरनाय, सो हम शरण होहु जिनराय ॥९॥

सुर-गजदंत कमल-वन-माँहि, सुरनारी-गण नाचत जाँहि
बहुविधि बाजे बाजैं थोक, सुन उछाह उपजै तिहुँलोक
हर्षत हरि जै जै उच्चरै, सुमनमाल अपछर कर धरै
यों जन्मादि समय तुम होय, जयो देव देवागम सोय ॥१०॥

तोष बढ़ावन तुम मुखचंद, जन नयनामृत करन अमंद
सुन्दर दुतिकर अधिक उजास, तीन भुवन नहि उपमा तास
ताहि निरखि सनयन हम भये, लोचन आज सुफल कर लये
देखन-योग जगत् में देख, उमग्यो उर आनंद-विशेष ॥११॥

कैयक यों मानैं मतिमंद, विजित-काम विधि-ईश मुकंद
ये तो हैं वनिता-वश दीन, काम-कटक-जीतन-बलहीन
प्रभु अगैं सुर-कामिनि करैं, ते कटाक्ष सब खाली परैं
यातैं मदन-विध्वंसन वीर, तुम भगवंत और नहि धीर ॥१२॥

दर्शन-प्रीति हिये जब जगी, तबै आम्र-कोपल बहु लगी
तुम समीप उठ आवन ठयो, तब सों सघन प्रफुल्लित भयो ॥
अबहूँ निज नैनन ढिग आय, मुख मयंक देख्यो जगराय
मेरो पुन्य विरख इहबार, सुफल फल्यो सब सुखदातार ॥१३॥

(दोहा)

त्रिभुवन-वन में विस्तरी, काम-दावानल जोर
वाणी-वरषा-भरण सों, शांति करहु चहुँ ओर
इंद्र मोर नाचै निकट, भक्ति भाव धर मोह

मेघ सघन चौबीस जिन, जैवंते जग होय ॥१४॥

(चौपाई)

भविजन-कुमुदचंद सुखदैन्, सुर-नरनाथ प्रमुख-जग जैन
ते तुम देख रमें इह भाँत, पहुप गेह लह ज्यों अलि पाँत ॥
सिर धर अंजुलि भक्ति समेत, श्रीगृह प्रति परिदक्षण देत
शिवसुख की सी प्रापति भई, चरण छाँहसों भव-तप गई ॥१५॥

वह तुम-पद-नख-दर्पण देव, परम पूज्य सुन्दर स्वयमेव
तामें जो भवि भाग विशाल, आनन अवलोकै चिरकाल
कमला की रति काँति अनूप, धीरज प्रमुख सकल सुखरूप
वे जग मंगल कौन महान्, जो न लहै वह पुरुष प्रधान ॥१६॥

इंद्रादिक श्रीगंगा जेह, उत्पति थान हिमाचल येह
जिन-मुद्रा-मंडित अति-लसै, हर्ष होय देखे दुःख नसै
शिखर ध्वजागण सोहैं एम, धर्म सुतरुवर पल्लव जेम
यों अनेक उपमा-आधार, जयो जिनेश जिनालय सार ॥१७॥

शीस नवाय नमत सुरनार, केश-कांति-मिश्रित मनहार
नख-उद्योत-वरतैं जिनराज, दशदिश-पूरित किरण-समाज
स्वर्णनाग-नर नायक संग, पूजत पाय-पद्म अतुलंग
दुष्ट कर्मदल दलन सुजान, जैवंतो वरतो भगवान् ॥१८॥

सो कर जागै जो धीमान, पंडित सुधी सुमुख गुणगान
आपन मंगल-हेत प्रशस्त अवलोकन चाहैं कछु वस्त ॥
और वस्तु देखें किस काज, जो तुम मुख राजै जिनराज
तीन-लोक को मंगल-थान, प्रेक्षणीय तिहुँ जग-कल्याण ॥१९॥

धर्मोदय तापस-गृह कीर, काव्यबंध वन पिक तुम वीर
मोक्ष-मल्लिका मधुप रसाल, पुन्यकथा कज सरसि मराल

तुम जिनदेव सुगुण मणिमाल, सर्व-हितंकर दीनदयाल
ताको कौन न उन्नतकाय, धैरै किरीट-मांहि हर्षाय ॥२०॥

केई वाँछैं शिवपुर-वास, केई करें स्वर्ग सुख आस
पचै पंचानल आदिक ठान, दुःख बँधै जस बँधै अयान
हम श्रीमुख-वानी अनुभवैं, सरधा पूरव हिरदै ठवैं
तिस प्रभाव आनंदित रहैं, स्वर्गादि सुख सहजे लहैं ॥२१॥

न्होन महोच्छ्व इन्द्रन कियो, सुरतिय मिल मंगल पढ़ लियो
सुयश शरद-चंद्रोपम सेत, सो गंधर्व गान कर लेत ॥
और भक्ति जो जो जिस जोग, शेष सुरन कीनी सुनियोग
अब प्रभु करें कौन-सी सेव, हम चित भयो हिडोला एव ॥२२॥

जिनवर-जन्मकल्याणक द्योस, इंद्र आप नाचै खो होस
पुलकित अंग पिता-घर आय, नाचत विधि में महिमा पाय
अमरी बीन बजावै सार, धरी कुचाग्र करत झंकार
इहिविधि कौतुक देख्यो जबै, औसर कौन कह सकै अबै ॥२३॥

श्रीपति-बिंब मनोहर एम, विकसत वदन कमलदल जेम
ताहि हेर हरखे दृग दोय, कह न सकूँ इतनो सुख होय
तब सुर-संग कल्याणक-काल, प्रगटरूप जावै जगपाल
इकटक दृष्टि एक चितलाय, वह आनंद कहा क्यों जाय ॥२४॥

देख्यो देव रसायन-धाम, देख्यो नव-निधि को विसराम
चिंतारयन सिद्धिरस अबै, जिनगृह देखत देखे सबै
अथवा इन देखे कछु नाहि, यम अनुगामी फल जगमाँहि
स्वामी सरयो अपूरव काज, मुक्ति समीप भई मुझ आज ॥२५॥

विनवै भूपाल नरेश, देखे जिनवर हरन कलेश
नेत्र कमल विकसे जगचंद्र, चतुर चकोर करण आनंद

थुति जल सोंयों पावन भयो, पाप-ताप मेरो मिट गयो
मो चित है तुम चरणन-माहि, फिर दर्शन हूज्यो अब जाहि ॥२६॥

(छप्पय छन्द)

इहिविधि बुद्धिविशाल राय भूपाल महाकवि
कियो ललित-थुति-पाठ हिये सब समझ सकै नवि
टीका के अनुसार अर्थ कछु मन में आयो
कहीं शब्द कहि भाव जोड़ भाषा जस गायो
आत्म पवित्र-कारण किमपि, बाल-ख्याल सो जानियो
लीज्यो सुधार 'भूधर' तणी, यह विनती बुध मानियो ॥२७॥

मृत्यु-महोत्सव

मृत्यु - मार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागोददातु मे
समाधि - बोधि - पाथेयं यावन्मुक्ति - पुरी पुरः ॥१॥

कृमि - जाल - शताकीर्णे, जरी देह - पञ्जरे
भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञान-विग्रहः ॥२॥

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्यु - महोत्सवे
स्वरूपस्थ पुरं याति, देही देहान्तर - स्थितिम् ॥३॥

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद् दृश्यते पूर्वं - सत्तमैः
भुज्यते - स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतिः कुतः सताम् ॥४॥

आगर्भाद्दुःख - सन्तप्त प्रक्षिप्तो देह - पिञ्जरे
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्यु - भूमिपतिं विना ॥५॥

सर्व - दुःखं - प्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः
मृत्यु - मित्र - प्रसादेन प्राप्यन्ते सुख - सम्पदः ॥६॥

मृत्यु - कल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः
निमग्नो जन्म - जम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥७॥

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सतोत्थितिर्यथा ॥८॥

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्
मृत्यु - भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥९॥

संसारसक्त - चित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञान - वैराग्यवासिनाम् ॥१०॥

पुराधीशो यदा याति सुकृत्यस्य बुभुत्स्या
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चे पाञ्च - भौतिकैः ॥११॥

मृत्यु - काले सतां दुःखं यद् भवेद् व्याधि - संभवम्
देह - मोह - विनाशाय मन्ये शिव - सुखाय च॥ १२॥

ज्ञानिनोऽमृत - सङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥१३॥

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्त्रतायास - विडम्बनात्
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्यु - काले समाधिना ॥१४॥

अनार्तः शान्तिमान् मर्त्यो न तिर्यगापि नारकः
धर्म्य - ध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनी त्वमरेश्वरः ॥ १५॥

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥ १६॥

अतिपरिचितेष्वक्शा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जन - वादः
चिरंतर - शरीर - नाशे नवतर-लाभे च किं भीरुः ॥१७॥

स्वादित्य पवित्र - निर्मल - कुले संस्मर्यमाणा जनै -
र्दत्त्वा भक्ति - विधायिनां बहुविधं वाञ्छनुरूपं धनम्!
भुक्त्व भोगमहर्निशं पर - कृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले
पात्रावेश - विसर्जनामिव मृति सन्तो लभन्ते स्वतः ॥१८॥

ध्यान-शतक

(आ माघनन्दी कृत)

1. सहज शुद्ध पारिणामिक भाव स्वरूपोऽहं ॥
2. सहज शुद्ध ज्ञानानन्दैक स्वभावोऽहं ॥
3. चैतन्य रत्नाकर स्वरूपोऽहं ॥
4. सहज ज्ञान ज्योति स्वरूपोऽहं ॥
5. अनन्त सुख स्वरूपोऽहं ॥
6. अनन्त शक्ति स्वरूपोऽहं ॥
7. नित्य निरंजन ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
8. सहज सुखानन्द स्वरूपोऽहं ॥
9. परम ज्योति स्वरूपोऽहं ॥
10. शुद्धात्मानुभूति स्वरूपोऽहं ॥
11. कारण परमात्मा स्वरूपोऽहं ॥
12. समयसार स्वरूपोऽहं ॥
13. परम समाधि स्वरूपोऽहं ॥
14. केवल ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
15. केवल दर्शन स्वरूपोऽहं ॥

16. अष्टादश दोष रहितोऽहं ॥
17. कर्माष्टकरहित स्वरूपोऽहं ॥
18. सम्यग्दर्शन संपन्नोऽहं।
19. सम्यक् चारित्र संपन्नोऽहं ॥
20. व्यवहार रत्नत्रय संपन्नोऽहं ॥
21. क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूपोऽहं ॥
22. क्षायिक ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
23. क्षायिक चारित्र संपन्नोऽहं ॥
24. क्षायिक लब्धि स्वरूपोऽहं ॥
25. परमशुद्ध चिद्रूप स्वरूपोऽहं ॥
26. अनन्त दर्शन स्वरूपोऽहं ॥
27. सहज चैतन्य स्वरूपोऽहं ॥
28. शुद्धचिन्मात्र स्वरूपोऽहं ॥
29. अनन्त ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
30. अनन्त वीर्य स्वरूपोऽहं ॥
31. सहजानंद स्वरूपोऽहं ॥
32. चिदानन्दस्वरूपोऽहं ॥
33. शुद्धात्मस्वरूपोऽहं ॥
34. स्वात्मोपलब्धि स्वरूपोऽहं ॥
35. शुद्धात्मसंवित्ति स्वरूपोऽहं ॥
36. परमात्म स्वरूपोऽहं ॥
37. परम मंगल स्वरूपोऽहं ॥
38. परमोत्तमस्वरूपोऽहं ॥
39. परमब्रह्म स्वरूपोऽहं ॥
40. शुद्धस्वरूपोऽहं ॥

41. सिद्ध स्वरूपोऽहं ॥
42. निर्मोह स्वरूपोऽहं ॥
43. सम्यग्ज्ञान संपन्नोऽहं ॥
44. निश्चय रत्नत्रय संपन्नोऽहं ॥
45. त्रिगुप्तिगुप्त स्वरूपोऽहं ॥
46. पंच समिति संपन्नोऽहं ॥
47. पंच महाव्रत संपन्नोऽहं ॥
48. दर्शनाचार संपन्नोऽहं ॥
49. ज्ञानाचार संपन्नोऽहं ॥
50. वीर्याचार संपन्नोऽहं ॥
51. शुद्ध चैतन्य स्वरूपोऽहं ॥
52. अखंड शुद्धज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
53. स्वाभाविक ज्ञान दर्शन स्वरूपोऽहं ॥
54. अनन्त चतुष्टय स्वरूपोऽहं ॥
55. अतीन्द्रियज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
56. स्वपर भेद ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
57. चैतन्य चिन्ह स्वरूपोऽहं ॥
58. अष्टगुण सहितोऽहं ॥
59. उत्तम क्षमा धर्म स्वरूपोऽहं ॥
60. उत्तम मार्दव धर्म स्वरूपोऽहं ॥
61. उत्तम आर्जव धर्म स्वरूपोऽहं ॥
62. उत्तम शौच धर्म स्वरूपोऽहं ॥
63. उत्तम संयम धर्म स्वरूपोऽहं ॥
64. उत्तम तपो धर्म स्वरूपोऽहं ॥
65. उत्तम आकिंचन धर्म स्वरूपोऽहं ॥

66. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म स्वरूपोऽहं ॥
67. स्वरूपाचरण चारित्र स्वरूपोऽहं।
68. वीतराग स्वसंवेदन स्वरूपोऽहं ॥
69. अरस अगंध अवर्ण अस्पर्श स्वरूपोऽहं ॥
70. कर्म फल चेतना रहित स्वरूपोऽहं ॥
71. राग-द्वेष मोहादि रहित स्वरूपोऽहं ॥
72. शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूपोऽहं ॥
73. शुद्ध जीव पदार्थ स्वरूपोऽहं ॥
74. नीजतत्त्व स्वरूपोऽहं ॥
75. बुद्धोऽहं ॥
76. चारित्राचार संपन्नोऽहं ॥
77. तपाचार संपन्नोऽहं ॥
78. अमूर्त स्वरूपोऽहं ॥
79. वीतराग स्वरूपोऽहं ॥
80. अतीन्द्रियसुख स्वरूपोऽहं।
81. ज्ञानार्णव स्वरूपोऽहं ॥
82. अष्टविध कर्म रहितोऽहं ॥
83. धर्मध्यान स्वरूपोऽहं ॥
84. शुक्लध्यान स्वरूपोऽहं।
85. आत्मध्यान स्वरूपोऽहं ॥
86. निर्दोषपरमात्म स्वरूपोऽहं ॥
87. अनन्तानन्त स्वरूपोऽहं ॥
88. उत्तम सत्य धर्म स्वरूपोऽहं ॥
89. उत्तम त्याग धर्म स्वरूपोऽहं ॥
90. पूर्ण ज्ञान घन स्वरूपोऽहं ॥

91. पूर्णानंद स्वरूपोऽहं ॥
92. एकत्व विभक्त स्वरूपोऽहं ॥
93. ज्ञान चेतना स्वरूपोऽहं ॥
94. कर्म चेतना रहित स्वरूपोऽहं ॥
95. अबद्ध-अस्पृष्ट-स्वरूपोऽहं ॥
96. अशब्द स्वरूपोऽहं ॥
97. शुद्धोपयोग स्वरूपोऽहं ॥
98. शुद्धजीवतत्त्व स्वरूपोऽहं ॥
99. शुद्धोऽहं ॥
100. सोऽहं । सोऽहं । सोऽहं ॥

अपूर्व अवसर

(श्रीमद्-राजचंद्र कृत)

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रथ जब
संबंधों का बंधन तीक्ष्ण छेदकर
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ॥१॥

उदासीन वृत्ति हो सब परभाव से
यह तन केवल संयम हेतु होय जब
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं
तन में किंचित भी मूर्च्छ नहीं होय जब ॥२॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब
चरित्र मोह का क्षय जिससे हो जायेगा
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब ॥३॥

आत्म लीनता मन वच काया योग की
मुख्यरूप से रही देह पर्यन्त जब
भयकारी उपसर्ग परीषह हो महा
किन्तु न होवे स्थिरता का अंत जब ॥४॥

संयम ही के लिये योग की वृत्ति हो
निज आश्रय से जिन अज्ञा अनुसार जब
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी
होऊँ अंत में निज स्वरूप में लीन जब ॥५॥

पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव प्रतिबन्ध बिन
वीतलोभ हो विचरूँ उदयाधीन जब ॥६॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता
मान भाव प्रति दीन भावमय मान जब
माया के प्रति माया साक्षी भाव की
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब ॥७॥

बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध नहीं
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब
देह जाय पर माया नहीं हो रोम में
लोभ नहीं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥८॥

नग्नभाव मुंडभाव सहित अस्त्रानता
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब
केश-रोम-नख आदि अंग शृंगार नहीं
द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रन्थ सिद्ध जब ॥९॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता
मान-अपमान में वर्ते वही स्वभाव जब
जन्ममरण में हो नहीं न्यून अधिकता
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब ॥१०॥

एकाकी विचरूँगा जब श्मशान में
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब ॥११॥

घोर तपश्चर्या में तन संताप नहीं
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की
सब में भासे पुद्गल एक स्वभाव जब ॥१२॥

ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्र मोह पर
पाऊँगा तब करण अपुरव भाव जब
क्षायिक श्रेणी पर होऊँ अरूढ़ जब
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जब ॥१३॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब
अंत समय में पूर्णरूप वीतराग हो
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब ॥१४॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ
हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब
सकल ज्ञेय का ज्ञाता दृष्ट मात्र हो
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जब ॥१५॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो
जली जेवरीवत हो अकृति मात्र जब
जिनकी स्थिति अयु कर्म अधीन है
अयु पूर्ण हो तो मिटता तन पात्र जब ॥१६॥

मन वच काया अरु कर्मों की वर्गणा
छूटे जहाँ सकल पुद्गल सम्बन्ध जब
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब ॥१७॥

इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता
पूर्ण कलंक विहीन अडोल स्वरूप जब
शुद्ध निरंजन चेतन मूर्ति अनन्यमय
अगुरुलघु अमूर्त सहजपद रूप जब ॥१८॥

पूर्व प्रयोगादिक कारण के योग से
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब
सादि अनंत अनंत समाधि सुख में
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जब ॥१९॥

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ
अनुभव गोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब ॥२०॥

यही परम पद पाने को धर ध्यान जब
शक्तिविहीन अवस्था मनस्थरूप जब
तो भी निश्चय 'राजचंद्र' के मन रहा
प्रभु अज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब ॥२१॥

कुंदकुंद-शतक

कुंदकुंद आचार्य के पंच परमागम में से चुनी हुई १०१ गाथाएँ
(हिंदी पद्यानुवाद - डा. हुकमचंद भारिल्ल)

प्रवचनसार-१

सुर-असुर-इन्द्रनरेन्द्रवंदित, कर्ममल निर्मल करन
वृषतीर्थ के करतार श्री, वर्द्धमान जिन शत-शत नमन ॥१॥

मोक्षपाहुड-१०४

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु हैं परमेष्ठि पण
सब आत्मा की अवस्थाएँ, आत्मा ही है शरण ॥२॥

मोक्षपाहुड-१०५

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप, समभाव सम्यक् आचरण
सब आत्मा की अवस्थाएँ, आत्मा ही है शरण ॥३॥

नियमसार-४४

निर्ग्रन्थ है नीराग है, निःशल्य है निर्दोष है
निर्मान-मद यह आत्मा, निष्काम है निष्क्रोध है ॥४॥

नियमसार-४३

निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है, यह निरालम्बी आत्मा
निर्देह है निर्मूढ है, निर्भयी निर्मम आत्मा ॥५॥

समयसार-३८

मैं एक दर्शन-ज्ञानमय, नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं
ये अन्य सब परद्रव्य, किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥६॥

समयसार-४९

चैतन्य गुणमय आत्मा, अव्यक्त अस अरूप है
जानो अलिंगग्रहण इसे, यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥७॥

समयसार-२९६

जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से, पर से विभक्त किया इसे

उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही, अरे ग्रहण करो इसे ॥८॥

समयसार-२८६

जो जानता मैं शुद्ध हूँ, वह शुद्धता को प्राप्त हो
जो जानता अविशुद्ध वह, अविशुद्धता को प्राप्त हो ॥९॥

प्रवचनसार-२३

यह आत्म ज्ञानप्रमाण है, अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि, सर्वगत यह ज्ञान है ॥१०॥

समयसार-१६

चारित्र दर्शन ज्ञान को, सब साधुजन सेवें सदा
ये तीन ही हैं आत्मा, बस कहे निश्चयनय सदा ॥११॥

समयसार-१७

'यह नृपति है' यह जानकर, अर्थार्थिजन श्रद्धा करें
अनुचरण उसका ही करें, अति प्रीति से सेवा करें ॥१२॥

समयसार-१८

यदि मोक्ष की है कामना, तो जीवनृप को जानिए
अति प्रीति से अनुचरण करिये, प्रीति से पहिचानिए ॥१३॥

अष्टपाहुड-२६

जो भव्यजन संसार-सागर, पार होना चाहते
वे कर्मईधन-दहन निज, शुद्धात्मा को ध्यावते ॥१४॥

समयसार-४१२

मोक्षपथ में थाप निज को, चेतकर निज ध्यान धर
निज में ही नित्य विहार कर, पर द्रव्य में न विहार कर ॥१५॥

समयसार-१५५

जीवादि का श्रद्धान सम्यक्, ज्ञान सम्यग्ज्ञान है
रागादि का परिहार चारित, यही मुक्तिमार्ग है ॥१६॥

मोक्षपाहुड-३८

तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है, तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है
जिनदेव ने ऐसा कहा, परिहार ही चारित्र है ॥१७॥

मोक्षपाहुड-३७

जानना ही ज्ञान है, अरु देखना दर्शन कहा
पुण्यपाप का परिहार चारित्र, यही जिनवर ने कहा ॥१८॥

शीलपाहुड-५

दर्शन रहित यदि वेष हो, चारित्र विरहित ज्ञान हो
संयम रहित तप निरर्थक, आकाश-कुसुम समान हो ॥१९॥

शीलपाहुड-६

दर्शन सहित हो वेष चारित्र, शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो
संयम सहित तप अल्प भी हो, तदपि सुफल महान हो ॥२०॥

समयसार-१५२

परमार्थ से हों दूर पर, तप करें व्रत धारण करें
सब बालतप है बालव्रत, वृषभादि सब जिनवर कहें ॥२१॥

समयसार-१५३

व्रत नियम सब धारण करें, तप शील भी पालन करें
पर दूर हों परमार्थ से ना, मुक्ति की प्राप्ति करें ॥२२॥

दर्शनपाहुड-२२

जो शक्य हो वह करें, और अशक्य की श्रद्धा करें
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, इस भांति सब जिनवर कहें ॥२३॥

दर्शनपाहुड-२०

जीवादि का श्रद्धान ही, व्यवहार से सम्यक्त्व है
पर नियत नय से आत्म का, श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥२४॥

मोक्षपाहुड-१४

नियम से निज द्रव्य में, रत श्रमण सम्यक्वंत हैं
सम्यक्त्वपरिणत श्रमण ही, क्षय करें करमानन्त हैं ॥२५॥

मोक्षपाहुड-८८

मुक्ति गये या जायेंगे, माहात्म्य है सम्यक्त्व का
यह जान लो हे भव्यजन, इससे अधिक अब कहें क्या ॥२६॥

मोक्षपाहुड-८९

वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं, वे शूर नर पण्डित वही

दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को, जिनने मलीन किया नहीं ॥२७॥

समयसार-१३

चिदचिदास्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा
तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से, जाने हुए सम्यक्त्व हैं ॥२८॥

समयसार-११

शुद्धनय भूतार्थ है, अभूतार्थ है व्यवहारनय
भूतार्थ की ही शरण गह, यह अत्तमा सम्यक् लहे ॥२९॥

समयसार-८

अनार्य भाषा के बिना, समझा सके न अनार्य को
बस त्योंहि समझा सके ना, व्यवहार बिन परमार्थ को ॥३०॥

समयसार-२७

देह-चेतन एक हैं, यह वचन है व्यवहार का
ये एक हो सकते नहीं, यह कथन है परमार्थ का ॥३१॥

समयसार-७

दृग ज्ञान चारित जीव के हैं, यह कहा व्यवहार से
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक, शुद्ध है परमार्थ से ॥३२॥

मोक्षपाहुड-३१

जो सो रहा व्यवहार में, वह जागता निज कार्य में
जो जागता व्यवहार में, वह सो रहा निज कार्य में ॥३३॥

समयसार-२७२

इस ही तरह परमार्थ से, कर नास्ति इस व्यवहार की
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन, प्राप्ति करें निर्वाण की ॥३४॥

दर्शनपाहुड-४२

सद्धर्म का है मूल दर्शन, जिनवेन्द्रों ने कहा
हे कानवालों सुनों, दर्शन-हीन वंदन योग्य ना ॥३५॥

दर्शनपाहुड-८

जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं, चारित्र से भी भ्रष्ट हैं
वे भ्रष्ट करते अन्य को, वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥३६॥

दर्शनपाहुड-३

दृग्भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं, उनको कभी निर्वाण ना
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर, दृग्भ्रष्ट को निर्वाण ना ॥३७॥

दर्शनपाहुड-१३

जो लाज गौरव और भयवश, पूजते दृग्भ्रष्ट को
की पाप की अनुमोदना, ना बोधि उनको प्राप्त हो ॥३८॥

दर्शनपाहुड-१२

चाहें नमन दृग्वंत से, पर स्वयं दर्शनहीन हों
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी, वे भी वचन-पग हीन हों ॥३९॥

दर्शनपाहुड-५

यद्यपि करें वे उग्र तप, शत-सहस्र-कोटी वर्ष तक
पर रतनत्रय पावें नहीं, सम्यक्त्वविरहित साधु सब ॥४०॥

दर्शनपाहुड-१०

जिस तरह द्रुम परिवार की, वृद्धि न हो जड़ के बिना
बस उसतरह ना मुक्ति हो, जिनमार्ग में दर्शन बिना ॥४१॥

दर्शनपाहुड-२६

असंयमी न वन्द्य है, दृग्हीन वस्त्रविहीन भी
दोनों ही एक समान हैं, दोनों ही संयत हैं नहीं ॥४२॥

दर्शनपाहुड-२७

ना वंदना हो देह की, कुल की नहीं ना जाति की
कोई करे क्यों वंदना, गुणहीन श्रावक-साधु की ॥४३॥

समयसार-१९

मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ, या हैं हमारे ये सभी
यह मान्यता जब तक रहे, अज्ञानी हैं तब तक सभी ॥४४॥

समयसार-७५

करम के परिणाम को, नोकरम के परिणाम को
जो ना करे बस मात्र जाने, प्राप्त हो सद्ज्ञान को ॥४५॥

समयसार-२४७

मैं मारता हूँ अन्य को, या मुझे मारें अन्यजन

यह मान्यता अज्ञान है, जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४६॥

समयसार-२४८

निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही
तुम मार कैसे सकोगे जब, आयु हर सकते नहीं? ॥४७॥

समयसार-२४९

निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही
वे मरण कैसे करें तब जब, आयु हर सकते नहीं? ॥४८॥

समयसार-२५०

मैं हूँ बचाता अन्य को, मुझको बचावे अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है, जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४९॥

समयसार-२५१

सब आयु से जीवित रहें, यह बात जिनवर ने कही
जीवित रखोगे किस तरह, जब आयु दे सकते नहीं? ॥५०॥

समयसार-२५२

सब आयु से जीवित रहें, यह बात जिनवर ने कही
कैसे बचावे वे तुझे, जब आयु दे सकते नहीं? ॥५१॥

समयसार-२५३

मैं सुखी करता दुःखी करता, हूँ जगत में अन्य को
यह मान्यता अज्ञान है, क्यों ज्ञानियों को मान्य हो? ॥५२॥

समयसार-२६२

मारो न मारो जीव को, हो बंध अध्यवसान से
यह बंध का संक्षेप है, तुम जान लो परमार्थ से ॥५३॥

प्रवचनसार-२१७

प्राणी मरें या न मरें, हिसा अयत्नाचार से
तब बंध होता है नहीं, जब रहें यत्नाचार से ॥५४॥

पंचास्तिकाय-१०

उत्पादव्ययध्रुवयुक्त सत्, सत् द्रव्य का लक्षण कहा
पर्याय-गुणमय द्रव्य है, यह वचन जिनवर ने कहा ॥५५॥

पंचास्तिकाय-१२

पर्याय बिन ना द्रव्य हो, ना द्रव्य बिन पर्याय ही
दोनों अनन्य रहे सदा, यह बात श्रमणों ने कही ॥५६॥

पंचास्तिकाय-१३

द्रव्य बिन गुण हों नहीं, गुण बिना द्रव्य नहीं बने
गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं, यह कहा जिनवर देव ने ॥५७॥

पंचास्तिकाय-१५

उत्पाद हो न अभाव का, ना नाश हो सद्भाव में
उत्पादव्यय करते रहें, सब द्रव्य गुण-पर्याय में ॥५८॥

प्रवचनसार-३७

असद्भूत हों सद्भूत हों, सब द्रव्य की पर्याय सब
सद्ज्ञान में वर्तमानवत ही, हैं सदा वर्तमान सब ॥५९॥

प्रवचनसार-३८

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं, या नष्ट जो हो गई हैं
असद्भावी वे सभी, पर्याय ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥६०॥

प्रवचनसार-३९

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं, या हो गई हैं नष्ट जो
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता, यदि ज्ञात होवे नहीं वो? ॥६१॥

सूत्रपाहुड-१

अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर, सूत्र से ही श्रमणजन
परमार्थ का साधन करें, अध्ययन करो हे भव्यजन ॥६२॥

सूत्रपाहुड-३

डोरा सहित सुइ नहीं खोती, गिरे चाहे वन भवन
संसार-सागर पार हों, जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण ॥६३॥

प्रवचनसार-८६

तत्त्वार्थ को जो जानते, प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से
दृगमोह क्षय हो इसलिए, स्वाध्याय करना चाहिए ॥६४॥

प्रवचनसार-२३५

जिन-आगमों से सिद्ध हों, सब अर्थ गुण-पर्याय सहित

जिन-आगमों से ही श्रमणजन, जानकर साधें स्वहित ॥६५॥

प्रवचनसार-२३२

स्वाध्याय से जो जानकर, निज अर्थ में एकाग्र हैं
भूतार्थ से वे ही श्रमण, स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ॥६६॥

प्रवचनसार-२३३

जो श्रमण आगमहीन हैं, वे स्वपर को नहि जानते
वे कर्मक्षय कैसे करें जो, स्वपर को नहि जानते? ॥६७॥

प्रवचनसार-८३

व्रत सहित पूजा आदि सब, जिन धर्म में सत्कर्म हैं
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज, परिणाम अतमधर्म हैं ॥६८॥

प्रवचनसार-७

चारित्र ही बस धर्म है, वह धर्म समताभाव है
दृगमोह - क्षोभ विहीन निज, परिणाम समताभाव है ॥६९॥

प्रवचनसार-११

प्राप्त करते मोक्षसुख, शुद्धोपयोगी अतमा
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी अतमा ॥७०॥

प्रवचनसार-२४५

शुभोपयोगी श्रमण हैं, शुद्धोपयोगी भी श्रमण
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं, आस्रवी हैं शेष सब ॥७१॥

प्रवचनसार-२४१

कांच-कंचन बन्धु-अरि, सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में
शुद्धोपयोगी श्रमण का, समभाव जीवन-मरण में ॥७२॥

भावपाहुड-१२७

भावलिंगी सुखी होते, द्रव्यलिंगी दुःख लहें
गुण-दोष को पहिचान कर सब, भाव से मुनि पद गहें ॥७३॥

भावपाहुड-७३

मिथ्यात्व का परित्याग कर, हो नग्न पहले भाव से
अज्ञा यही जिनदेव की, फिर नग्न होवे द्रव्य से ॥७४॥

भावपाहुड-६८

जिन भावना से रहित मुनि, भव में भ्रमें चिरकाल तक
हों नग्न पर हों बोधि-विरहित, दुःख लहें चिरकाल तक ॥७५॥

भावपाहुड-४

वस्त्रादि सब परित्याग, कोड़ाकोडि वर्षों तप करें
पर भाव बिन ना सिद्धि हो, सत्यार्थ यह जिनवर कहें ॥७६॥

भावपाहुड-६७

नारकी तिर्यच अदिक, देह से सब नग्न हैं
सच्चे श्रमण तो हैं वही, जो भाव से भी नग्न हैं ॥७७॥

सूत्रपाहुड-१८

जन्मते शिशुवत् अकिंचन, नहीं तिलतुष हाथ में
किंचित् परिग्रह साथ हो तो, श्रमण जाँय निगोद में ॥७८॥

लिंगपाहुड-५

जो आर्त होते जोड़ते, रखते रखाते यत्न से
वे पाप मोहितमती हैं, वे श्रमण नहि तिर्यच हैं ॥७९॥

लिंगपाहुड-१७

राग करते नारियों से, दूसरों को दोष दें
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं, वे श्रमण नहि तिर्यच हैं ॥८०॥

लिंगपाहुड-२

श्रावकों में शिष्यगण में, नेह रखते श्रमण जो
हीन विनयाचार से, वे श्रमण नहि तिर्यच हैं ॥८१॥

लिंगपाहुड-१८

पार्श्वस्थ से भी हीन जो, विश्वस्त महिला वर्ग में
रत ज्ञान दर्शन चरण दें, वे नहीं पथ अपवर्ग में ॥८२॥

लिंगपाहुड-२०

धर्म से हो लिंग केवल, लिंग से न धर्म हो
समभाव को पहिचानिये, द्रव्यलिंग से क्या कार्य हो? ॥८३॥

समयसार-१५०

विरक्त शिवरमणी वरें, अनुरक्त बाँधे कर्म को

जिनदेव का उपदेश यह, मत कर्म में अनुरक्त हो ॥८४॥

समयसार-१५४

परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते
अज्ञान से भवगमन-कारण, पुण्य को हैं चाहते ॥८५॥

समयसार-१४५

सुशील है शुभकर्म और, अशुभ कर्म कुशील है
संसार के हैं हेतु वे, कैसे कहें कि सुशील हैं? ॥८६॥

समयसार-१४६

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती, त्यों स्वर्ण की भी बाँधती
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों, कर्म बेड़ी बाँधती ॥८७॥

समयसार-१४७

दुःशील के संसर्ग से, स्वाधीनता का नाश हो
दुःशील से संसर्ग एवं, राग को तुम मत करो ॥८८॥

प्रवचनसार-७७

पुण्यपाप में अन्तर नहीं है, जो न माने बात ये
संसार-सागर में भ्रमे, मद-मोह से आच्छन्न वे ॥८९॥

प्रवचनसार-७६

इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है, विषम बाधा सहित है
है बंध का कारण दुखद, परतंत्र है विच्छिन्न है ॥९०॥

नियमसार-१२०

शुभ-अशुभ रचना वचन वा, रागादिभाव निवारिके
जो करें आत्म ध्यान नर, उनके नियम से नियम है ॥९१॥

नियमसार-३

सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित ही, है 'नियम' जानो नियम से
विपरीत का परिहार होता, 'सार' इस शुभ वचन से ॥९२॥

नियमसार-२

जैन शासन में कहा, है मार्ग एवं मार्गफल
है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं, मोक्ष ही है मार्गफल ॥९३॥

नियमसार-१५६

है जीव नाना कर्म नाना, लब्धि नानाविध कही
अतएव वर्जित वाद है, निज-पर समय के साथ भी ॥९४॥

नियमसार-१५७

ज्यों निधि पाकर निज वतन में, गुप्त रह जन भोगते
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि परसंग तज के भोगते ॥९५॥

नियमसार-१८६

यदि कोई ईर्ष्याभाव से, निन्दा करे जिनमार्ग की
छोड़ो न भक्ति वचन सुन, इस वीतरागी मार्ग की ॥९६॥

नियमसार-१३६

जो थाप निज को मुक्तिपथ, भक्ति निवृत्ती की करें
वे जीव निज असहाय गुण, सम्पन्न आत्म को वें ॥९७॥

नियमसार-१३५

मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की, भक्ति करें गुणभेद से
वह परमभक्ति कही है, जिनसूत्र में व्यवहार से ॥९८॥

प्रवचनसार-८०

द्रव्य गुण पर्याय से, जो जानते अरहंत को
वे जानते निज आत्मा, दृगमोह उनका नाश हो ॥९९॥

प्रवचनसार-८२

सर्व ही अरहंत ने विधि, नष्ट कीने जिस विधी
सबको बताई वही विधि, हो नमन उनको सब विधी ॥१००॥

प्रवचनसार-२७४

है ज्ञान दर्शन शुद्धता, निज शुद्धता श्रामण्य है
हो शुद्ध को निर्वाण, शत-शत बार उनको नमन है ॥१०१॥

छहढाला-बुधजनजी

मंगलाचरण (सोरठा)

सर्व द्रव्य में सार, आत्म को हितकार हैं

नमो ताहि चितधार, नित्य निरंजन जानके ॥

पहली ढाल - [छहढाला-बुधजनजी]
(बारह भावना) (चौपाई)

आयु घटे तेरी दिन-रात, हो निश्चित रहो क्यों भ्रात
यौवन तन धन किकर नारि, हैं सब जल बुदबुद उनहारि ॥१-अथिर॥

पूरण आयु बढे छिन नाहि, दिये कोटि धन तीरथ मांहि
इन्द्र चक्रपति हू क्य करैं, आयु अन्त पर वे हू मरैं ॥२-अशरण॥

यों संसार असार महान, सार आप में आपा जान
सुख से दुख, दुख से सुख होय, समता चारों गति नहि कोय ॥३-संसार॥

अनंतकाल गति-गति दुख लह्यो, बाकी काल अनंतो कह्यो
सदा अकेला चेतन एक, तो माहीं गुण वसत अनेक ॥४-एकत्वा॥

तू न किसी का तेरा न कोय, तेरा सुख दुख तोकों होय
याते तोकों तू उर धार, पर द्रव्यमते ममत निवार ॥५-भिन्न॥

हाड़ मांस तन लिपटी चाम, रुधिर मूत्र-मल पूरित धाम
सो भी थिर न रहे क्षय होय, याको तजे मिले शिव लोय ॥६-अशुचि॥

हित अनहित तन कुलजन मांहि, खोटी बानि हरो क्यों नाहि
याते पुद्गल-करमन जोग, प्रणवे दायक सुख दुख रोग ॥७-आस्रव॥

पांचों इन्द्रिन के तज फैल, चित निरोध लाग शिव-गैल
तुझमे तेरी तू करि सैल, रहो कहा हो कोल्हू बैल ॥८-संवर॥

तज कषाय मन की चल चाल, ध्यावो अपनो रूप रसाल
झड़े कर्म-बंधन दुखदान, बहुरि प्रकाशै केवलज्ञान ॥९-निर्जरा॥

तेरो जन्म हुआ नहि जहां, ऐसा खेत नहि कहाँ

याही जन्म भूमिका रचो, चलो निकसि तो विधि से बचो ॥१०-लोक॥

सब व्यवहार क्रिया को ज्ञान, भयो अनंती बार प्रधान
निपट कठिन 'अपनी' पहिचान, ताको पावत होत कल्याण ॥११-बोधि॥

धर्म स्वभाव आप सरधान, धर्म न शील न न्हैन न दान
'बुधजन' गुरु की सीख विचार, गहो धाम आत्म सुखकार ॥१२-धर्म॥

दूसरी ढाल - [छहढाला-बुधजनजी] (नरेन्द्र / जोगीरासा छंद)

सुन रे जीव कहत हूँ तोकों, तेरे हित के काजै
हो निश्चल मन जो तू धारे, तब कछु- इक तोहि लाजे ॥
जिस दुख से थावर तन पायो, वरन सको सो नहीं
अठदश बार मरो अरु जीयो, एक स्वस के माहीं ॥१॥

काल अनतानंत रह्यो यों, पुनि विकलत्रय हूवो
बहुरि असैनी निपट अज्ञानी, छिनछिन जीओ मूवो ॥
ऐसे जन्म गयो करमन- वश, तेरो जोर न चाल्यो
पुन्य उदय सैनी पशु हूवो, बहुत ज्ञान नहि भाल्यो ॥२॥

जबर मिलो तब तोहि सतायो, निबल मिलो ते खायो
मात तिया- सम भोगी पापी, तातें नरक सिधायो ॥
कोटिन बिच्छू काटत जैसे, ऐसी भूमि तहाँ है
रुधिर-राध-परवाह बहे जहां, दुर्गन्ध निपट तहाँ है ॥३॥

घाव करै असिपत्र अंग में, शीत ऊष्ण तन गाले
कोई काटे करवत कर गह, कोई पावक जालें ॥
यथायोग सागर- थिति भुगते, दुख को अंत न आवे
कर्म- विपाक इसो ही होवे, मानुष गति तब पावै ॥४॥

मात उदर मे रहो गेंद हें, निकसत ही बिललावे
डंभा दांत गला विष फोटक, डाकिन से बच जावे ॥

तो यौवन में भामिनि के संग, निशि -दिन भोग रचावे
अंधा हूँ धंधे दिन खोवै, बूढ़ा नाड़ हिलावे ॥५॥

जम पकड़े तब जोर न चाले, सैनहि सैन बतावै
मंद कषाय होय तो भाई, भवनत्रिक पद पावै ॥
पर की संपति लखि अति झूरे, कै रति काल गमावै
आयु अंत माला मुरझावै, तब लखि लखि पछतावे ॥६॥

तह तैं चयकर थावर होता, रुलता काल अनन्ता
या विधि पंच परावृत पूरत, दुख को नहीं अन्ता ॥
काललब्धि जिन गुरु-कृपा से, आप आप को जानो
तबही 'बुधजन' भवदधि तिरके, पहुँच जाय - शिव-थाने ॥७॥

तीसरी ढाल - [छहढाला-बुधजनजी] (पद्मरि छंद)

इस विधि भववन के मांहि जीव, वश मोह गहल सोता सदीव
उपदेश तथा सहजै प्रबोध, तबही जागै ज्यों उठत जोध ॥१॥

जब चितवत अपने मांहि आप, हूँ चिदानन्द नहि पुन्य पाप
मेरो नहीं है राग भाव, यह तो विधिवश उपजै विभाव ॥२॥

हूँ नित्य निरंजन सिध समान, ज्ञानावरणी आच्छाद ज्ञान
निश्चय सुध इक व्यवहार भव, गुण-गुणी अंग-अंगी अछेव ॥३॥

मानुष सुर नारक पशुपर्याय, शिशु युवा वृद्ध बहुरूप काय
धनवान दरिद्री दास राय, ये तो विडम्ब मुझको न भाय ॥४॥

रस फरस गंध वरनादि नाम, मेरे नहीं मैं ज्ञानधाम
मैं एकरूप नहि होत और, मुझमे प्रतिबिम्बत सकल ठौर ॥५॥

तन पुलकित उर हरषित सदीव, ज्यों भई रंकगृह निधि अतीव
जब प्रबल अप्रत्याख्यान थाय, तब चित परिणति ऐसी उपाय ॥६॥

सो सुनो भव्य चित धार कान, वरणत हूँ ताकी विधि विधान
सब करै काज घर मांहि वास, ज्यों भिन्न कमल जल में निवास ॥७॥

ज्यों सती अंग माहीं सिंगार, अति करत प्यार ज्यों नगर नारि
ज्यों धाय चखावत आन बाल, त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥८॥

जब उदय मोह चारित्र भाव, नहि होत रंच हू त्याग भाव
तहाँ करै मंद खोटी कषाय, घर में उदास हो अधिर थाय ॥९॥

सबकी रक्षा युत न्याय नीति, जिनशासन गुरु की दृढ़ प्रतीति
बहु रुले अर्द्ध पुद्गल प्रमान, अंतर मुहूर्त ले परम थान ॥१०॥

वे धन्य जीव धन भाग सोय, जाके ऐसी परतीत होय
ताकी महिमा है स्वर्ग लोय, बुधजन भाषे मोतैं न होय ॥११॥

चौथी ढाल - [छहढाल-बुधजनजी] (सोरठा)

ऊरयो आत्म सूर, दूर भयो मिथ्यात तम
अब प्राटे गुणभूर, तिनमें कछु डक कहत हूँ ॥१॥

शंका मन में नाहि, तत्वारथ सरधान में
निरवांछा चित मांहि, परमारथ में रत रहै ॥२॥

नेक न करत गिलान, बाह्य मलिन मुनि तन लखे
नाहीं होत अजान, तत्व कुतत्व विचार में ॥३॥

उर में दया विशेष, गुण प्रकटैं औगुण ढके
शिथिल धर्म मे देख, जैसे-तैसे दृढ़ करै ॥४॥

साधर्मी पहिचान, करैं प्रीति गौ वत्स सम
महिमा होत महान, धर्म काज ऐसे करै ॥५॥

मद नहि जो नृप तात, मद नहि भूपति ज्ञान को
मद नहि विभव लहात, मद नहि सुन्दर रूप को ॥६॥

मद नहि जो विद्वान्, मद नहि तन में जोर को
मद नहि जो परधान, मद नहि संपति कोष को ॥७॥

हूवो आत्म ज्ञान, तज रागादि विभाव पर
ताको हूँ क्यों मान, जात्यादिक वसु अथिरे को ॥८॥

बंदत हैं अरिहंत, जिन-मुनि जिन-सिद्धान्त को
नमें न देख महंत, कुगुरु कुदेव कुधर्म को ॥९॥

कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि सेवकी
परशंसा षट भेव, करै न सम्यक्वान है ॥१०॥

प्रगटो ऐसो भाव, कियो अभाव मिथ्यात्व को
बन्दत ताके पाँव, 'बुधजन' मन-वच-कायतैं ॥११॥

पांचवीं ढाल - [छहढाला-बुधजनजी] (चाल छंद)

तिर्यच मनुज दोउ गति में, व्रत धारक श्रद्धा चित में
सो अगलित नीर न पीवै, निशि भोजन तजत सदीवै ॥१॥

मुख वस्तु अभक्ष न लावै, जिन भक्ति त्रिकाल रचावै
मन वच तन कपट निवारै, कृत कारित मोद संवारै ॥२॥

जैसी उपशमत् कषाया, तैसा तिन त्याग कराया
कोई सात व्यसन को त्यागै, कोई अणुव्रत में मन पागै ॥३॥

त्रस जीव कभी नहि मारै, विरथा थावर न संहारै
परहित बिन झूठ न बोले, मुख सांच बिना नहि खोले ॥४॥

जल मृत्तिका बिन धन सबहू, बिन दिये न लेवे कबहू
व्याही बनिता बिन नारी, लघु बहिन बड़ी महतारी ॥५॥

तृष्णा का जोर संकोचै, ज्यादा परिग्रह को मोचै
दिश की मर्यादा लावै, बाहर नहि पाँव हिलावै ॥६॥

ताहू में गिरि पुर सरिता, नित राखत अघ तें डरता
सब अनरथ दंड न करता, छिन-छिन निज धर्म सुमरता ॥७॥

द्रव्य क्षेत्र काल सुध भावै, समता सामायिक ध्यावै
पोषह एकाकी हो है, निश्किंचन मुनि ज्यों सोहै ॥८॥

परिग्रह परिमाण विचारै, नित नेम भोग को धारै
मुनि आवन बेला जावै, तब जोग अशन मुख लावै ॥९॥

यों उत्तम किरिया करता, नित रहत पाप से डरता
जब निकट मृत्यु निज जाने, तब ही सब ममता भाने ॥१०॥

ऐसे पुरुषोत्तम केरा, 'बुधजन' चरणों का चेरा
वे निश्चय सुरपद पावैं, थोरे दिन में शिव जावैं ॥११॥

छठवीं ढाल - [छहढाला-बुधजनजी]

(षटपद छंद)

अथिरे ध्याय पर्याय, भोग ते होय उदासी
नित्य निरंजन जोति, आत्मा घट में भासी ॥१॥

सुत दारादि बुलाय, सबनितैं मोह निवारा
त्यागि शहर धन धाम, वास वन- बीच विचारा ॥२॥

भूषण वसन उतार, नगन है आत्म चीना
गुरु ढिग दीक्षा धार, सीस कचलोच जु कीना ॥३॥

त्रस थावर का घात, त्याग मन-वच-तन लीना
झूठ वचन परिहार, गहैं नहि जल बिन दीना ॥४॥

चेतन जड़ तिय भोग, तजो भव-भव दुखकारा
अहि-कंचुकि ज्यों जान, चित तें परिग्रह डारा ॥५॥

गुप्ति पालने काज, कपट मन-वच-तन नाहीं
पांचों समिति संवार, परिषह सहि है अहीं ॥६॥

छोड़ सकल जंजाल, आप कर आप आप में
अपने हित को आप, करो ह्वै शुद्ध जाप में ॥७॥

ऐसी निश्चल काय, ध्यान में मुनि जन केरी
मानो पत्थर रची, किधों चित्राम उकेरी ॥८॥

चार घातिया नाश, ज्ञान मे लोक निहारा
दे जिनमत उपदेश, भव्य को दुख तें टारा ॥९॥

बहुरि अघाती तोरि, समय में शिव-पद पाया
अलख अखंडित जोति, शुद्ध चेतन ठहराया ॥१०॥

काल अनंतानंत, जैसे के तैसे रहिहैं
अविनाशी अविकार, अचल अनुपम सुख लहिहैं ॥११॥

ऐसी भावन भाय, ऐसे जे कारज करिहैं
ते ऐसे ही होय, दुष्ट करमन को हरिहैं ॥१२॥

जिनके उर विश्वास, वचन जिन- शासन नाहीं
ते भोगातुर होय, सहैं दुख नरकन माही ॥१३॥

सुख दुख पूर्व विपाक, अरे मत कल्पै जीया
कठिन कठिन तें मित्र, जन्म मानुष का लीया ॥१४॥

सो बिरथा मत खोय, जोय आपा पर भाई
गई न लावैं फेरि, उदधि में डूबी राई ॥१५॥

भला नरक का वास, सहित समकित जो पाता
बुरे बने जे देव, नृपति मिथ्यामत माता ॥१६॥

नहीं खरच धन होय, नहीं काहू से लरना
नहीं दीनता होय, नहीं घर का परिहरना ॥१७॥

समकित सहज स्वभाव, आप का अनुभव करना
या बिन जप तप वृथा, कष्ट के माहीं परना ॥१८॥

कोटि बात की बात अरे, 'बुधजन' उर धरना
मन- वच- तन सुधि होय, गहो जिन- मत का शरना ॥१९॥

ठारा सौ पच्चास, अधिक नव संवत जानों
तीज शुक्ल वैशाख, ढाल षट शुभ उपजानों ॥२०॥

छहढाला-द्यानतरायजी

पहली ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

(सोरठा)

ओकार मंझार, पंच परम पद वसत हैं
तीन भुवन में सार, वन्दूँ मन वच काय कर ॥१॥

अक्षर ज्ञान न मोहि, छन्दभेद समझूँ नहीं
मति थोड़ी किम होय, भाया अक्षर बावनी ॥२॥

आत्म कठिन उपाय, पायो नर भव क्यों तजे
राई उदधि समाय, फिर ढूँढे नहि पाइये ॥३॥

इह विध नर भव कोय, पाय विषय सुख में रमै
सो शठ अमृत खोय, हालाहल विष को पिये ॥४॥

ईश्वर भाखो येह, नर भव मत खोओ वृथा

फिर न मिलै यह देह, पछतावो बहु होयगो ॥५॥
उत्तम नर अवतार, पायो दुख कर जगत में
यह जिय सोच विचार, कुछ टोसा संग लीजिये ॥६॥
ऊरध गति को बीज, धर्म न जो मान आचरै
मानुष योनि लहीज, कूप पड़े कर दीप ले ॥७॥
ऋषिकर के सुन बैन, सार मनुज सब योनि में
ज्यों मुख ऊपर नैन, भानु दिपै आकाश में ॥८॥

दूसरी ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

(चाल छंद)

रे जिय यह नरभव पाया, कुल जाति विमल तू आया
जो जैनधर्म नहि धारा, सब लाभ विषयसंग हारा ॥१॥
लखि बात हृदय गह लीजे, जिनकथित धर्म नित कीजे
भव दुख सागर को वरिये, सुख से नवका ज्यों तरिये ॥२॥
ले सुधि न विषय रस भरिया, भ्रम मोह ने मोहित करिया
विधि ने जब दर्ई घुमरिया, तब नरक भूमि तू परिया ॥३॥
अब नर कर धर्म अगाऊ, जब लों धन यौवन चाऊ
जब लों नहि रोग सतावैं, तोहि काल न आवन पावै ॥४॥
ऐश्वर्य रु अश्रित नैना, जब लों तेरी दृष्टि फिरै ना
जब लों तेरी दृष्टि सवाई, कर धर्म अगाऊ भाई ॥५॥
ओस बिटु त्यों यौवन जैहे, कर धर्म जरा पुन यै है
ज्यों बूढो बैल थकै है, कछु कारज कर न सकै है ॥६॥
औ छिन संयोग वियोगा, छिन जीवन छिन मृत्यु रोगा
छिन में धन यौवन जावै, किस विधि जग में सुख पावै ॥७॥
अंबर धन जीवन येहा, गज-करण चपल धन देहा
तन दर्पण छाया जानो, यह बात सभी उर अनौ ॥८॥

तीसरी ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

(रोला छंद)

अः यम ले नित आयु, क्यों न धर्म सुनिजै

नयन तिमिर नित हीन, अस्नन यौवन छीजै ॥
 कमला चले नहि पैड, मुख ढाकैं परिवारा
 देह थकैं बहु पोष, क्यों न लखै संसारा ॥१॥
 छिन नहि छोड़े काल, जो पाताल सिधरै
 वसे उदधि के बीच, जो बहु दूर पधारै ॥
 गण-सुर राखै तोहि, राखै उदधि-मथैया
 तोहु तजै नहि काल, दीप पतंग ज्यों पड़िया ॥२॥
 घर गौ सोना दान, मणि औषधि सब यों ही
 यंत्र मंत्र कर तंत्र, काल मिटै नहि क्यों ही ॥
 नरक तनो दुख भूर, जो तू जीव सम्हारे
 तो न रुचै आहार, अब सब परिग्रह डारैं ॥३॥
 चेतन गर्भ मंझार, वसिके अति दुख पायो
 बालपने को ख्यल, सब जग प्रगटहि गायो ॥
 छिन में तन को सोच, छिन में विरह सतावै
 छिन में इष्ट वियोग, तरुण कौन सुख पावैं ॥४॥

चौथी ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

(अडिल्ल छंद)

जरापने जो दुख सहे, सुन भाई रे
 सो क्यों भूले तोहि, चेत सुन भाई रे
 जो तू विषयों से लगा, सुन भाई रे
 आत्म सुधि नहि तोहि, चेत सुन भाई रे ॥१॥
 झूठ वचन अघ ऊपजै, सुन भाई रे
 गर्भ बसो नवमास, चेत सुन भाई रे
 सम धातु लहि पाप से, सुन भाई रे
 अबहू पाप रताय, चेत सुन भाई रे ॥२॥
 नहीं जरा गदआय है, सुन भाई रे
 कहाँ गये यम यक्ष वे, सुन भाई रे
 जे निश्चिन्तित हो रह्यो, सुन भाई रे
 सो सब देख प्रत्यक्ष, चेत सुन भाई रे ॥३॥
 टुक सुख को भवदधि पड़े, सुन भाई रे
 पाप लहर दुखदाय, चेत सुन भाई रे

पकड़ो धर्म जहाज को, सुन भाई रे
 सुख से पार करेय, सुन भाई रे ॥४॥
 ठीक रहे धन सास्वतो, सुन भाई रे
 होय न रोग न काल, चेत सुन भाई रे
 उत्तम धर्म न छोड़िये, सुन भाई रे
 धर्म कथित जिन धार, चेत सुन भाई रे ॥५॥
 डरपत जो परलोक से, सुन भाई रे
 चाहत शिव सुखसार, चेत सुन भाई रे
 क्रोध लोभ विषयन तजो, सुन भाई रे
 कोटि कटै अघजाल, चेत सुन भाई रे ॥६॥
 ढील न कर आरम्भ तजो, सुन भाई रे
 आरम्भ में जिय घात, चेत सुन भाई रे
 जीवघात से अघ बटें, सुन भाई रे
 अघ से नरक लहात, चेत सुन भाई रे ॥७॥
 नरक आदि त्रैलोक्य में, सुन भाई रे
 ये परभव दुख राशि, चेत सुन भाई रे
 सो सब पूरब पाप से, सुन भाई रे
 सबहि सहै बहु त्रास, चेत सुन भाई रे ॥८॥

पाँचवीं ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥ टेक ॥
 तिहूँ जग में सुर अदि दे जी, सो सुख दुर्लभ सार,
 सुन्दरता मन-मोहनी जी, सो है धर्म विचार
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥१॥
 थिरता यश सुख धर्म से जी, पावत रत्न भंडार,
 धर्म बिना प्राणी लहै जी, दुःख अनेक प्रकार
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥२॥
 दान धर्म ते सुर लहै जी, नरक लहै कर पाप,
 इह विधि नर जो क्यों पड़े जी, नरक विषैं तू आप
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥३॥
 धर्म करत शोभा लहै जी, हय गय रथ वर साज,
 प्रासुक दान प्रभाव ते जी, घर आवे मुनिराज

रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥४॥
नवल सुभग मन मोहनाजी, पूजनीक जग मांहि,
रूप मधुर बच धर्म से जी, दुख कोई व्यापै नाहि
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥५॥
परमार्थ यह बात है जी, मुनि को समता सार,
विनय मूल विद्यातनी जी, धर्म दया सरदार
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥६॥
फिर सुन करुणा धर्ममय जी, गुरु कहिये निर्ग्रन्थ
देव अठारह दोष बिन जी, यह श्रद्धा शिव-पंथ
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥७॥
बिन धन घर शोभा नहीं जी, दान बिना पुनि गेह,
जैसे विषयी तापसी जी, धर्म दिया बिन नेह
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥८॥

छठवीं ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

(दोहा)

भोंदू धनहित अघ करे, अघ से धन नहि होय
धरम करत धन पाइये, मन वच जानो सोय ॥१॥
मत जिय सोचे चितवै, होनहार सो होय
जो अक्षर विधना लिखे, ताहि न मेटे कोय ॥२॥
यद्यपि द्रव्य की चाह में, पैठ सागर मांहि
शैल चढ़े वश लाभ के, अधिको पावै नाहि ॥३॥
रात-दिवस चिंता चिता, मांहि जले मत जीव
जो दीना सो पायगा, अधिक न मिलै सदीव ॥४॥
लागि धर्म जिन पूजिये, सत्य कहैं सब कोय
चित प्रभु चरण लगाइये, मनवांछित फल होय ॥५॥
वह गुरु हों मम संयमी, देव जैन हो सार
साधर्मी संगति मिलो, जब लों हो भव पार ॥६॥
शिव मारग जिन भाषियो, किंचित जानो सोय
अंत समाधी मरण करि, चहुँगाति दुख क्षय होय ॥७॥
षट्पिधि सम्यक् जो कहै, जिनवानी रुचि जास
सो धन सों धनवान है, जन में जीवन तास ॥८॥

सरधा हेतु हृदय धरै, पढ़ै सुनै दे कान
 पाप कर्म सब नाश के, पावै पद निर्वाण ॥९॥
 हित सों अर्थ बताइयो, सुथिर बिहारी दास
 सत्रहसौ अठानवे, तेरस कार्तिक मास ॥१०॥
 क्षय-उपशम बलसों कहै, दानत अक्षर यह
 देख सुबोध पचासका, बुधिजन शुद्ध करेहु ॥११॥
 त्रेपन क्रिया जो आदरै, मुनिगण विशत अठ
 हृदय धरैं अति चाव सो, जारैं वसु विधि काठ ॥१२॥
 ज्ञानवान जैनी सबै, बसैं आगरे मांहि
 साधर्मि संगति मिले, कोई मूरख नाहि ॥१३॥

छहठाला-दौलतरामजी

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता
 शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग समहारिकैं ॥१॥

अर्थ : राग-द्वेषरहित 'केवलज्ञान' ऊर्ध्व, मध्य और अधो - इन तीन लोकों में उत्तम, आनन्दस्वरूप तथा मोक्षदायक है, इसलिये मैं (दौलतराम) अपने त्रियोग अर्थात् मन-वचन-काय द्वारा सावधानी पूर्वक उस वीतराग (अठारह दोष रहित) स्वरूप केवलज्ञान को नमस्कार करता हूँ

पहली-ढाल - [छहठाला-दौलतरामजी]

जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुःखतै भयवंत
 तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१॥

अर्थ : तीन लोक में जो अनन्त जीव (प्राणी) हैं, वे दुःख से डरते और सुख को चाहते हैं; इसलिये आचार्य दुःख का नाश करनेवाली और सुख को देनेवाली शिक्षा देते हैं

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण
 मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भ्रमत वादि ॥२॥

अर्थ : हे भव्य जीव, यदि तू अपना हित चाहता है तो, गुरु की शिक्षा को मन शांत व स्थिर करके सुन। जिस प्रकार एक शराबी शराब के नशे में धुत होकर यहाँ वहाँ गिरता पड़ता रहता है, उसी प्रकार यह जीव भी अनादि कल से मोह रूपी मदिरा के नशे में पंस्कर अपने आत्म स्वरूप को भूलकर चारों गतियों में जन्म-मरण करके भटकता रहता है।

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कुछ कहूँ कही मुनि यथा
 काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेंद्री तन धार ॥३॥

अर्थ : संसार में जन्म-मरण धारण करने की कथा बहुत बड़ी है। तथापि जिस प्रकार पूर्वाचार्यों ने अपने अन्य ग्रन्थों में कही है, तदनुसार मैं (दौलतराम) भी इस ग्रन्थ में थोड़ी-सी कहता हूँ। इस जीव ने नरक से भी निकृष्ट निगोद में एकेंद्रिय जीव के शरीर

धारण किये अर्थात् साधारण वनस्पतिकाय में उत्पन्न होकर वहाँ अनंतकाल व्यतीत किया है

एक श्वास में अठदस बार, जन्मो मर्यो भयो दुखभार
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४॥

अर्थ : निगोद (साधारण वनस्पति) में इस जीव ने एक श्वासमात्र (जितने) समय में अठारह बार जन्म और मरण करके भयंकर दुःख सहन किये हैं और वहाँ से निकलकर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव के रूप में उत्पन्न हुआ ॥

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि त्यों पर्याय लही त्रसतणी
लट पिपील अलि अदि शरीर, धर धर मर्यो सही बहु पीर ॥५॥

अर्थ : जिसप्रकार चिन्तामणि रत्न बड़ी कठिनाइयों से मिलता है, उसीप्रकार इस जीव ने त्रस की पर्याय बड़ी कठिनता से प्राप्त की। उस त्रस पर्याय में भी लट (इल्ली) अदि दो इन्द्रिय जीव, चींटी अदि तीन इन्द्रिय जीव और भँवरा अदि चार इन्द्रिय जीव के शरीर धारण करके मरा और अनेक दुःख सहन किये ॥

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो
सिंहादिक सैनी है क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥६॥

अर्थ : यह जीव कभी पंचेन्द्रिय असंज्ञी पशु भी हुआ तो मनरहित होने से अत्यन्त अज्ञानी रहा; और कभी संज्ञी हुआ तो सिंह अदि क्रूर-निर्दय होकर, अनेक निर्बल जीवों को मार-मारकर खाया तथा घोर अज्ञानी हुआ ॥

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन, हिम, आतप त्रास ॥७॥

अर्थ : जब यह जीव तिर्य्यचगति में किसी समय निर्बल पशु हुआ तो स्वयं असमर्थ होने के कारण अपने से बलवान प्राणियों द्वारा खाया गया तथा उस तिर्य्यचगति में छेदा जाना, भेदा जाना, भूख, प्यास, बोझ ढोना, ठण्ड, गर्मी अदि के दुःख भी सहन किये ॥

बध बंधन अदिक दुख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने
अति संक्लेश भावतैं मर्यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्यो ॥८॥

अर्थ : इस जीव ने तिर्य्यचगति में मारा जाना, बँधना अदि अनेक दुःख सहन किये; जो करोड़ों जीवों से भी नहीं कहे जा सकते और अंत में इतने बुरे परिणामों (अर्थात् ध्यान) से मरा कि जिसे बड़ी कठिनता से पार किया जा सके - ऐसे समुद्र-समान घोर नरक में जा पहुँचा ॥

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहि तिसो
तहाँ राधश्रोणितवाहिनी, कृमिकुल-कलित, देह-दाहिनी ॥९॥

अर्थ : उन नरकों की भूमि का स्पर्शमात्र करने से नारकियों को इतनी वेदना होती है कि हजारों बिच्छू एकसाथ डंक मारें, तब भी उतनी वेदना न हो । तथा उस नरक में रक्त, मवाद और छोटे छोटे कीड़ों से भरी हुई, शरीर में दाह उत्पन्न करने वाली एक वैतरणी है, जिसमें शांति लाभ की इच्छा से नारकी जीव कूदते हैं, किन्तु वहाँ तो उनकी पीड़ा अधिक भयंकर हो जाती है । (जीवों को दुःख होने का मूल कारण तो उनकी शरीर के साथ ममता तथा एकत्वबुद्धि ही है; धरती का स्पर्श अदि तो मात्र निमित्त कारण हैं) ॥

सेमर तरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र

मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥

अर्थ : उन नरकों में अनेक सेमल के वृक्ष हैं, जिनके पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होते हैं । जब दुःखी नारकी छाया मिलने की आशा लेकर उस वृक्ष के नीचे जाता है, तब उस वृक्ष के पत्ते गिरकर उसके शरीर को चीर देते हैं । उन नरकों में इतनी गर्मी होती है कि एक लाख योजन ऊँचे सुमेरु पर्वत के बराबर लोहे का पिंड भी पिघल जाता है तथा इतनी ठण्ड पड़ती है कि सुमेरु के समान लोहे का गोला भी गल जाता है । जिसप्रकार लोक में कहा जाता है कि ठण्ड के मारे हाथ अकड़ गये, हिम गिरने से वृक्ष या अनाज जल गया आदि । यानि अतिशय प्रचंड ठण्ड के कारण लोहे में चिकनाहट कम हो जाने से उसका स्क्व बिकर जाता है ॥

**तिल-तिल करैं देह के खण्ड असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड
सिन्धुनीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥११॥**

अर्थ : उन नरकों में नारकी एक-दूसरे को दुःख देते रहते हैं अर्थात् कुत्तों की भाँति हमेशा आपस में लड़ते रहते हैं । वे एक-दूसरे के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, तथापि उनके शरीर बारम्बार पारे की भाँति बिकर कर फिर जुड़ जाते हैं । संकलित परिणामवाले अम्बरीष आदि जाति के असुरकुमार देव पहले, दूसरे तथा तीसरे नरक तक जाकर वहाँ की तीव्र यातनाओं में पड़े हुए नारकियों को अपने अवधिज्ञान के द्वारा परस्पर वैर बतलाकर अथवा क्रूरता और कुतूहल से आपस में लड़ाते हैं और स्वयं आनन्दित होते हैं । उन नारकी जीवों को इतनी महान प्यास लगती है कि मिल जाये तो पूरे महासागर का जल भी पी जायें, तथापि तृष्णा शांत न हो; किन्तु पीने के लिए जल की एक बूँद भी नहीं मिलती ॥

**तीनलोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय
ये दुख बहु सागर लौँ सहै, करम जोगतैं नरगति लहै ॥१२॥**

अर्थ : उन नरकों में इतनी तीव्र भूख लगती है कि यदि मिल जाये तो तीनों लोक का अनाज एकसाथ खा जायें, तथापि क्षुधा शांत न हो; परन्तु वहाँ खाने के लिए एक दाना भी नहीं मिलता । उन नरकों में यह जीव ऐसे अपार दुःख दीर्घकाल (कम से कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक तैंतीस सागरोपम काल तक) भोगता है । फिर किसी शुभकर्म के उदय से यह जीव मनुष्यगति प्राप्त करता है ॥

**जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥१३॥**

अर्थ : मनुष्यगति में भी यह जीव नौ महीने तक माता के पेट में रहा; वहाँ शरीर को सिकोड़कर रहने से तीव्र वेदना सहन की, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । कभी-कभी तो माता के पेट से निकलते समय माता का अथवा पुत्र का अथवा दोनों का मरण भी हो जाता है ॥

**बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो
अर्ध-मृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥१४॥**

अर्थ : मनुष्यगति में भी यह जीव बाल्यावस्था में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाया; यौवनावस्था में ज्ञान तो प्राप्त किया, किन्तु स्त्री के मोह (विषयभोग) में भूला रहा और वृद्धावस्था में इन्द्रियों की शक्ति कम हो गई अथवा मरणपर्यंत पहुँचे - ऐसा कोई रोग लग गया कि, जिससे अधमरा जैसा पड़ा रहा । इसप्रकार यह जीव तीनों अवस्थाओं में आत्मस्वरूप का दर्शन (पहिचान) न कर सका ॥

**कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥१५॥**

अर्थ : जब कभी इस जीव ने अकाम निर्जरा की, तब मरकर उस निर्जरा के प्रभाव से (भवनत्रिक) भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवों में से किसी एक का शरीर धारण किया । वहाँ भी अन्य देवों का वैभव देखकर पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी

अग्नि में जलता रहा । फिर मंदारमाला को मुरझाते देखकर तथा शरीर और आभूषणों की कान्ति क्षीण होते देखकर अपना मृत्युकाल निकट है - ऐसा अवधिज्ञान द्वारा जानकर 'हाय! अब ये भोग मुझे भोगने को नहीं मिलेंगे ।' - ऐसे विचार से रो-रोकर अनेक दुःख सहन किये ।

अकाम निर्जरा यह सिद्ध करती है कि कर्म के उदयानुसार ही जीव विकार नहीं करता, किन्तु चाहे जैसा कर्मोदय होने पर भी जीव स्वयं पुरुषार्थ कर सकता है ॥

जो विमानवासी हू थाय, सम्यदर्शन बिन दुख पाय
तहँतें चय थावर तन धैर, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१६॥

अर्थ : यह जीव वैमानिक देवों में भी उत्पन्न हुआ, किन्तु वहाँ इसने सम्यदर्शन के बिना दुःख उठाये और वहाँ से भी मरकर पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों के शरीर धारण किये; अर्थात् पुनः तिर्यग्गति में जा गिरा । इसप्रकार यह जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है और पाँच परावर्तन कर रहा है ॥

दूसरी-ढाल - [छहढाला-दौलतरामजी]

ऐसे मिथ्या दृग्-ज्ञान-चर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्ममर्ण
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥१॥

अर्थ : इस चरण से ऐसा समझना चाहिए कि मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चरित्र से ही जीव को दुःख होता है अर्थात् शुभाशुभ रागादि विकार तथा पर के साथ एकत्व की श्रद्धा, ज्ञान और मिथ्या आचरण से ही जीव दुःखी होता है; क्योंकि कोई संयोग सुख-दुःख का कारण नहीं हो सकता - ऐसा जानकर सुखार्थी को इन मिथ्याभावों का त्याग करना चाहिए । इसीलिये मैं यहाँ संक्षेप से उन तीनों का वर्णन करता हूँ ॥

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व सरधैं तिनमाहि विपर्ययत्व
चेतन को है उपयोग रूप, विन मूरत चिन्मूरत अनूप ॥२॥

अर्थ : यथार्थरूप से शुद्धात्मदृष्टि द्वारा जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष - इन सात तत्त्वों की श्रद्धा करने से सम्यदर्शन होता है । इसलिये इन सात तत्त्वों को जानना आवश्यक है । सातों तत्त्वों का विपरीत श्रद्धान करना, उसे अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं । जीव ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा है । अमूर्तिक, चैतन्यमय तथा उपमारहित है ।

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान ॥३॥

अर्थ : पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ये पाँच अजीव द्रव्य हैं । जीव त्रिकाल ज्ञानस्वरूप तथा पुद्गलादि द्रव्यों से पृथक् है, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा के स्वभाव की यथार्थ श्रद्धा न करके अज्ञानवश विपरीत मानकर, शरीर ही मैं हूँ, शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ, मैं अपनी इच्छानुसार शरीर की व्यवस्था रख सकता हूँ - ऐसा मानकर शरीर को ही आत्मा मानता है । (यह जीवतत्त्व की विपरीत श्रद्धा है) ॥

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गो-धन प्रभाव
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण ॥४॥

अर्थ : जीवतत्त्व की भूल : जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, उसे अज्ञानी जीव नहीं जानता और जो शरीर है, सो मैं ही हूँ, शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ, शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, बाह्य अनुकूल संयोगों से मैं सुखी और प्रतिकूल संयोगों से मैं दुःखी, मैं निर्धन, मैं धनवान्, मैं बलवान्, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर - ऐसा मानता है; शरीराश्रित उपदेश तथा उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है - इत्यादि मिथ्या अभिप्राय द्वारा जो अपने परिणाम नहीं हैं, उन्हें आत्मा का परिणाम मानता है, वह जीवतत्त्व की भूल है ॥

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥५॥

अर्थ : अजीवतत्त्व की भूल :- मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि शरीर की उत्पत्ति (संयोग) होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर का नाश (वियोग) होने से मैं मर जाऊँगा (आत्मा का मरण मानता है), धन, शरीरादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से अपने में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन मानना, शरीर क्षुधा-तृषारूप अवस्था होने से मुझे क्षुधा-तृषादि होते हैं; शरीर कटने से मैं कट गया - इत्यादि जो अजीव की अवस्थाएँ हैं, उन्हें अपनी मानता है - यह अजीवतत्त्व की भूल है ॥

आस्रवतत्त्व की भूल :- जीव अथवा अजीव कोई भी पर पदार्थ आत्मा को किंचित् भी सुख-दुःख, सुधार-बिगाड़, इष्ट-अनिष्ट नहीं कर सकते, तथापि अज्ञानी ऐसा नहीं मानता । पर में कर्तृत्व, ममत्वरूप मिथ्यात्व तथा राग-द्वेषादि शुभाशुभ आस्रवभाव प्रत्यक्ष दुःख देनेवाले हैं, बंध के ही कारण हैं, तथापि अज्ञानी जीव उन्हें सुखकर जानकर सेवन करता है और शुभभाव भी बन्ध का ही कारण है - आस्रव है, उसे हितकर मानता है । परद्रव्य जीव को लाभ-हानि नहीं पहुँचा सकते, तथापि उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें प्रीति-अप्रीति करता है; मिथ्यात्व, राग-द्वेष का स्वरूप नहीं जानता; पर पदार्थ मुझे सुख-दुःख देते हैं अथवा राग-द्वेष-मोह कराते हैं - ऐसा मानता है, वह आस्रवतत्त्व की भूल है ॥

शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति-अरति करै निज पद विसार
आत्महित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान ॥६॥

अर्थ : बंधतत्त्व की भूल :- अघातिकर्म के फलानुसार पदार्थों की संयोग-वियोगरूप अवस्थाएँ होती हैं । मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें अनुकूल प्रतिकूल मानकर उनसे मैं सुखी-दुःखी हूँ - ऐसी कल्पना द्वारा राग-द्वेष, अकृलता करता है । धन, योग्य स्त्री, पुत्रादि का संयोग होने से रति करता है; रोग, निदा, निर्धनता, पुत्र-वियोगादि होने से अरति करता है; पुण्यपाप दोनों बंधनकर्ता हैं, किन्तु ऐसा न मानकर पुण्य को हितकारी मानता है; तत्त्वदृष्टि से तो पुण्यपाप दोनों अहितकर ही हैं; परन्तु अज्ञानी ऐसा निर्धाररूप नहीं मानता - वह बन्धतत्त्व की विपरीत श्रद्धा है ॥

संवरतत्त्व की भूल :- निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही जीव को हितकारी हैं; स्वरूप में स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव वह वैराग्य है और वह सुख के कारणरूप है; तथापि अज्ञानी जीव उसे कष्टदाता मानता है - यह संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा है ॥

रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७॥

अर्थ : निर्जरातत्त्व की भूल :- आत्मा में आंशिक शुद्धि की वृद्धि तथा अशुद्धि की हानि होना, उसे संवरपूर्वक निर्जरा कहा जाता है; वह निश्चयसम्यग्दर्शन पूर्वक ही हो सकती है । ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थिर होने से शुभ-अशुभ इच्छा का निरोध होता है वह तप है । तप दो प्रकार का है :- (१) बालतप (२) सम्यक्तप;

अज्ञानदशा में जो तप किया जाता है, वह बालतप है, उससे कभी सच्ची निर्जरा नहीं होती; किन्तु आत्मस्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्थिरता-अनुसार जितना शुभ-अशुभ इच्छा का अभाव होता है, वह सच्ची निर्जरा है - सम्यक्तप है; किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा नहीं मानता । अपनी अनन्त ज्ञानादि शक्ति को भूलकर पराश्रय में सुख मानता है, शुभाशुभ इच्छा तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों की चाह को नहीं रोकता - यह निर्जरातत्त्व की विपरीत श्रद्धा है ॥

मोक्षतत्त्व की भूल :- पूर्ण निराकुल आत्मिक सुख की प्राप्ति अर्थात् जीव की सम्पूर्ण शुद्धता वह मोक्ष का स्वरूप है तथा वही सच्चा सुख है; किन्तु अज्ञानी ऐसा नहीं मानता । मोक्ष होने पर तेज में तेज मिल जाता है अथवा वहाँ शरीर, इन्द्रियाँ तथा विषयों के बिना सुख कैसे हो सकता है? वहाँ से पुनः अवतार धारण करना पड़ता है - इत्यादि । इसप्रकार मोक्षदशा में निराकुलता नहीं मानता, वह मोक्षतत्त्व की विपरीत श्रद्धा है ॥

अज्ञान :- अगृहीत मिथ्यादर्शन के रहते हुए जो कुछ ज्ञान हो, उसे अगृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं; वह महान् दुःखदाता है । उपदेशादि बाह्य निमित्तों के आलम्बन द्वारा उसे नवीन ग्रहण नहीं किया है, किन्तु अनादिकालीन है, इसलिये उसे अगृहीत (स्वभाविक-निर्गज) मिथ्याज्ञान कहते हैं ॥

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त ताको जानो मिथ्याचरित्त
यों मिथ्यात्वादि निर्गज जेह, अब जे गृहीत, सुनिये सु तेह ॥८॥

अर्थ : अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित पाँच इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्ति करना उसे अगृहीत मिथ्याचारित्र कहा

जाता है । इन तीनों को दुःख का कारण जानकर तत्त्वज्ञान द्वारा उनका त्याग करना चाहिए ॥

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९॥
धरैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव

अर्थ : कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा करने से दीर्घकाल तक मिथ्यात्व का ही पोषण होता है अर्थात् कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का सेवन ही गृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है ।

परिग्रह दो प्रकार का है - एक अंतरंग और दूसरा बहिरंग । मिथ्यात्व, राग-द्वेषादि अंतरंग परिग्रह हैं और वस्त्र, पात्र, धन, मकानादि बहिरंग परिग्रह हैं । वस्त्रादि सहित होने पर भी अपने को जिनलिंगधारी मानते हैं, वे कुगुरु हैं । जिनमार्ग में तीन लिंग तो श्रद्धापूर्वक हैं । एक तो जिनस्वरूप-निर्गुण दिगंबर मुनिलिंग, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकरूप दसवीं-ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावकलिंग और तीसरा आर्यिकाओं का रूप - यह स्त्रियों का लिंग, इन तीन के अतिरिक्त कोई चौथा लिंग सम्प्रदर्शनस्वरूप नहीं है; इसलिये इन तीन के अतिरिक्त अन्य लिंगों को जो मानता है, उसे जिनमत की श्रद्धा नहीं है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि है । (दर्शनपाहुड गाथा १८)" इसलिये जो कुलिंग के धारक हैं, मिथ्यात्वादि अंतरंग तथा वस्त्रादि बहिरंग परिग्रह सहित हैं, अपने को मुनि मानते हैं, मनाते हैं, वे कुगुरु हैं । जिसप्रकार पत्थर की नौका डूब जाती है तथा उसमें बैठने वाले भी डूबते हैं; उसीप्रकार कुगुरु भी स्वयं संसारसमुद्र में डूबते हैं और उनकी वंदना तथा सेवा-भक्ति करनेवाले भी अनंत संसार में डूबते हैं अर्थात् कुगुरु की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, विनय तथा अनुमोदना करने से गृहीत मिथ्यात्व का सेवन होता है और उससे जीव अनंतकाल तक भवभ्रमण करता है ॥

जो राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥१०॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव

अर्थ : जो राग और द्वेषरूपी मैल से मलिन (रागी-द्वेषी) हैं और स्त्री, गदा, आभूषण आदि चिह्नों से जिनको पहिचाना जा सकता है, वे 'कुदेव' कहे जाते हैं । जो अज्ञानी ऐसे कुदेवों की सेवा (पूजा, भक्ति और विनय) करते हैं, वे इस संसार का अन्त नहीं कर सकते अर्थात् अनन्तकाल तक उनका भवभ्रमण नहीं मिटता ॥

रागादि भावहिसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥११॥
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥१२॥

अर्थ : जिस धर्म में मिथ्यात्व तथा रागादिरूप भावहिसा और त्रस तथा स्थावर जीवों के घातरूप द्रव्यहिसा को धर्म माना जाता है, उसे कुधर्म कहते हैं । जो जीव उस कुधर्म की श्रद्धा करता है, वह दुःख प्राप्त करता है । ऐसे मिथ्या गुरु, देव और धर्म की श्रद्धा करना, उसे 'गृहीत मिथ्यादर्शन' कहते हैं । वह परोपदेश आदि बाह्य कारण के आश्रय से ग्रहण किया जाता है, इसलिये "गृहीत" कहलाता है । अब गृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन किया जाता है ॥

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त
कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥

अर्थ : अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक ही धर्म को समस्त वस्तु कहने के कारण, दूषित तथा विषय कषाय आदि को पृष्ठ करने वाले कपिल आदि कुगुरुओं के बनाये हुए सब प्रकार के खोटे शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, गृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है ।

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह
आत्म अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ॥१४॥

अर्थ : शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान न होने से जो यश, धनसंपत्ति, आदर-सत्कार आदि की इच्छा से मानादि कषाय के वशीभूत होकर शरीर को क्षीण करनेवाली अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है, उसे "गृहीत मिथ्याचारित्र" कहते हैं ।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आत्म के हित पंथ लाग
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत! निज आत्म सुपाग ॥१५॥

अर्थ : आत्महितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करके गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करके आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए । श्री पण्डित दौलतरामजी अपनी आत्मा को सम्बोधन करके कहते हैं कि - हे आत्मन्! पराश्रयरूप संसार अर्थात् पुण्यपाप में भटकना छोड़कर सावधानी से आत्मस्वरूप में लीन हो ॥

तीसरी-ढाल - [छहढाला-दौलतरामजी]

आत्म को हित है सुख सो सुख अकुलता बिन कहिये
अकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये
सम्यग्दर्शनज्ञान-चरन शिव मग, सो द्विविध विचारो
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥१॥

अर्थ : आत्मा का कल्याण सुख प्राप्ति में है । अकुलता का मिट जाना ही सच्चा सुख है । उस अकुलता का आभाव केवल मोक्ष मार्ग में ही होता है इसलिये सुख चाहने वालों को मोक्ष मार्ग पर चलना चाहिये । सम्यग्दर्शन इन तीनों की एकता मोक्ष का मार्ग है । वह दो प्रकार का है । एक निश्चय मोक्षमार्ग और दूसरा व्यवहार मोक्षमार्ग । उनमें जो परमार्थ स्वरूप है वह निश्चय मोक्षमार्ग कहलाता है और जो निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है वह व्यवहार मोक्षमार्ग कहलाता है ।

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त्व भला है
आपरूप को जानपनों, सो सम्यग्ज्ञान कला है
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२॥

अर्थ : पर पदार्थों से त्रिकाल भिन्न ऐसे निज-आत्मा का अटल विश्वास करना, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं । आत्मा को परवस्तुओं से भिन्न जानना (ज्ञान करना) उसे निश्चय सम्यग्ज्ञान कहा जाता है तथा परद्रव्यों का आलम्बन छोड़कर आत्मस्वरूप में एकाग्रता से मग्न होना वह निश्चय सम्यक्चारित्र (यथार्थ आचरण) कहलाता है । अब आगे व्यवहार-मोक्षमार्ग का कथन करते हैं; क्योंकि जब निश्चय-मोक्षमार्ग हो, तब व्यवहार-मोक्षमार्ग निमित्तरूप में कैसे होता है, वह जानना चाहिये ।

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानौ
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दिढ़ प्रतीत उर अनो ॥३॥

अर्थ : जिनेन्द्र भगवान ने जीव अदिक सात तत्त्व जैसे कहे हैं उनका जैसा का तैसा अटल श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है । अब आगे इन सात तत्त्वों के स्वरूप का सामान्य और विशेष रूप से वर्णन किया जाता है उसे सुनकर अपने मन में उनका अटल विश्वास करना चाहिये जिससे व्यवहार सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ।

बहिरातम्, अन्तर आत्म, परमात्म जीव त्रिधा है
देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्वमुधा है

उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर-आत्म ज्ञानी द्विविध संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥४॥

अर्थ : जीव (आत्मा) तीन प्रकार के हैं - (१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा । उनमें जो शरीर और आत्मा को एक मानते हैं, उन्हें बहिरात्मा कहते हैं; वे तत्त्वमूढ मिथ्यादृष्टि हैं । जो शरीर और आत्मा को अपने भेदविज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते हैं, वे अन्तरात्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं । अन्तरात्मा के तीन भेद हैं - उत्तम, मध्यम और जघन्य । उनमें अंतरंग तथा बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित सातवें से लेकर बारहवें गुणस्थान तक वर्तित हुए शुद्ध-उपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि उत्तम अन्तरात्मा हैं ।

मध्यम अन्तर-आत्म हैं जे देशव्रती अनगारी
जघन कहे अविरत-समदृष्टि तीनों शिवमग चारी
सकल निकल परमात्म द्वैविध तिनमें घाति निवारी
श्री अरिहन्त सकल परमात्म लोकालोक निहारी ॥५॥

अर्थ : शुभोपयोगी गृहादि परिग्रहरहित छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि तथा बारह व्रतों का पालन करने वाले पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक मध्यम अन्तरात्मा हैं । और व्रतरहित चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा हैं ये तीनों अन्तरात्मा मोक्षमार्ग पर चलने वाले हैं । सकल और निकल के भेद से परमात्मा दो प्रकार के हैं । उनमें ज्ञानवरणादि चार घातिया कर्मों के नाशक तथा लोक और अलोक के पदार्थों के ज्ञाता दृष्ट, अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी सहित अरिहन्त परमेष्ठी सकल परमात्मा कहलाते हैं ।

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्मल-वर्जित सिद्ध महन्ता
ते हैं निकल अमल परमात्म भोगें शर्म अनन्ता
बहिरात्मता हेय जानि तजि, अन्तर आत्म हूजै
परमात्म को ध्याय निरन्तर जो नित आनन्द पूजै ॥६॥

अर्थ : औदारिक आदि शरीर रहित शुद्ध ज्ञानमय द्रव्यभाव नो कर्म रहित, निर्दोष और पूज्य सिद्ध परमेष्ठी 'निकल परमात्मा कहलाते हैं; वे अक्षय अनन्तकाल तक अनन्तसुख का अनुभव करते हैं । इन तीन में बहिरात्मपना मिथ्यात्वसहित होने के कारण हेय (छोड़ने योग्य) है, इसलिये आत्महितैषियों को चाहिए कि उसे छोड़कर, अन्तरात्मा (सम्यग्दृष्टि) बनकर परमात्मपना प्राप्त करें; क्योंकि उससे सदैव सम्पूर्ण और अनन्त आनन्द (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ।

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं
पुद्गल पंच वरन-रस, गंध दो फरस वसू जाके हैं
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनरूपी
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन बिन-मूर्ति निरूपी ॥७॥

अर्थ : जिसमें चेतना (ज्ञान-दर्शन अथवा जानने-देखने की शक्ति) नहीं होती, उसे अजीव कहते हैं । उस अजीव के पाँच भेद हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । जिसमें रूप, रस, गंध, वर्ण और स्पर्श होते हैं, उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं । जो स्वयं गति करते हुए जीव और पुद्गल को चलने में निमित्तकारण होता है, वह धर्मद्रव्य है; तथा जो स्वयं (अपने आप) गतिपूर्वक स्थिर रहे हुए जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में निमित्तकारण है, वह अधर्मद्रव्य है । जिनेन्द्र भगवान ने इन धर्म, अधर्म द्रव्यों को तथा जो अंगे कहे जायेंगे, उन आकाश और काल द्रव्यों को अमूर्तिक (इन्द्रिय-अगोचर) कहा है ।

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो

यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८॥

अर्थ : जिसमें छह द्रव्यों का निवास है, उस स्थान को आकाश कहते हैं । जो अपने आप बदलता है तथा अपने आप बदलते हुए अन्य द्रव्यों को बदलने में निमित्त है, उसे २ 'निश्चयकाल' कहते हैं । रात, दिन, घड़ी, घण्टा आदि को 'व्यवहारकाल' कहा जाता है । - इसप्रकार अजीवतत्त्व का वर्णन हुआ । अब, आस्रवतत्त्व का वर्णन करते हैं । उसके मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग - ऐसे पाँच भेद हैं ॥८॥ (आस्रव और बन्ध दोनों में भेद :- जीव के मिथ्यात्व-मोह-रागद्वेषरूप परिणाम, वह भाव-आस्रव है और उन मलिन भावों में स्निग्धता, वह भाव-बन्ध है)

ये ही आत्म को दुःख-कारण, तातैं इनको तजिये
जीवप्रदेश बँधे विधि सों सो, बंधन कबहुँ न सजिये
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये
तप-बल तैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥९॥

अर्थ : ये मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दुःख देते हैं इसलिये इनका त्याग करना चाहिये । इन्हीं भावों के कारण जीव के प्रदेशों और कर्मों के परमाणुओं का परम्पर एकमेक हो जाना बंध कहलाता है । शम और दम से आत्मा में कर्मों का आगमन रुक जाना संवर कहलाता है । स्थिति पूर्ण हुए बिना ही तप के सामर्थ्य से कुछ कर्मों का आत्मा से अलग होना निर्जरा कहलाती है । इन में से आस्रव और बंध तत्त्व तो हेय है तथा संवर और निर्जरा तत्त्व उपादेय हैं ।

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी
इह विध जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो
येहु मान समकित को कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो ॥१०॥

अर्थ : मोक्ष का स्वरूप जानकर उसे अपना परमहित मानना चाहिए । आठ कर्मों के सर्वथा नाश पूर्वक आत्मा की जो सम्पूर्ण शुद्ध दशा (पर्याय) प्रकट होती है, उसे मोक्ष कहते हैं । वह दशा अविनाशी तथा अनन्त सुखमय है; - इसप्रकार सामान्य और विशेषरूप से सात तत्त्वों की अचल श्रद्धा करना, उसे व्यवहार-सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) कहते हैं । जिनेन्द्रदेव, वीतरागी (दिगम्बर जैन) गुरु तथा जिनेन्द्रप्रणीत अहिंसामय धर्म भी उस व्यवहार सम्यग्दर्शन के कारण हैं अर्थात् इन तीनों का यथार्थ श्रद्धान भी व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है । उसे निम्नोक्त आठ अंगों सहित धारण करना चाहिए । व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप पहले, दूसरे तथा तीसरे छंद के भावार्थ में समझाया है । निश्चय सम्यक्त्व के बिना मात्र व्यवहार को व्यवहार सम्यक्त्व नहीं कहा जाता ।

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेप हु कहिये
बिन जानें तैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये ॥११॥

अर्थ : आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन (अधर्म-स्थान) और आठ शंकादि दोष - इसप्रकार सम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं । संवेग, अनुकम्पा, अस्तिव्य और प्रशम सम्यग्दृष्टि को होते हैं । सम्यक्त्व के अभिलाषी जीव को सम्यक्त्व के इन पच्चीस दोषों का त्याग करके उन भावनाओं में मन लगाना चाहिए । अब सम्यक्त्व के आठ गुणों (अंगों) और पच्चीस दोषों का संक्षेप में वर्णन किया जाता है; क्योंकि जाने और समझे बिना दोषों को कैसे छोड़ा जा सकता है तथा गुणों को कैसे ग्रहण किया जा सकता है?

।

जिन वच में शंका न धार वृष, भव-सुख-वांछा भानै

मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्वकुतत्त्व पिछानै
 निज गुण अरु पर औगुण ढाँके, वा निजधर्म बढ़ावै
 कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सु दिढ़ावै ॥१२॥
 धर्मी सों गौ-वच्छप्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै
 इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै

अर्थ : तत्त्व यही है, ऐसा ही है, अन्य नहीं है तथा अन्य प्रकार से नहीं है - इसप्रकार यथार्थ तत्त्वों में अवल श्रद्धा होना, सो निःशंक्ति अंग कहलाता है ।

धर्म सेवन करके उसके बदले में सांसारिक सुखों की इच्छा न करना, उसे निःकांक्षित अंग कहते हैं ।

मुनिराज अथवा अन्य किसी धर्मात्मा के शरीर को मैला देखकर घृणा न करना, उसे निर्विचिकित्सा अंग कहते हैं ।

सच्चे और झूठे तत्त्वों की परीक्षा करके मूढ़ताओं तथा अनायतनों में न फँसना वह अमूढ़दृष्टि अंग है ।

अपनी प्रशंसा करानेवाले गुणों को तथा दूसरे की निंदा कराने वाले दोषों को ढँकना और आत्मधर्म को बढ़ाना (निर्मल रखना), सो उपगूहन अंग है ।

काम, क्रोध, लोभ आदि किसी भी कारण से (सम्यक्त्व और चारित्र से) भ्रष्ट होते हुए अपने को तथा पर को धर्म में उसमें स्थिर करना स्थितिकरण अंग है ।

अपने साधर्मि जन पर बछड़े से प्यार रखनेवाली गाय की भाँति निरपेक्ष प्रे रखना, सो वात्सल्य अंग है ।

अज्ञान-अन्धकार को दूर विद्या-बल-बुद्धि आदि के द्वारा शास्त्र में कही हुई योग्य रीति से अपने सामर्थ्यानुसार जैनधर्म का प्रभाव प्रकट करना, वह प्रभावना अंग है । - इन अंगों (गुणों) से विपरीत शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना - ये सम्यक्त्व के आठ दोष हैं । इन्हें सदा दूर करना चाहिए ।

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै
 मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भनै ॥१३॥
 तपको मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो जिन जानै
 मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥

अर्थ - कुल, जाति, रूप, ज्ञान, पूजा, धन, बल, और तप ये आठ मद दोष कहलाते हैं । जो जीव इन आठ का घमण्ड नहीं करता □□, वही प्राणी शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति कर पाता है । यदि इनका गर्व किया जाता है, तो ये मद सम्यग्दर्शन के आठ दोष होकर उसे दूषित कर देते हैं ।

कुगुरु-कुदेव-कुवृष सेवक की नहीं प्रशंस उचरै है
 जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्हे न नमन करै है ॥१४॥

अर्थ : कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव सेवक तथा कुधर्म सेवक - ये छह अनायतन (धर्म के अस्थान) दोष कहलाते हैं । उनकी भक्ति, विनय और पूजादि तो दूर रही, किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव उनकी प्रशंसा भी नहीं करता; क्योंकि उनकी प्रशंसा करने से भी सम्यक्त्व में दोष लगता है । सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रदेव, वीतरागी मुनि और जिनवाणी के अतिरिक्त कुदेव और कुशास्त्रादि को (भय, आशा, लोभ और स्नेह आदि के कारण भी) नमस्कार नहीं करता; क्योंकि उन्हें नमस्कार करने मात्र से भी सम्यक्त्व दूषित हो जाता है । कुगुरु-सेवा, कुदेव-सेवा तथा कुधर्म-सेवा - ये तीन भी सम्यक्त्व के मूढ़ता नामक दोष हैं ।

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजै हैं
 चरितमोह वश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं
 गेही, पै गृह में न रचैं ज्यों जलतैं भिन्न कमल है
 नगर नारिकौ प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥१५॥

अर्थ : जो विवेकी पच्चीस दोष रहित तथा आठ अंग (आठ गुण) सहित सम्यग्दर्शन धारण करते हैं, उन्हें अप्रत्याख्यानावरणीय

कषाय के तीव्र उदय से युक्त होने के कारण, यद्यपि संयमभाव लेशमात्र नहीं होता; तथापि इन्द्रादि उनकी पूजा (आदर) करते हैं । जिसप्रकार पानी में रहने पर भी कमल पानी से अलिप्त रहता है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि घर में रहते हुए भी गृहस्थदशा में लिप्त नहीं होता, उदासीन (निर्मोह) रहता है । जिसप्रकार श्वेश्य का प्रे मात्र पैसे से ही होता है, मनुष्य पर नहीं होता; उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि का प्रे सम्यक्त्व में ही होता है, किन्तु गृहस्थपने में नहीं होता । तथा जिसप्रकार सोना कीचड़ में पड़े रहने पर भी निर्मल रहता है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थदशा में रहने पर भी उसमें लिप्त नहीं होता; क्योंकि वह उसे रत्याज्य (त्यागने योग्य) मानता है ।

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष वान भवन षंड नारी
थावर विकलत्रय पशु में नहीं, उपजत सम्यक् धारी
तीनलोक तिहुँकाल माहि नहीं, दर्शन सो सुखकारी
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ॥१६॥

अर्थ : सम्यग्दृष्टि जीव अष्टु पूर्ण होने पर जब मृत्यु प्राप्त करते हैं, तब दूसरे से सातवें नरक के नारकी, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, नपुंसक, सब प्रकार की स्त्री, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्मभूमि के पशु नहीं होते; (नीच कुल वाले, विकृत अंगवाले, अल्पयुवाले तथा दरिद्री नहीं होते) विमानवासी देव, भोगभूमि के मनुष्य अथवा तिर्यच ही होते हैं । कर्मभूमि के तिर्यच भी नहीं होते । कदाचित् शनरक में जायें तो पहले नरक से नीचे नहीं जाते । तीनलोक और तीनकाल में सम्यग्दर्शन के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है । यह सम्यग्दर्शन ही सर्व धर्मों का मूल है । इसके अतिरिक्त जितने क्रियाकाण्ड हैं, वे दुःखदायक हैं ।

मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहि होवै ॥१७॥

अर्थ : यह सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महल में पहुँचने की प्रथम सीढ़ी है । इसके बिना ज्ञान और चरित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक ज्ञान वह मिथ्याज्ञान और चरित्र वह मिथ्याचरित्र कहलाता है, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चरित्र नहीं कहलाते । इसलिये प्रत्येक आत्मारथी को ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शन अवश्य धारण करना चाहिए । पण्डित दौलतरामजी अपने आत्मा को सम्बोध कर कहते हैं कि - हे विवेकी आत्मा! तू ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को स्वयं सुनकर अन्य अनुभवी ज्ञानियों से प्राप्त करने में सावधान हो; अपने अमूल्य मनुष्य जीवन को व्यर्थ न गँवा । इस जन्म में ही यदि सम्यक्त्व प्राप्त न किया तो फिर मनुष्यपर्याय आदि अच्छे योग पुनः पुनः प्राप्त नहीं होते ।

चौथी-ढाल- [छहढाला-दौलतरामजी]

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥१८॥

अर्थ : सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान को दृढ़ करना चाहिए । जिसप्रकार सूर्य समस्त पदार्थों को तथा स्वयं अपने को यथावत् दर्शाता है, उसीप्रकार जो अनेक धर्मयुक्त स्वयं अपने को (आत्मा को) तथा पर पदार्थों को ज्यों का त्यों बतलाता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई

युगपत् होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है तो भी दोनों में भेद हैं, दोनों जुदे जुदे हैं । क्योंकि सम्यग्दर्शन का लक्षण जानना है । सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है । दोनों के एक साथ होने पर भी दोनों में भेद हैं । जैसे एक साथ होने पर भी उजाला दीपक से ही उत्पन्न होता है ।

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन माहि
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं
अवधिज्ञान मनपर्यय दो हैं देश-प्रतच्छ
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छ ॥३॥

अर्थ : इस सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं - (१) प्रत्यक्ष और (२) परोक्ष उनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान हैं, क्योंकि वे दोनों ज्ञान इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को अस्पष्ट जानते हैं । सम्यक्मति-श्रुतज्ञान स्वानुभवकाल में प्रत्यक्ष होते हैं, उनमें इन्द्रिय और मन निमित्त नहीं हैं । अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष हैं, क्योंकि जीव इन दो ज्ञानों से रूपी द्रव्य को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादापूर्वक स्पष्ट जानता है ।

सकल द्रव्य के गुन अनंत, परजाय अनंता
जानैं एकै काल, प्रकट केवलि भगवन्ता
ज्ञान समान न आन जगत में सुख कौ कारन
इहि परमामृत जन्मजरामृतिरोग-निवारन ॥४॥

अर्थ : जो ज्ञान छहों द्रव्यों के तीनों कालों और तीनों लोकों में होने वाले समस्त पर्यायों और गुणों को एक साथ दर्पण के समान स्पष्ट जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं । यह केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है । इस संसार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है । यह सम्यग्ज्ञान ही जन्म, जरा और मृत्यु रूप को नष्ट करने के लिये उत्तम अमृत के समान है ।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे
ज्ञानी के छिनमाहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते
मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो
पै निज आत्मज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥५॥

अर्थ : मिथ्यादृष्टि जीव आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के बिना करोड़ों जन्मों-भवों तक बालतप रूप उद्यम करके जितने कर्मों का नाश करता है, उतने कर्मों का नाश सम्यग्ज्ञानी जीव - स्वेन्मुख ज्ञातापने के कारण स्वरूपगुप्ति से - क्षणमात्र में सहज ही कर डालता है । यह जीव, मुनि के (द्रव्यलिंगी मुनि के) महाव्रतों को धारण करके उनके प्रभाव से नववें त्रैवेयक तक के विमान में अनन्तबार उत्पन्न हुआ, परन्तु आत्मा के भेदविज्ञान (सम्यग्ज्ञान अथवा स्वानुभव) के बिना जीव को वहाँ भी लेशमात्र सुख प्राप्त नहीं हुआ ।

तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे
यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी
इह विध गये न मिले, सुमणि ज्यै उदधि समानी ॥६॥

अर्थ : आत्मा और परवस्तुओं के भेदविज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिनदेव द्वारा प्ररूपित सच्चे तत्त्वों का पठन-पाठन (मनन) करना चाहिए और संशय विपर्यय तथा अनध्यवसाय इन सम्यग्ज्ञान के तीन दोषों को दूर करने के आत्मस्वरूप को जानना चाहिए; क्योंकि जिसप्रकार समुद्र में डूबा अमूल्य रत्न पुनः हाथ नहीं आता; उसीप्रकार मनुष्य शरीर, उत्तम श्रावककुल और जिनवचनों का

श्रवण आदि सुयोग भी बीत जाने के बाद पुनः-पुनः प्राप्त नहीं होते । इसलिये यह अपूर्व अवसर न गँवाकर आत्मस्वरूप की पहिचान (सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति) करके, यह मनुष्यजन्म सफल करना चाहिए ।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै
ज्ञान आपकौ रूप भये, फिर अचल रहावै
तास ज्ञान को कारन, स्वपर विवेक बखानौ
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर अनौ ॥७॥

अर्थ : धन-सम्पत्ति, परिवार, नौकर-चाकर, हाथी, घोड़ा तथा राज्यदि कोई भी पदार्थ आत्मा को सहायक नहीं होते; किन्तु सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वरूप है । वह एकबार प्राप्त होने के पश्चात् अक्षय हो जाता है - कभी नष्ट नहीं होता, अचल एकरूप रहता है । आत्मा और परवस्तुओं का भेदविज्ञान ही उस सम्यग्ज्ञान का कारण है; इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी भव्यजीव को करोड़ों उपाय करके उस भेदविज्ञान के द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए ।

जे पूरब शिव गये, जाहि, अरु अगे जैहैं
सो सब महिमा ज्ञान-तनी, मुनिनाथ कहै हैं
विषय-चाह दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै
तास उपाय न आन, ज्ञान-घनघान बुझावै ॥८॥

अर्थ : भूत, वर्तमान और भविष्य - तीनों काल में जो जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, होंगे और (वर्तमान में विदेह-क्षेत्र में) हो रहे हैं; वह इस सम्यग्ज्ञान का ही प्रभाव है - ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है । जिसप्रकार दावानल (वन में लगी हुई अग्नि) वहाँ की समस्त वस्तुओं को भस्म कर देता है, उसीप्रकार पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी विषयों की इच्छा संसारी जीवों को जलाती है - दुःख देती है; और जिसप्रकार वर्षा की झड़ी उस दावानल को बुझा देती है, उसीप्रकार यह सम्यग्ज्ञान उन विषयों को शान्त कर देता है - नष्ट कर देता है ।

पुण्यपाप-फलमाहि, हरख बिलखौ मत भाई
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित अतम ध्याओ ॥९॥

अर्थ : आत्महितैषी जीव का कर्तव्य है कि वह धनादिक पुण्य के फलों में हर्ष और रोग, वियोग आदिक पाप के फलों में विषाद न करे, क्योंकि ये पुण्य पाप पुद्गल रूप कर्म की पर्याय हैं; जो क्रमशः राहत की धरियों के समान एक के बाद एक उत्पन्न और नष्ट होती हैं; और फिर पैदा हो जाती हैं । लाखों बातों की सार यह है कि संसार सम्बन्धी सब अथवा पुण्य और पाप सहित झगड़ों से नाता तोड़कर हमेशा आत्मचिन्तन करो, सदा गृहस्थी में फँसकर आत्मकल्याण करने में आलसी होना उचित नहीं । जितने समय हो सके आत्म चिन्तन करना चाहिये ।

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै
त्रसहिसा को त्याग, वृथा थावर न सँहारै
पर-वधकार कठोर निघ नहि वयन उचारै ॥१०॥

अर्थ : सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके सम्यक्चरित्र प्रकट करना चाहिए । उस सम्यक्चरित्र के दो भेद हैं - (१) एकदेश (अणु देश, स्थूल) चरित्र और (२) सर्वदेश (सकल, महा, सूक्ष्म) चरित्र । उनमें सकल चरित्र का पालन मुनिराज करते हैं और देशचरित्र का

पालन श्रावक करते हैं । इस चौथी ढाल में देशचारित्र का वर्णन किया गया है । सकलचारित्र का वर्णन छठवीं ढाल में किया जायेगा । त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग करके निष्प्रयोजन स्थावर जीवों का घात न करना, सो अहिंसा अणुव्रत है । दूसरे के प्राणों को घातक, कठोर तथा निंदनीय वचन न बोलना (तथा दूसरों से न बुलवाना, न अनुदना; सो सत्य-अणुव्रत है) ।

जल-मृत्तिका बिन और नाहि कछु गहै अदत्ता
निज वनिता बिन सकल नारिसौं रहै विरक्ता
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै ॥११॥

अर्थ : जल और मिट्टी के अलावा अन्य कोई वस्तु बिना दी हुई नहीं लेना अचौर्याणुव्रत है । अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से विरक्त रहना ब्रह्मचर्याणुव्रत है । अपनी शक्ति का विचार करते हुए थोड़ा परिग्रह रखना परिग्रह परिमाणानुव्रत है । दशों दिशाओं में अग्ने जाने की मर्यादा करके फिर उस सीमा का उल्लंघन नहीं करना दिग्व्रत है ॥११॥

ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा
गमनागमन प्रमाण ठान अन, सकल निवारा ॥१२॥

अर्थ : दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त की गई जाने-अग्ने के क्षेत्र की मर्यादा में भी (घड़ी, घण्टा, दिन, महीना आदि काल के नियम से) किसी प्रसिद्ध ग्राम, मार्ग, मकान तथा बाजार तक जाने-अग्ने की मर्यादा करके उससे आगे की सीमा में न जाना, सो देशव्रत कहलाता है ॥

काहू की धनहानि, किसी जयहार न चिन्तै
देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषी तैं ॥१२॥
कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै
असि धनु हल हिसोपकरण नहि दे यश लाधै
राग-द्वेषकरतार, कथा कबहुँ न सुनीजै
और हु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै ॥१३॥

अर्थ : किसी के धन का नाश, पराजय अथवा विजय आदि का विचार न करना, सो पहला अपध्यान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है । हिसारूप पापजनक व्यापार तथा खेती आदि का उपदेश न देना, वह पापोपदेश-अनर्थदंडव्रत है । प्रमादवश होकर पानी ढोलना, जमीन खोदना, वृक्ष काटना, अग्न लगाना - इत्यादि का त्याग करना अर्थात् पाँच स्थावरकाय के जीवों की हिंसा न करना, उसे प्रमादचर्या-अनर्थदंडव्रत कहते हैं । यश प्राप्ति के लिए, किसी के माँगने पर हिंसा के कारणभूत हथियार न देना, सो हिंसादान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है । राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली विकथा और उपन्यास या शृंगारिक कथाओं के श्रवण का त्याग करना, सो दुःश्रुति-अनर्थदंडव्रत कहलाता है ॥

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये
परव चतुष्टयमाहि, पाप तज प्रोषध धरिये
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै
मुनि को भोजन देय फेर, निज करहि अहारै ॥१४॥

अर्थ : शिक्षाव्रत चार प्रकार के होते हैं **सामायिक :** स्वैच्छुक्ता द्वारा अपने परिणामों को स्थिर करके प्रतिदिन विधिपूर्वक सामायिक

करना, सो सामायिक शिक्षाव्रत है ॥१॥ **प्रोषधोपवास** : प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन कषाय और व्यापारादि कार्यो को छोड़कर, धर्म-ध्यान-पूर्वक, प्रोषधसहित उपवास करना, सो प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहलाता है ॥२॥ **भोगोपभोग-परिमाण** : भोगोपभोग की वस्तुओ को जीवनपर्यंत के लिए अथवा किसी निश्चित समय के लिए कम करने का नियम करना, सो भोगोपभोग-परिमाण शिक्षाव्रत कहलाता है ॥३॥ **अतिथि-संविभाग** : निर्ग्रन्थ मुनि आदि सत्पात्रों को आहार देने के पश्चात् स्वयं भोजन करना, सो अतिथि-संविभाग शिक्षाव्रत कहलाता है ॥४॥

बारह व्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै
मरण-समय सन्यास धार तसु दोष नशावै
यों श्रावक-व्रत पाल, स्वर्ग सोलह उपजावै
तहँतें चय नरजन्म पाय, मुनि है शिव जावै ॥१५॥

अर्थ : जो जीव श्रावक के ऊपर कहे हुए बारह व्रतों का विधिपूर्वक जीवनपर्यंत पालन करते हुए उनके पाँच-पाँच अतिचारों को भी टालता है और मृत्युकाल में पूर्वोपार्जित दोषों का नाश करने के लिए विधिपूर्वक समाधिमरण (संल्लेखनाश) धारण करके उसके पाँच अतिचारों को भी दूर करता है, वह आयु पूर्ण होने पर मृत्यु प्राप्त करके सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है। फिर देवायु पूर्ण होने पर मनुष्य भव पाकर, मुनिपद धारण करके मोक्ष (पूर्ण शुद्धता) प्राप्त करता है। सम्यक्चरित्र की भूमिका में रहनेवाले राग के कारण वह जीव स्वर्ग में देवपद प्राप्त करता है। धर्म का फल संसार की गति नहीं है, किन्तु संवर- निर्जरारूप शुद्धभाव है; धर्म की पूर्णता वह मोक्ष है।

पांचवी-ढाल [छहढाला-दौलतरामजी]

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

अर्थ : पाँच महाव्रतों को धारण करनेवाले भावलिंगी मुनिराज महापुरुषार्थवान हैं; क्योंकि वे संसार, शरीर और भोगों से अत्यन्त विरक्त होते हैं; और जिसप्रकार कोई माता पुत्र को जन्म देती है, उसीप्रकार ये बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न करती हैं, इसलिये मुनिराज इन बारह भावनाओं का चिंतन करते हैं।

इन चिन्तित सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै
जब ही जिय आत्म जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥

अर्थ : जिस प्रकार वायु लगने से अग्नि एकदम भभक उठती है, उसीप्रकार इन बारह भावनाओं का बारंबार चिंतन करने से समता शांतिरूपी सुख प्रकट हो जाता है - बढ़ जाता है। जब यह जीव पुरुषार्थपूर्वक परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़कर आत्मस्वरूप को जानता है, तब परमानन्दमय स्वस्वरूप में लीन होकर समतारस का पान करता है और अंत में मोक्षसुख प्राप्त करता है।

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन अज्ञाकारी
इन्द्रियभोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥

अर्थ : जवानी, मकान, गाये भैंस, धन, जेवर, स्त्री, घोड़ा, हाथी, कुटुम्बी, नौकर, और पांचों इन्द्रियों के विषय ये सब चीजें क्षणिक नश्वर हैं। जैसे- इन्द्रधनुष और बिजली आदि देखते देखते नष्ट हो जाती है, वैसे ही ये यौवन आदि भी थोड़े समय में नष्ट हो जाते हैं। कोई वस्तु नित्य और स्थाई नहीं, ऐसा विचार करना अनित्य भावना है।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥

अर्थ : संसार में जो सुरपति, असुरपति और खगापति आदिक हैं, उन सबको जैसे हिरण को सिंह मार डालता है, उसी प्रकार

मौत नष्ट कर देती है । चिन्तामणि अदिक मणि, बड़े बड़े रक्षामंत्र और तंत्र आदि बहुत हैं, पर मौत से कोई नहीं बचा सकता । ऐसा विचार करना अशरण भावना है ।

चहुँगति दुःख जीव भरे है, परिवर्तन पंच करै है
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहि लगारा ॥५॥

अर्थ : संसार में प्रत्येक प्राणी चारों गतियों के दुखों का सहता है , और पांचों परिवर्तन करता रहता है ; किन्तु कभी भी शान्ति नहीं पाता , अतः एवं वास्तव में यह संसार हर तरह से आसारा है , इसमें जरा भी सुख नहीं । संसारिक सुख वास्तव में सुखाभास , नश्वर , भ्रमरूप और परिमाण में कटुक है । ऐसा विचार संसार भावना है ।

शुभ अशुभ कर्म फल जेते, भोगै जिय एक हि ते ते
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अर्थ : अपने पुण्यकर्म के अच्छे और पापकर्म के निद्वितीय फल को प्रत्येक प्राणी अकेला ही भोगता है । उसमें पुत्र और स्त्री आदि कोई भी हिस्सेदार नहीं होते । ये सब स्त्री पुत्रादि मतलब के साथी हैं ; जब तक उनका स्वार्थ गंठता है तब तक अपने से नाता रखते हैं । हित स्वार्थ को सधता न देखकर वे अपने से प्रतिकूल हो जाते हैं । प्रत्येक प्राणी अपने द्वारा कृत कर्मों की सजा आप ही भोगता है । ऐसा विचार एकत्व भावना है ।

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्नभिन्न नहि भेला
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों है इक मिलि सुत रामा ॥७॥

अर्थ : जिस प्रकार दूध और पानी एकमेक होकर मिल जाते हैं , किन्तु अपने अपने गुणादिक की अपेक्षा दोनों अलग अलग रहते हैं , उसी प्रकार यह जीव और शरीर भी एक मेक होकर मिले हुए हैं ; तो भी वे दोनों अपने अपने स्वरूपादिक की अपेक्षा अलग अलग हैं - एक नहीं । और जब जरा भी अलग न दिखने वाले जीव तथा शरीर भी जुदे जुदे हैं , तब स्पष्ट रूप से जुदे दिखने वाले धन मकान पुत्र और स्त्री अदिक रूप एक कैसे हो सकते हैं ? ऐसा विचार करना अन्यत्व भावना है ।

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी ॥८॥

अर्थ : यह देह , मांस , खून , पीप , मल मूत्र आदि की थैली और हड्डी , चरबी से युक्त होने से अपवित्र है , तथा घृणा उत्पन्न करने वाले नव द्वारों से मल को बहाता है । ऐसे अपवित्र देह में प्रेम कैसे किया जये ? ऐसा विचार करना अशुचिभावना है ।

जो योगन की चपलाई, तातैं है आस्रव भाई
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवरे ॥९॥

अर्थ : हे भव्य जीवों ! मन वचन काय की चंचलता से कर्मों का आस्रव होता है ; अर्थात् कर्म आते हैं ; और यह आस्रव जीव को बहुत दुखदाई है । इसीलिये बुद्धिमान उसे दूर करें ऐसा विचार करना आस्रव भावना है ।

जिन पुण्यपाप नहि कीना, आत्म अनुभव चित दीना
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

अर्थ : जो विवेकी बन्ध का कारण होने से शुभोपयोग और अशुभोपयोग रूप भावों को नहीं करते हैं, केवल कर्मबन्धरोधक आत्मा के चिन्तन में मन लगाते हैं, वे आते हुये कर्मों को रोककर संवर को पाकर सुख पाते हैं । ऐसा विचार करना सम्बर भावना है ।

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥

अर्थ : अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का खिर जाना तो प्रतिसमय अज्ञानी को भी होता है; वह कहीं शुद्धि का कारण नहीं होता, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य द्वारा अर्थात् आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं, वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है । तदनुसार शुद्धि की वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है, तब जीव शिवसुख (सुख की पूर्णतारूप मोक्ष) प्राप्त करता है । ऐसा जानता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा जो शुद्धि की वृद्धि करता है, वह 'निर्जरा भावना' है ॥११॥

किन्हु न कयों न धरै को, षड् द्रव्यमयी न हरै को
सो लोकमाहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥

अर्थ : इस संसार को न किसी ने बनाया है, न कोई धारण किये है, न कोई भी नष्ट कर सकता है । यह छः द्रव्यमय है। स्वयं सिद्ध ऐसे इस संसार में प्राणी समता के बिना हमेशा भ्रमण करता हुआ दुख सहता है । ऐसा विचार करना लोक भावना है ।

अंतिम-ग्रीवकलों की हद्द पायो अनन्त विरियाँ पद
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३॥

अर्थ : मिथ्यादृष्टि प्राणी ने मन्द कषाय के कारण अनेक बार नव में त्रैवेयिक तक पैदा होकर अहमिन्द्र पद पाया है, परन्तु इसे एक बार भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि उसका पाना सरल काम नहीं । ऐसे कठिन सम्यग्ज्ञान को भाव लिंगी मुनि या आत्मचिन्तन करने वाले ही साधन करते हैं, ऐसा विचार करना बोधिदुर्लभ भावना है ।

जो भाव मोहतैं न्यारे दृग्-ज्ञान-व्रतादिक सारे
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे ॥१४॥

अर्थ : मोह रहित निर्मल सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य ही सच्चा धर्म है । जब जीव इस सच्चे रत्नत्रय स्वरूप धर्म को धारण करता है तब ही वह स्थिर सुख को प्राप्त करता है, ऐसा करना धर्म भावना है ।

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये
ताको सुनिये भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

अर्थ : निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्म को भावलिंगी दिगम्बर जैन मुनि ही अंगीकार करते हैं, अन्य कोई नहीं । अब, आगे उन मुनियों के सकलचारित्र्य का वर्णन किया जाता है । हे भव्यो! उन मुनिवरों का चारित्र्य सुनो और अपने आत्मा का अनुभव करो ॥१५॥

छठी-ढाल- [छहढाला-दौलतरामजी]

षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिसा तरी
रागादि भाव निवारतैं, हिसा न भावित अवतरी
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहैं
अठदश सहस विध शील धर, चिद्धहम में नित रमि रहैं ॥१॥

अर्थ : छहकाय के जीवों का घात करना 'द्रव्यहिसा' और राग-द्वेष-काम-क्रोध-मान इत्यादि भावों की उत्पत्ति 'भावहिसा' कहलाती है ।

मुनिराज इन दोनों प्रकार की हिंसाओं को नहीं करते, इसलिए उनके 'अहिंसा महाव्रत' होता है। स्थूल अथवा सूक्ष्म दोनों प्रकार का झूठ भी मुनिराज कभी नहीं बोलते, इसलिए उनके 'सत्य महाव्रत' होता है। अन्य वस्तुओं का तो पूछना ही क्या, जिस मिट्टी और जल को सर्वसाधारण जीव बिना किसी रोक-टोक (निषेध) के प्रयोग में लेते हैं, मुनि उनको भी किसी के द्वारा दिए बिना ग्रहण नहीं करते इसलिए उनके 'अचौर्य महाव्रत' होता है। शील के १८००० भेदों का सदैव पालन करते मुनि चैतन्यरूपी आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं, इसलिए उनके 'ब्रह्मचर्य महाव्रत' होता है।

अंतर चतुर्दस भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलैं
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं
जग-सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं
भ्रमरोग-हर जिनके वचन-मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं ॥२॥

अर्थ : मुनिराज १४ प्रकार के अन्तरंग एवं १० प्रकार के बहिरंग परिग्रहों से सदा दूर रहते हैं, इसलिए उनके 'परिग्रह त्याग' महाव्रत होता है। सूर्योदय होने के बाद दिन में एकाग्रचित्त से चार हाथ आगे की भूमि देखकर जीव-जन्तुओं की हिंसा से बचते हुए मुनिराज मार्ग में चलते हैं अतः उनके 'ईर्या' समिति होती है।

विशेषार्थ - परिग्रह के मुख्यतः दो भेद हैं-अभ्यन्तर और बाह्य। अभ्यन्तर परिग्रह चौदह प्रकार का है-मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। बाह्य परिग्रह दश प्रकार का है-क्षेत्र (खेत), वास्तु (मकान), हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन ॥२॥

छयलीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशन को
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन-पोषते तजि रसन को
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं
निर्जन्तु थान विलोकि तन-मल मूत्र श्लेष्म परिहरैं ॥३॥

अर्थ - छयलीस दोषों से रहित एवं बत्तीस अन्तरायों को टालकर और रसना इन्द्रिय की लोलुपता छोड़कर (रसों का अंशिक या पूरा त्यागकर) शरीर को पुष्ट करने का अभिप्राय न रखते हुए केवल तप बढ़ाने के लिए, मुनिराज उत्तम कुल वाले श्रावक के यहाँ अनुद्दिष्ट प्रासुक भोजन (आहार) को दिन में एक बार ग्रहण करते हैं, इसलिए उनके 'एषणा' समिति होती है। शुद्धि-पवित्रता के साधन कम्पण्डलु ज्ञान के साधन शास्त्र एवं संयम के साधन पिच्छिका को जीवों की विराधना (हिंसा) बचाने के लिए मुनिराज देखभाल कर रखते और उठाते हैं, इसलिए उनके 'आदान-निक्षेपण' समिति होती है। मल-मूत्र-कफ आदि शरीर के मैलों को मुनिराज जीव रहित स्थान देख कर त्यागते (छोड़ते) हैं, अतः उनके 'व्युत्सर्ग' या प्रतिष्ठापन समिति होती है।

विशेषार्थ - दाता के अश्रित सोलह उद्गम दोष, पात्र के अश्रित सोलह उत्पादन दोष तथा आहारसंबंधी दस और भोजनक्रियासंबंधी चार-ऐसे कुल छियालीस दोष हैं ॥३॥

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय, अतम ध्यावते
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रियजयन पद पावने ॥४॥

अर्थ : इस गाथा में निश्चय गुप्ति का तथा भावलिंगी मुनि के अट्टाईस मूलगुणों में पाँच इन्द्रियों की विजय के स्वरूप का वर्णन करते हैं। भावलिंगी मुनि जब उग्र पुरुषार्थ द्वारा शुद्धोपयोगरूप परिणमित होकर निर्विकल्प रूप में स्वरूप में गुप्त होते हैं - वह निश्चय गुप्ति है। उस समय मन-वचन-काय की क्रिया स्वयं रुक जाती है। उनकी शांत और अचल मुद्रा देखकर, उनके शरीर को पत्थर समझकर मृगों के झुण्ड (पशु) खाज (खुजली) खुजाते हैं, तथापि वे मुनि अपने ध्यान में निश्चल रहते हैं। उन भावलिंगी मुनियों को तीन गुप्तियाँ हैं।

प्रश्न :- गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर :- मन-वचन-काया की बाह्य चेष्टा मिटाना चाहे, पाप का चिंतन न करे, मौन धारण करे तथा गमनादि न करे; उसे अज्ञानी जीव गुप्ति मानते हैं। उस समय मन में तो भक्ति आदिरूप अनेक प्रकार के शुभशगादि विकल्प उठते हैं; इसलिये प्रवृत्ति में तो

गुप्तिपना हो नहीं सकता । (सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आत्मा में लीनता द्वारा) वीतरागभाव होने पर जहाँ (मन-वचन-काया की चेष्टा न हो, वही गुप्ति है । (मोक्षमार्ग-प्रकाशक पृष्ठ २३५) । मुनि प्रिय (अनुकूल) और अप्रिय (प्रतिकूल) पाँच इन्द्रियों के पाँच रस, पाँच रूप, दो गंध, आठ स्पर्श तथा शब्दरूप विषयों में राग द्वेष नहीं करते । इसप्रकार (५) पाँच इन्द्रियों को जीतने के कारण वे जितेन्द्रिय कहलाते हैं ॥४॥

समता सम्हारैं, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को
नित करैं श्रुति-रति, करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को
जिनके न न्है न दंतधोवन, लेश अम्बर आवरन
भू माहि पिछली रयनि में कछु शयन एकासन करन ॥५॥

अर्थ : वीतरागी मुनि सदा (१) सामायिक, (२) सच्चे देव-गुरुशास्त्र की स्तुति, (३) जिनेन्द्र भगवान की वन्दना, (४) स्वाध्याय, (५) प्रतिक्रमण, (६) कायोत्सर्ग (शरीर के प्रति ममता का त्याग) करते हैं; इसलिये उनको छह आवश्यक होते हैं और वे मुनि कभी भी (१) स्नान नहीं करते, (२) दाँतों की सफाई नहीं करते, (३) शरीर को ढँकने के लिए थोड़ासा भी वस्त्र नहीं रखते तथा (४) रात्रि के पिछले भाग में एक करवट से भूमि पर कुछ समय शयन करते हैं ॥५॥

इक बार दिन में लें अहार, खड़े अल्प निज-पान में
कचलौंच करत न डरत परिषह सौ, लगे निज ध्यान में
अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुति करन
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥६॥

अर्थ : [वे वीतरागी मुनि] (५) दिन में एकबार (६) खड़े-खड़े अपने हाथ में रखकर थोड़ा आहार लेते हैं; (७) केश का लोंच करते हैं; आत्मध्यान में मग्न रहकर परिषहों से नहीं डरते अर्थात् बाईस प्रकार के परिषहों पर विजय प्राप्त करते हैं तथा शत्रु-मित्र, महल-शमशान, सुवर्ण-काँच, निन्दक और स्तुति करनेवाले - इन सबमें समभाव (राग-द्वेष का अभाव) रखते हैं अर्थात् किसी पर राग-द्वेष नहीं करते ।

प्रश्न :- सच्चा परिषह-जय किसे कहते हैं?

उत्तर :- क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, जँस-मच्छर, चर्चा, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल, नम्रता, अरति, स्त्री, निषद्या, अक्रोश, याचना, सत्कारपुरस्कार, अलाभ, अदर्शन, प्रज्ञा और अज्ञान - ये बाईस प्रकार के परिषह हैं । भावलिङ्गी मुनि को प्रतिसमय तीन कषाय का (अनन्तानुबन्धी आदि का) अभाव होने से स्वरूप में सावधानी के कारण जितने अंश में राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती, उतने अंश में उनका निरन्तर परिषह-जय होता है । क्षुधादिक लगाने पर उसके नाश का उपाय न करना, उसे (अज्ञानी जीव) परिषह सहन कहते हैं । वहाँ उपाय तो नहीं किया; किन्तु अंतरंग में क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिलने से दुःखी हुआ तथा रति आदि का कारण मिलने से सुखी हुआ किन्तु वे तो दुःख-स्वरूप परिणाम हैं और अर्त-रौद्रध्यान हैं; ऐसे भावों से संवर किस प्रकार हो सकता है?

प्रश्न :- तो फिर परिषह-जय किसप्रकार होता है?

उत्तर :- तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित न हो; दुःख के कारण मिलने से दुःखी न हो तथा सुख के कारण मिलने से सुखी न हो, किन्तु ज्ञेयरूप से उसका ज्ञाता ही रहे; वही सच्चा परिषहजय है ॥६॥

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहि भवसुख कदा
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७॥

अर्थ : मुनि बारह प्रकार के तप तपते हैं, दश प्रकार के धर्म को धारण करते हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्ररूपी तीन गुण रत्नों की रक्षा करते हैं, मुनियों के साथ या एकाकी विचरण करते हैं और सांसारिक सुखों की इच्छा भी नहीं करते, इस प्रकार मुनि के सकल-चरित्र का वर्णन हुआ। अब स्वरूपाचरण या निश्चयचरित्र को कहते हैं, जिसके उदय से अपनी आत्मा की ज्ञानादि सम्पत्ति प्रकट होती है और पर-पदार्थों की ओर झुकाव सब प्रकार से मिटता है।

विशेषार्थ - प्रायश्चित्त, विनय, वैयाकृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान, ये छह अंतरंग तप और अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छः बाह्यतप होते हैं ॥७॥

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया
वरणादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया
निजमाहि निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥

अर्थ : जिसप्रकार कोई पुरुष तीक्ष्ण छैनी द्वारा पत्थर आदि के दो भाग पृथक्-पृथक् कर देता है, उसीप्रकार स्वरूपाचरणचारित्र का आचरण करते समय वीतरागी मुनि अपने अन्तरंग में भेदविज्ञानरूपी छैनी द्वारा अपने आत्मा के स्वरूप को द्रव्यकर्म से तथा शरीरादिक नोकर्म से और रागद्वेषादिरूप भावकर्मों से भिन्न करके अपने आत्मा में, आत्मा के लिए, आत्मा को स्वयं जानते हैं; तब उनके स्वानुभव में गुण, गुणी तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय - ऐसे कोई भेद नहीं रहते ॥८॥

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वच भेद न जहाँ
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा
प्रकटी जहाँ दृग्-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९॥

अर्थ : वीतरागी मुनिराज स्वरूपाचरण के समय जब आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं; तब ध्यान, ध्याता और ध्येय - ऐसे भेद नहीं रहते, वचन का विकल्प भी नहीं होता । वहाँ (आत्मध्यान में) तो आत्मा ही शक्ति, आत्मा ही कर्ता और आत्मा का भाव, वह ही क्रिया होती है अर्थात् कर्ता, कर्म और क्रिया - वे तीनों बिल्कुल अखण्ड, अभिन्न हो जाते हैं और शुद्धोपयोग की अचल दशा प्रकट होती है, जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक साथ-एकरूप होकर प्रकाशमान होते हैं ॥९॥

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै
दृग्-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहि आन भाव जु मो विखै
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं
चित् पिड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥

अर्थ : इस स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनियों के आत्मानुभव में प्रमाण, नय और निक्षेप का विकल्प तो उठता ही नहीं, किन्तु गुण-गुणी का भेद भी नहीं होता - ऐसा ध्यान होता है । प्रथम ऐसा ध्यान होता है कि मैं अनन्तदर्शन-अनन्तज्ञान-अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप हूँ; मुझमें कोई रागादिक भाव नहीं हैं; मैं ही साध्य हूँ, मैं ही साधक हूँ और कर्म तथा कर्मफल से पृथक् हूँ । मैं ज्ञान-दर्शन-चेतनास्वरूप निर्मल ऐश्वर्यवान तथा अखण्ड, सहज शुद्ध गुणों का भण्डार और पुण्यपाप से रहित हूँ । तात्पर्य यह है कि सर्व प्रकार के विकल्पों से रहित निर्विकल्प आत्मस्थिरता को स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं ॥१०॥

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो
सब लख्ये केवलज्ञानकरि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११॥

अर्थ : इस स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनिराज जब उपर्युक्तानुसार चितवन - विचार करके आत्मा में लीन हो जाते हैं; तब उन्हें जो आनन्द होता है, वैसा आनन्द इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र (चक्रवर्ती) या अहमिन्द्र (कल्पातीत देव) को भी नहीं होता । यह स्वरूपाचरणचारित्र प्रकट होने के पश्चात् स्वद्रव्य में उग्र एकाग्रता से - शुक्लध्यानरूप अग्नि द्वारा - चार श्वातिकर्मों का नाश होता

है और अरिहन्त दशा तथा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, जिसमें तीनकाल और तीनलोक के समस्त पदार्थ स्पष्ट ज्ञात होते हैं और तब भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं ॥११॥

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू बसैं
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहि गये
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥

अर्थ : अरिहन्त दशा अथवा केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उस जीव को भी जिन गुणों की पर्यायों में अशुद्धता होती है, उनका क्रमशः अभाव कर वह जीव पूर्ण शुद्ध दशा को प्रकट करता है और उससमय असिद्धत्व नामक अपने उदयभाव का नाश होता है तथा चार अघाति कर्मों का भी स्वयं सर्वथा अभाव हो जाता है । सिद्धदशा में सम्यक्त्वदि आठ गुण (गुणों की निर्मल पर्यायें) प्रकट होते हैं । मुख्य आठ गुण व्यवहार से कहे हैं; निश्चय से तो अनन्त गुण (सर्व गुणों की पर्यायें) शुद्ध होते हैं और स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन के कारण एक समयमात्र में लोकाग्र में पहुँचकर वहाँ स्थिर रह जाते हैं । ऐसे जीव संसाररूपी दुःखदायी तथा अगाध समुद्र से पार हो गये हैं और वही जीव निर्विकारी, अशरीरी, अमूर्तिक, शुद्ध चैतन्यरूप तथा अविनाशी होकर सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं ॥१२॥

निजमाहि लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये
रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३॥

अर्थ : सिद्ध भगवान के आत्मा में केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोक (समस्त पदार्थ) अपने-अपने गुण और तीनोंकाल की पर्यायों सहित एकसाथ, स्वच्छ दर्पण के दृष्टान्तरूप से - सर्वप्रकार से स्पष्ट ज्ञात होते हैं; (किन्तु ज्ञान में दर्पण की भाँति छाया और आकृति नहीं पड़ती) । वे पूर्ण पवित्रारूप मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं तथा वह दशा वहाँ विद्यमान अन्य सिद्ध-मुक्त जीवों की भाँति अनन्तानन्त काल तक रहेगी; अर्थात् अपरिमित काल व्यतीत हो जाये, तथापि उनकी अखण्ड ज्ञायकता-शान्ति आदि में किंचित् बाधा नहीं आती । यह मनुष्यपर्याय प्राप्त करके जिन जीवों ने शुद्ध चैतन्य की प्राप्तिरूप कार्य किया है, वे जीव महान धन्यवाद (प्रशंसा) के पात्र हैं और उन्होंने अनादिकाल से चले आ रहे पंच परावर्तनरूप संसार के परिभ्रमण का त्याग करके उत्तम सुख - मोक्षसुख प्राप्त किया है ॥१३॥

मुख्येपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धैं
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल-जग-मल हरैं
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ
जबलों न रोग जरा गहै, तबलौं इति निज हित करौ ॥१४॥

अर्थ : जो सत्पुरुषार्थी जीव सर्वज्ञ-वीतराग कथित निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप जानकर, उपादेय तथा हेय तत्त्वों का स्वरूप समझकर अपने शुद्ध उपादान-आश्रित निश्चयरत्नत्रय को (शुद्धात्माश्रित वीतरागभावस्वरूप मोक्षमार्ग को) धारण करते हैं तथा करेंगे, वे जीव पूर्ण पवित्रारूप मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं और होंगे । (गुणस्थान के प्रमाण में शुभराग आता है, वह व्यवहार-रत्नत्रय का स्वरूप जानना तथा उसे निश्चय से उपादेय न मानना, उसका नाम व्यवहार-रत्नत्रय का धारण करना है) । जो जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं और होंगे, उनका सुकीर्तिरूपी जल कैसा है? - कि जो सिद्ध परमात्मा का यथार्थ स्वरूप समझकर स्वोन्मुख होनेवाले भव्यजीव हैं, उनके संसार (मलिनभाव) रूपी मल को हरने का निमित्त है । ऐसा जानकर प्रमाद को छोड़कर, साहस अर्थात् सच्चा पुरुषार्थ करके यह उपदेश अङ्गीकार करो कि जबतक रोग या वृद्धावस्था ने शरीर को नहीं घेरा है, तबतक शीघ्र (वर्तमान में ही) आत्मा का हित कर लो ॥१४॥

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये

चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये
कहा रच्यो पर पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै
अब 'दौल' होउ सुखी स्वपदरचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५॥

अर्थ : यह राग (मोह, अज्ञान) रूपी अग्नि अनादिकाल से निरन्तर संसारी जीवों को जला रही है - दुःखी कर रही है इसलिये जीवों को निश्चयरत्नत्रयमय समतारूपी अमृत का पान करना चाहिए, जिससे राग-द्वेष मोह (अज्ञान) का नाश हो । विषय-कषायों का सेवन विपरीत पुरुषार्थ द्वारा अनादिकाल से कर रहा है; अब उसका त्याग करके आत्मपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिए । तू दुःख किसलिये सहन करता है? तेरा वास्तविक स्वरूप अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और अनन्तवीर्य है, उसमें लीन होना चाहिए । ऐसा करने से ही सच्चा-सुख मोक्ष प्राप्त हो सकता है । इसलिये हे दौलतराम! हे जीव! अब आत्मस्वरूप को प्राप्त कर! आत्मस्वरूप को पहिचान! यह उत्तम अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होता, इसलिये इसे न गँवा । सांसारिक मोह का त्याग करके मोक्षप्राप्ति का उपाय कर ! यहाँ विशेष यह समझना कि - जीव अनादिकाल से मिथ्यात्वरूपी अग्नि तथा राग-द्वेषरूप अपने अपराध से ही दुःखी हो रहा है, इसलिये अपने यथार्थ पुरुषार्थ से ही सुखी हो सकता है । ऐसा नियम होने से जड़कर्म के उदय से या किसी पर के कारण दुःखी हो रहा है अथवा पर के द्वारा जीव को लाभ-हानि होते हैं - ऐसा मानना उचित नहीं है ॥१५॥

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख
कर्यो तत्त्वउपदेश यह, लखि बुधजन की भाख
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥

अर्थ : पण्डित बुधजनकृत छहढाला के कथन का आधार लेकर मैंने (दौलतराम ने) विक्रम संवत् १८९१, वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस छहढाला ग्रन्थ की रचना की है । मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़ें, ताकि जीव संसार-समुद्र को पार करने में शक्तिमान हो ।